आयुर्वेदीय
औषधिगुणधर्मशास्त्र

प्रथम विभाग--भस्में

न मात्रामात्रमप्यत्र किंचिदागमवर्जितम् ।

ग्रंथकर्ता
श्री. वै. पं. गंगाधरशास्त्री गुणे,
प्रमुख-आयुर्वेदमहाविद्यालय अहमदनगर.

प्राप्तिस्थानः—
मंत्री
आयुर्वेद सेवासंघ अहमदनगर.

श्लोक.

शास्त्रं ज्योतिःप्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥
चिकित्सिते त्रयः पादा यस्माद्वैद्यसमाश्रयाः ।
तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक् स्वगुणसंपदि ॥ चरक सू. अ. ९

अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।
तथा युञ्जीत भैषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥

अष्टांगहृदयम् अ. १२

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन यो नाऽविशति योगिवत् ।
आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति ॥

अष्टागसंग्रह अ. २३

आयुर्वेदीय औषधिगुणधर्मशास्त्र

प्रथम विभाग.

हिंदी अनुवाद का प्रस्ताव

" आयुर्वेदीय औषधिगुणधर्मशास्त्र " के मराठी भाषामे चार विभाग प्रसिद्ध हो चुके है. उनमे से पहले विभाग का यह हिंदी भाषामे अनुवाद किया है. मराठी विभाग के तीन संस्करण हो चुके है. यह ही इस ग्रन्थ का मान्यत्व सिद्ध करता है.

हिंदी वाचकोंमे जो थोडासा मराठी जानते थे उन्हों ने भी इस ग्रंथको देखकर अनुकूल मत प्रदर्शित किया है. कुछ ग्राहकोंने इच्छा प्रदर्शित की है कि इस ग्रंथ का अनुवाद हिंदी मे जरूर होना चाहिए.

अहमदनगरमे ' आयुर्वेद-सेवा-संघ ' आयुर्वेदशास्त्र का प्रचार-कार्य कर रहा है. उसके भिन्न भिन्न कार्योंमे; 'आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लि' नाम का औषधि कारखाना, आयुर्वेद महाविद्यालय (जिसमे आज १२० पाठक शिक्षा पाते है), आयुर्वेदीय चिकित्सा मंदिर, 'भिषग्विलास' और ' संघवृत्त ' नामके मासिक पत्र, इत्यादि कार्योंका समावेश कर सकते है. इसी तरह ग्रंथलेखन और प्रकाशन का कार्यभी आयुर्वेद सेवासंघके कार्योंमे अंतर्भूत है.

वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणेजीका ऊपर लिखा हुआ ग्रंथ हिंदी भाषामे प्रसिद्ध करनेका विचार हुआ और शास्त्रीजीको इसके बाबद पूछा गया तो उन्होंने इस ग्रंथके हिंदी अनुवादके सर्व अधिकार ' आयुर्वेद सेवासंघ 'के हाथमे विनामूल्य दे दिये इस कृपाके कारण 'संघ' शास्त्रीजी को धन्यवाद देता है.

हिंदी अनुवादभी एक महाशयने संघके लिए विनामूल्य लिखकर दिया है. उनकोभी हम धन्यवाद देते है. मराठी ग्रंथके १४४ पृष्ठ है. इसमेभी करीव करीब उतनेही पृष्ठ होंगे. मराठी ग्रंथके समान इसकी कीमतभी रक्खी है.

मराठी मुल्खमे हिंदी भाषाका ग्रंथ लिखना और प्रकाशित करना यह एक कठिन बात है. किंतु पूनेके आर्यभूषण प्रेस जैसे सुसज्ज प्रेसमे

यह सब विगर तकलीफसे हो सका. आर्यभूषण प्रेसके हम इस बाबतमें ऋणी है.

स्वतंत्र लेख और अनुवाद इनमे यह फर्क रहता है कि अनुवाद मे उतना भाषास्वातंत्र्य नही रहता. इस लिए ग्राहकोंसे यह विज्ञप्ति है कि भाषाकी गलितयां माफ करके तात्पर्यका स्वीकार करें.

अ. वि. केतकर
मंत्री
आयुर्वेद सेवासंघ
अहमदनगर

मराठी द्वितीय और तृतीय संस्करणोंका प्रस्ताव.

(संक्षेपमे)

" इस विषयपर प्रथम आयुर्वेद विद्यालयमे व्याख्यान हुए थे. सन १९१९ के वाद हमारे 'भिषग्विलास' मासिकमे कुछ लेख प्रसिद्ध किये गये. उनको देखकर डॉक्टर, वैद्य और विद्यार्थी वाचक संतोषित हो गये और उनकी पत्ररूप आज्ञा देख कर ये सब पुस्तकरूपमे प्रसिद्ध किये जाते है.

आयुर्वेदशास्त्रका पठन करते समय ही हमको यह एक तीव्र इच्छा हुई कि 'औषधिगुणधर्मशास्त्र' कुछ नयी रीतिसे और विस्तरशः लिखने की जरूरत है. इसकी पूर्तता के लिए हम पहलेसेंही हमारा अनुभव लिखकर रख देते थे और आयुर्वेदीय उपपत्ती तथा सिद्धांतोंके अनुसार दोषप्रत्यनीक चिकित्साका फल देखकर हमारा विश्वास वढता गया. आज तक ये गुणधर्म सूत्रमय भाषामे लिखे हुए थे. उन्हीको हमने विस्ताररूपमे प्रकट किया है. न तो हमने इसमे कुछ गोलमाल किया न कुछ वास्तवसे अधिक वर्णन किया. केवल भ्रमरके प्रयत्न जैसा यह हमारा यत्न है. भिन्न भिन्न ग्रंथोंमेसे 'मधु' मिलाकर एक ग्रंथ मे संम्मीलित किया है और मानो पुराने लोटेकी जगह आजकलकी स्वच्छ वोतलमे भर दिया है.

इस ग्रंथमे जो विस्तार है वह सव उपरुग्ण पद्धतीसे (clinical) अजमाया गया है. रोगियोंमे औषधका प्रभाव देखकर यह सब लिखा गया है. प्रयोगशालामे औषधियोंका रासायनिक पृथक्करण करनेका सुभीता हमारे पास न था. अगर प्रयोगशाला रहती तो भी हमे विश्वास नही कि उससे कुछ लाभ होता. क्योंकि आयुर्वेदशास्त्रकी औषधिकरणकी रीति इतनी चमत्कारिक है कि उन औषधियोंका रासायनिक पृथकरण शायदही हो सके. एक हजार पुट दे कर वनाई हुई अभ्रकभस्म किस रीतसे पृथक्कृत होगी? हमने एक समय अभ्रकभस्म जाँच करवानेके लिए बिलायत भेजी थी. इसका रिपोर्ट क्या हुआ? तो यह केवल खाकही है! जिस अभ्रकभस्मसे हम रोजाना हजारों रुग्ण जन को आराम दे सकते है ऐसे प्रभावशाली अभ्रकभस्मकी जांच यह है! इसी लिए ऊपर लिखी हुई उपरुग्ण पद्धति हमने स्वीकृत की है.

(तृतीय संस्करण)

दूसरे संस्करणके प्रस्ताव मे हमने लिखा है कि यह सब ग्रंथ अनुभवके वाद प्रसिद्ध किया जाता है. इस बातका थोडासा स्पष्टी-

करणा करेंगे. हमारे 'गुणे' वंशमे कुछ सो पचास साल तक सब वैद्यक-काही धंदा कर रहे है. उनमेसेभी विख्यात वैद्य डॉक्टरोंका सहवास हमको बचपनसे मिला है. उनकी प्रसिद्धि इतनी थी कि उनके पास दूरदूरके रुग्ण उपस्थित होकर औषधियां ले जाते थे और उनसे लाभ उठाते थे. हमको भी अनुभवरूप लाभ आकंठ प्राप्त हुआ. और शिक्षा पाते समय चिकित्साशास्त्रमे तौलनिक अभ्यास करनेका प्रयत्न शुरू किया. ग्रंथोंमे लिखे हुए सब गुणधर्म इस समय और इसके बाद खुद अपने रोगियोंमे अजमाये और उनमेसे अर्थवाद और अतिशयोक्ति छोडकर यह 'गुणधर्मशास्त्र' केवल सत्य और अनुभवित गुणधर्मोंके प्रसार के लिए लिख चुके है. इसमे यह कोसिस की है कि कहीं परभी असत्य लेखन न हो.

जिस तरह महाभारतके बारेमे यह लिखते है कि 'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वं।' ठीक उसी तरह पुराने वैद्यक ग्रंथोंके बारेमे लिख सकते है. किंतु उनमे लिखे हुए गुणधर्मोंमेसे चुनाव होना चाहिये. नही तो 'सर्वरोगे वसंतः' 'जरामरणनाशनः (मकरध्वजः।),' आरोग्य-वर्धिनी-'बहुना च किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते। किंवा 'सर्वरोगप्रशमनी' श्वासकुठार 'सर्वं श्वासनिकृन्तनः।' महायोगराज गुग्गुल-'सर्वान्वातामयान्नाशयेत्।' महागंधक-"सर्वव्याधिषूदनः" इन सब विधानोंका कुछ भी अर्थ न होगा. एकही दवा सब रोगियोंको लाभ-दायक कभी न होगी. इस लिए सोचमोचके, अन्य प्रसिद्ध वैद्योंके साथ चर्चा करके और सब गुणधर्म खुद अपने रोगियोंपर अजमाकेर आज ३०।३२ साल तक अध्ययन, अध्यापन और चिकित्सा करके यह यत्न किया है.

औषधियोंके गुणधर्म प्रस्थापित करनेमे आजकल दो प्रकार का संशोधन करते है. एक प्रायोगिक पद्धति याने प्रयोगशालामे और दूसरा उपरुग्ण याने अस्पतालमे रोगियोंपर संशोधन. इनमेसे प्रायोगिक संशोधन बहुत महंगा होता है. उसमे संशोधक बुद्धि, अत्यंत कष्ट, इनकी जरूरत रहती है. इस प्रकारके संशोधनमे कुत्ता, बिल्ली, मूसा इत्यादि जानवरोंपर औषधियोंके गुणधर्म अजमाये जाते है. प्रथम वनस्पतीका अर्क या अन्य रीतीसे बनाया हुवा कल्प उन जानवरोंको दिया जाता है. किंतु संपूर्ण वनस्पतिमे जो गुण पाये जाते है उनमेसे शायदही अर्कमे सब गुण आ सकते है. कभी कभी अर्कमे

कुछ दोषभी आ सकते है. इतनाही नही, जानवरों अजमाये हुए गुणधर्म भिन्न भिन्न जातके जानवरोंपर भिन्न भिन्न तरहके आते है–[१] जानवरोंके बाद फिर मनुष्य जातिपर प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है.[२]

प्रायोगिक पद्धतीमे खर्चा वहूत लगता है. दिनभी वहुत लगते है. गुणधर्मशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि सब विज्ञानशास्त्रोंके तज्ञोंका मिलाफ होना चाहिए. हरएक विज्ञान शास्त्रकी अलग अलग प्रयोगशाला चाहिए. एक वडा चिकित्सामंदिर (अस्पताल), उसमे तज्ञ परिचारक, सहाय्यक, 'क्ष' किरण की योजना, और उपरुग्ण प्रयोगशाला, ये सब अत्यंत आवश्यक है. इतने सब अवजार पास होनेपरभी प्रथम वनस्पतीका संशोधन छोटे छोटे जानवरोंपर प्रयोगरूप होगा. उस वनस्पतीका रासायनिक पृथक्करण करना पडेगा. रोगोंमेभी जंतुज रोगोंका संशोधन कुछ सुभीतेसे होगा किंतु अन्य निर्जंतुक रोगोंकी वात तो इससे भी दुष्कर है. इस रीतसे संशोधन करें तो हरएक वनस्पती के संशोधनके लिए चार पांच साल तो जरूर लगेंगे.[3]

---

१. Moreover while it may cure one species of animal infection with a particular parasite it may fail to cure another species infected with the same parasite ' Cushny's–Textbook of Pharmacology & Therapeutics. p. 27.

२. " The final test of its value in a corresponding disease in man must be done on man himself. " Ibid–p. 27.

3. "The time and labour required to work out the chemical composition of a drug is enormous....... It would take an experienced chemist about two or three months to isolate in a pure state, and roughly state the nature of chemical constituents of a single drug, the determination of chemical constitution of the active principle concerned would take another two years, provided the chemist devoted his time entirely to one active principle The isolation of a sufficient quantity of the active principles and testing them pharmacologically would take a few months. One can see that it will take years to complete the work in indigenous drugs which has now been started at the Calcutta School of Tropical Medicine."—Col. Chopra.

उपरुग्ण पद्धतीसे, संशोधन कुछ सुभीते से हो सकता है. इसके माने यह नही कि कोईभी झट्से इस तरह संशोधन कर सके. प्रथम रोगनिदान, औषधिगुणधर्मशास्त्र और चिकित्साशास्त्र इनमे प्राविण्य होना चाहिए. रोगीको देख कर उसके विकारका स्वच्छ निदान सब लक्षणोंको और रोगकी अवस्थाको देख कर निश्चित करना, रोगविनिश्चयके बाद औषधिविनिश्चय, औषधीका प्रमाण इत्यादि निश्चित करना चाहिए.

प्रायोगिक पद्धतीका उपयोग आज अशक्य है. तब भी आजकल के आयुर्वेदशास्त्रोन्नति के प्रयत्न देखें तो आशा दिखती है कि कुछ अर्सेके बाद यह भी शक्य होगा. तब तक उपरुग्ण पद्धतीका ही पूर्ण उपयोग करना चाहिए.

जहाँ तक प्रायोगिक संशोधन पद्धतीका सहाय्य मिल सके, वह बिलकुल न छोडना चाहिए. जैसे रुग्णविज्ञानशालासे तपेदिकके जंतुओंकी जाँच करनेसे कुछ बहुत श्रम नही लगते है. रोगनिदान निश्चित करनेके लिए तथा तपेदिकके रोगीपर उपचार करनेके बाद ये कीडे मर गये हो या नही यह देखनेके लिए यह पद्धति पूर्णतया उपयुक्त होगी. सुवर्णभस्मके सेवनसे तपेदिकके रोगियोंको सचमुच फायदा होता है या नही इसकी यहही एक खात्रीलायक जाँच होगी. ज्वरवेगका मापन थर्मामीटर लेकर करें तो उससे आयुर्वेदशास्त्रका कुछ नुकसान नहीं. तपेदिक की सचमुच अवस्था जाननेके लिए क्ष किरणोंका सहाय्य लें तो औरभी अच्छा होगा.

इसके माने यह नही है कि रोगनिदान करनेसे वैद्य केवल अवजारोंपर भरोसा रखे. इस भरोसेकी अपेक्षा वह खुद अपनी शास्त्रबुद्धि और शोधकबुद्धि बढावे तो अधिक फायदा होगा.[1]

(परं प्रयत्नमातिष्ठेद्भिषक्स्वगुणसंपदि ।)

रोगविनिश्चयके माने केवल विकारका नामज्ञान नही है. दोष, दोषदूष्यसंयोग, उनके चय, प्रकोप, प्रसर और स्थानसंश्रय, इन सब बातोंका ख्याल रखना चाहिए. धातुवैषम्य उत्पन्न करनेमे कौनसे निमित्त

---

१. सर जेम्स मेकेन्झी जैसे पाश्चात्य वैज्ञानिकभी डॉक्टरोंको बार बार समझाते ह कि इन अवजारोंने जितनी सहाय्यता की है उतनाही आलस्यभाव बढाया है और डॉक्टरोंको यह इशारा है कि वे अवजारोंके दास न बने.

कारण और असमवायी कारण हुए है. जंतु, कृमि, गर, विष, सेन्द्रिय विषार इत्यादि निमित्त कारण हो सकते है. इसका ख्याल रखना चाहिए. इन निमित्त कारणोंके बाद धातुवैषम्य (दोष) उत्पन्न होता है. ये दोष (दूषित धातू) रस, रक्त आदि दूष्योंमे समाविष्ट होते है. यह दोषदूष्य संयोग रोगका असमवायी कारण है. यह दोषदुष्टि जबतक स्वस्थानमे रहती है और उसकी अनुलोम प्रवृत्ति है तबतक उस अवस्थाको 'चय' अवस्था कहते है. अपना स्थान छोडकर दोष उन्मार्गगामी होकर अपने लक्षण दिखलाने लगते है तब उस अवस्थाको 'प्रकोप' और जब वे सब शरीरमे फैलते है तब उस अवस्थाको 'प्रसर' कहते है. सर्व शरीरमे फैलने परभी शरीरके कुछ विभागोंसे वे अधिक प्रमाणमे संचित हुए नजर आते है. उस अवस्थाको 'स्थानसंश्रय' कहते है. रोग निदान 'चय' अवस्थामे निश्चित हुआ हो और योग्य चिकित्सा की जाय तो आगेकी अवस्थाएं टल सकती है. इस तरहका रोगविज्ञान आयुर्वेद-शास्त्रका हृद्गत है.

रोगकी अवस्था पहचाननेके लिए सब लक्षणोंका सूक्ष्म विचार तथा रोगी की भावनाओंकी तलाश विस्तरशः करनी चाहिए. केवल रोगजंतू देखनेमे आये तो इस रोगका इलाज नही कर सकते है. क्यों कि वे रोगजंतू एक रोगीके शरीरमे कुछ लक्षण पैदा करेंगे तो दूसरे रोगीके शरीरमे उनके विपरीत लक्षण उत्पन्न कर सकते है. लक्षणोंकी भिन्नताके अनुसार औषधियोजनाभी भिन्न होगी. यह ही आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष है.

दोषदुष्टीभी एक एक दोषकी एकसी नही रहती है. उन २ दोषोंके भिन्न भिन्न गुण कम या अधिक हो सकते है. याने एक रुग्ण कफका गुरुत्व (भारीपन) गुण बढनेके कारण व्यथित होगा तो दूसरा, कफका स्निग्धत्व गुण बढ जानेसे तकलीफ उठाएगा. पित्तका तीक्ष्णत्व गुण बढ जानेपर भिन्न लक्षण पाये जाएंगे तो उसीका द्रवत्व गुण बढनेसे उनका पताभी न होगा. एकही लक्षण लेवें तो भी उपलक्षणोंके अनुसार चिकित्सा भिन्न होगी.

उदाहरणार्थः—कै (वमन)-इसके साथ जलन हो तो-प्रवालभस्म, कैका प्रमाण अधिक और कै पतली आती हो तो सुवर्ण माक्षिकभस्म, लाभदायक होगी. धातुवैषम्य नष्ट करके धातुसाम्य प्रस्थापित करना यहही एक ध्येय है. प्रवाल (मूंगा) शीत और स्वादुतोत्पादक होनेके कारण तीक्ष्ण और अम्ल गुणोंका प्रतिकार करता है. माक्षिक स्तंभक होनेके कारण द्रवत्वको हटाता है.

इसी लिए गुणधर्म और चिकित्सापद्धतिके संशोधन या उपयोगके लिए दूष्य, देश, बल, काल, अनल, प्रकृति, वय, सत्व, सात्म्य, आहार और रोगोंकी सूक्ष्म सूक्ष्म अवस्था इनका पूर्ण विचार करना पडता है.[१] दोषों की वृद्धि या क्षय, रस, रक्त आदि दूष्योंकी वृद्धि या क्षय, रोगी का बल, रोग का बल, दोषों का बल, ये सब लक्षणोंका सूक्ष्म अभ्यास करकेही पहचानना पडता है. रोगकी अवस्था जाननेपर आमावस्थामे लंघन और पक्वावस्थामे शमन चिकित्सा कर सकते है. आमावस्थामे सुवर्णमाक्षिकका उपयोग करें तो उससे नुकसानही होगा. तपेदिकके ज्वरमे महामृत्युंजय जैसा रेचक, पाचक तथा ज्वरघ्न औषध देनेसे हानि होगी. इस लिए भिन्न भिन्न अवस्थाओंके अनुसार भिन्न भिन्न चिकित्सा होगी.

उपरुग्ण पद्धतीके अनुसार विचार करनेपर ग्रंथोंमे लिखे हुए गुणधर्मोंका भी ठीक ठीक अर्थ समज सकते है. "वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत् स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः।" इस श्लोकार्धके अनुसार विचार करे तो शुक्रच्युति और शुक्रनाशके बाद जो कुछ दोषदूष्य-संयोग नजर आवेंगे उनमे वंगभस्मका उपयोग निश्चित कर सकते है. 'नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति' इसका विचार करनेपर बलनाशकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमे यह दे सकते है और उसका परिणाम देखकर योग्य अवस्थाकी निश्चिति कर सकते है. मलोत्सर्ग करनेकी इच्छा होनेपरभी दुर्बलताके कारण रोगी मलोत्सर्ग न कर सकता हो तो वह पक्वाशय स्थानकी बलहानि होगी.

इस ग्रंथमे इनही विचारोंके अनुसार संशोधन करके सब निश्चित गुणधर्म लिखे गये है.

गंगाधर गोपाल गुणे.

आयुर्वेदाश्रम–अहमदनगर जन्माष्टमी (श्रावण व. ८ शक १८५५

---

१ दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधा ॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित् ॥ अ. हृ. सू. १२, ६६, ६७

आयुर्वेदीय औषधिगुणधर्मशास्त्र

प्रथम विभाग

भस्में

उपोद्घात

दुनियामें दो प्रकारकी चीजें होती है:—(१) सेन्द्रिय या चेतन और (२) निरिन्द्रिय या अचेतन. निरिन्द्रिय चीजोंको जड या स्थूल भी कहते है. लोहा, सुवर्ण, चांदी, मिट्टी, पत्थर इत्यादि एक जगह पर पडे रहते है और अपने आप बढते नही या चलते फिरते भी नहीं. इनको अचेतन कहते है. पेड, परिंद्, पशु, फल, मूल, फूल, पत्ते, सजीव परमाणु (Living cells) इत्यादि सेंद्रिय या सचेतन है. निरिन्द्रिय द्रव्योंमें भी कुछ प्रकार होते है. जैसे-सुवर्ण, लोहा, चांदी आदीको 'धातु' कहते है. सोनामांखी, अभ्रक आदिको उपधातु कहते है. इन धातु और उपाधातुओंको शुद्ध करके उन पर शोधन, मारण इत्यादि क्रिया करके उनके भस्म तैयार करते है. भस्म यह आयुर्वेदमें एक विशेष प्रकारका कल्प है.

धातु और उपधातु ये बहुतसे 'खनिज' याने खान मे मिलते है. इनमें दूसरी निरिन्द्रिय चीजें मिली हुई रहती है. शुद्ध धातु खानमें नही मिलती इसलिए उनको शुद्ध करना पडता है. "शुद्धिसंस्कार" याने धातुओंको शुद्ध और स्वच्छ करना. यह क्रिया भिन्नभिन्न धातुओंके लिये भिन्नभिन्न होती है और भिन्नभिन्न द्रव्यभी इस्तमाल करते है. शुद्धिसंस्कारसे दो काम होते है. एक उस धातूको स्वच्छ करना और उसमे मिलेहुए दूसरे और धातुओंको अलग करना. दूसरा यह काम होता है कि यह धातु बिलकुल मुलायम बन जाती है और उसकी भस्म सुलभतेसे बन सकती है. ये दोनो कार्य साध्य करनेके लिये धातूको तपातपाकर भिन्नभिन्न पतली चीजोंमें डुबाते है. ये चीजें सेन्द्रिय या निरिन्द्रिय होती है. जैसे अम्ल, तैल, छांछ, गोमूत्र, कांजी इत्यादि. ये चीजें भिन्नभिन्न धातुओंपर अच्छी तरहसे संस्कार कर सकती है. और यह संस्कार उन धातु उपधातुओंकी भस्म बनाने के पहले करना जरूर है. संस्कार न करके भस्म बनानेसे एक तो भस्म जल्द और अच्छी नही बन सकती और गुणधर्मशास्त्रमें लिखे हुए गुणभी इसमें

नही पाये जाते. जैसे-वंग (रांगा) शुद्ध करनेसे बिलकुल मुलायम बन जाता है उसकी भस्म भी अच्छी और जल्द बनती है. अशुद्ध रांगामें नाग (सीसा) और दूसरे धातू मिले हुए रहते है और भस्मको बिगाडते है. शुद्धिसंस्कारसे ये दूसरे धातू अलग किये जाते है. अशुद्ध रांगा इतना मुलायम भी नही रहता. दूसरी यहही वजह है कि उसपर मारण-संस्कार अच्छा और जल्द नहीं हो सकता, और उसकी भस्ममें भी शुद्ध रांगा नहि रहता. इसमें दूसरे धातू मिले रहते है.

धातु और उपधातुओंकी भस्म बनानेमे उनपर तीन संस्कार करने पडते है-शुद्धि, मारण और अमृतीकरण (या निरुत्थत्व-जिसमेसे फिर वह धातु नहि बना सकते है-प्राप्त होने तक उसपर संस्कार करना). उनमेसे शुद्धि-संस्कारके वावत हम लिख चुके है. "मारण" संस्कार "पुट" और "भावना" से होता है. "मारण" के माने यह है कि धातूमे जो 'धातुत्व' या 'धातुपरमाणु' रहते है उनको बिलकुल छोटे छोटे करके अत्यंत सूक्ष्म, निरुत्थ और "सेन्द्रिय घटक-युक्त (उनका सेन्द्रिय द्रव्योंसे संयोग Organic compound) बनाना. 'मारण' माने नाश करना. "धातुमारण" के माने धातूके "धातुत्व"का नाश यह नही है. धातूको कितनाही सूक्ष्म बनावे, इतनाही नही किंतु स्थूल रासायन दृष्टीसे उसका करीब करीब नाश होवे, तब भी यह भस्म या अन्य योग अपना खास असर नहि छोडता यह साबित हो चुका है.* धातुओंके स्थूल और निरिन्द्रिय परमाणु जितने छोटे बन सकते है उतने छोटे छोटे बनाये जाते है. उनपर सेन्द्रिय द्रव्योंसे संस्कार किये जाते है. यह ही "धातु-मारण" का विशेष है.

धातुओंको शुद्ध करके उनको यथा योग्य 'मारक' याने उनका सूक्ष्म चूर्ण बनानेवाली चीजोंसे मिलाकर, अग्निसंस्कारसे उनका भस्म बनाया जाता है. जैसे-वंगभस्म—यह बनानेमें प्रथम इमलीकी छाल और पीपल की छाल उनका एक सूक्ष्म चूर्ण बनाके चूलेपर तपी हुई रांगामें डाल डाल कर घोंटना पडता है और ऐसा ५।६ घंटे तक जारी रहनेसे कुछ भस्मसा बन जाता है. फिर उसपर 'पुट' और 'भावना' देनेसे उसकी शुद्ध और खात्रीकी भस्म बन जाती है. "मारण-संस्कारों" मे यह प्रथम संस्कार है और इसमेंभी वहुतसे सेन्द्रिय द्रव्य इस्तमाल किये जाते है. नागभस्मके समय कभी कभी मनसिल इस्त-

---

*धातुओंके हौमिओपॅथिक योग बनाते है. उनमें १२० से जादा नंबरमें "रासायनी परीक्षासे धातू मिलतेही नही किंतु उनका असर रोगियोंपर अच्छी तरहसे दिखलाई देता है" यह तज्ज्ञोंका मत हौमिओपॅथीमें लिखा हुआ है.

माल करते है यहही एक अपवाद है. किंतु इसमेंभी 'पुट' सेन्द्रिय द्रव्योंसे दिये जाते है.

मारण-द्रव्योंका विचार करनेसे यह मालूम होता है कि करीब करीब वह सब तीक्ष्ण और क्षारभूयिष्ठ या क्षार बनानेवाले होते है. अब यह सवाल मनमें आता है कि उन द्रव्योंकी जगह उनके क्षार क्यौं न लेवें? और वे क्षार भी आजकलके रासायनी क्रियासे बनाकर उनका इस्तमाल मारण में क्यौं न करे? मारण क्रियामें जो जो द्रव्य इस्तमाल किया जाता है वह भी जल जाता है और उसकी खाक उस धातूमें मिल जाती है और उस खाकमें जो क्षार रहता है उसीसे तो मारण होता है. आगमेंभी सब द्रव्योंका केवल क्षार रह सकता है. तो पहलेसे क्षार क्यौं न इस्तमाल करें? ये सवाल पहले तो बाजूब दिखते है. किंतु आयुर्वेदीय रसतंत्र का उद्देश केवल रासायनिक योग बनानेका नही है. निरिन्द्रिय चीजोंपर संस्कार करके उनमें जितना सेन्द्रियत्व प्राप्त हो सकता है उतना प्राप्त करानेका प्रयत्न किया जाता है. इसलिए धातुओंका मारणद्रव्योंसे धीरे धीरे संबंध आना जरूर है. और वनस्पतिओंका उनसे अच्छी तरहसे मिलाफ होना चाहिये. क्षारोंके इस्तमालसे स्थूल रासायनिक कल्प जरूर बनेगा किंतु सेन्द्रिय द्रव्योंके सेन्द्रिय द्रव्यभूयिष्ट (जीवन रासायनिक) कल्प बनेगा. इतना इन दोनोंमे फ़र्क है. और इसी तरह संस्कारोंकी मीमांसा हो सकती है.

इस प्रथम संस्कारसे धातूका मारण होता है और वह अच्छी तरहसे पीसा जाता है. तब भी इसमें धातूकी छोटी छोटी गोलियां मिल सकती है. उनको छाननी या कपडेसे छानना पडता है. 'मारण' संस्कारके बाद 'भावना' या पुट का संस्कार किया जाता है. इसके माने यह है कि पीसी हुई धातूको वनस्पतिओंके स्वरसमें या गोमूत्रके समान सेन्द्रिय चीजोंमे भिगोना. वनस्पतिओंका स्वरस निकालनेमें उनमें दूसरी चीजें न डालना अच्छा होगा. वनस्पतीके रसमे या गोमूत्रमे भिगाकर उस धातूको अच्छी तरहसे सुखाना और फिर अग्निपुट देना चाहिये. दो खपरियामे धातूको रख कर उन खपरियांको अच्छी तरहसे जोड देते है. और यह "संपुट" अग्नीमें डाला जाता है. इस लिए इस क्रिया को 'पुट' कहते हैं. 'पुट' के कुछ प्रकार होते है. ज्यादा, मध्यम या कम अग्नि देनेसे 'पुट' के गजपुट, कुक्कुट-पुट, लघुपुट इत्यादि प्रकार होते हैं. 'पुट' में भस्म अच्छी तरहसे गरम हो जाती है और भुनाई जाती है. खुल्ले बरतनमें या कढाईमें भुनाये तो 'संपुट' मे भुने हुए भस्मके माफिक उसका रंग नही होगा

और देर भी जादा लगेगी. जब संपुटमें सूखे स्वरसके साथ भस्म गरम होती है तब उसपर धीरे धीरे उस रसका असर पड जाता है. कढाईमें यह नहि हो सकता. इसलिए अपने आचार्योंके ग्रंथोंमे लिखी हुई रीतसे संपुट बनाना योग्य है. इस तरह संपुटमे भस्मको अच्छी तरहसे भुनाकर उसको खरलमे डाल कर घोंटना चाहिये, और फिर कपडेसे छानना चाहिये. फिर वनस्पतीके स्वरसमे भिगाकर और सुखाकर संपुटमे अग्निपुट देना चाहिये इसी तरह कुछ धातुओंको सौ सौ तक और कुछ धातुओंको हजार हजार तक पुट देना पडता है. "सहस्रपुटी अभ्रक" इसी तरह एक हजार पुट दे कर बनाया जाता है.

'भावना' और 'पुट' कहांतक देना पडता है? जहांतक भस्म निरुत्थ न बने, याने भस्मको तपायें तो भी फिर वह धातु न बने. कुछ धातुओंको केवल निश्चन्द्र बनाना यहही एक परीक्षा है. निश्चन्द्रके माने यह है कि उसमे धातूकी चमक जराभी न रहे. निश्चन्द्र और निरुत्थ भस्मोंमे निरुत्थ भस्म श्रेष्ठ मानी जाती है. जिस भस्ममें आगसे फिर धातु बन जाती है वह भस्म निंद्य मानी जाती है. 'भस्म निरुत्थ न होनेमे यह धोखा रहता है कि भस्मका जब अपने बदनमें पचन होगा तब उसके सेन्द्रिय योग बननेके बदले फिर वह मूल-धातू न बन जाय, भस्मसे शरीरमे फिर वहही धातु बन जायेगी तो वह शरीर को नुकसान पहुंचायेगी, उसका 'शल्य, रह जाएगा. भस्म निरुत्थ बनी है या नही उसकी परीक्षा यह है. प्रथम उसको सुहागेका लावा, आकका रस या पंचक (चितावर, राई, थूहर, आक और हींग) से मिलाकर आगमे खूब तपाना. भस्म निरुत्थ हो तो उसमेंसे फिर धातु न बनेगी और भस्म जैसी पहिले थी वैसीही शुद्ध और स्वच्छ रहेगी. निरुत्थ न हो तो फिर इसमे धातूके छोटे छोटे कण दिखलाई देंगे.

'अमृतीकरण' संस्कार कुछ भस्मोंपर किया जाता है. इससे वह भस्म अधिक फायदेमंद होती है और उसमे दोषभी कम रहते है.

हम लिख चुके है कि आयुर्वेदीय रसतंत्रका ध्येय केवल रासायनिक कल्प बनानेका नही है किंतु निरिन्द्रिय द्रव्योंके, सेन्द्रिय द्रव्योंसे उनपर संस्कार करके, सेन्द्रिय रासायनिक कल्प बनाना यह ही है. ऐसा क्यौं है? इतने परिश्रम क्यौं किये जाते है? आजकलके दिनोंसे इतने परिश्रम और संस्कार करना कितना ताज्जुब होगा और आधुनिक वैद्यकसे मुकाबला कैसा कर सकें. कुछ ग्रन्थकार तो इतना भी कहते है कि "प्राचीन शास्त्रकारोंको रसायनशास्त्रका ज्ञान बिलकुल नही था, इसलिये उन्होने रसायन बनानेमे इतनी लम्बी चौडी क्रिया.

लिखी है. इससे कुछ फायदा नही है" इन लोगोंके ये बिचार सुनकर उन्ही लोगोंके अज्ञानकी करुणा आती है.

आयुर्वेदीय गुणधर्मशास्त्र और रसतंत्र का मूल रहस्य "त्रिधातु-मीमांसा" है (दोष, दूष्य, धातुमीमांसा ही है) और इसी पर आयु-र्वेदका इमला बंधा हुवा है. कुछ भी वैद्यक लेंवे तो उसमे शरीरका चलना और विगडना एक स्वतंत्र तरीकेसे वर्णन किया जाता है और इसी तरीके या मीमांसापर उस वैद्यकके दूसरे विभाग बंधाये जाते है. आयुर्वेदमेभी शरीर और उसके व्यापारोंका संबंध एक अलग तरी-केसे बताया गया है. इस बात को सोचनेसे ऊपर लिखे हुवे सवालोंका जबाव मिल सकता है.

स्थूल शरीरावयव (शरीर), इन्द्रिय (ज्ञानका ग्रहण करना), सत्व (मन) और आत्मा इनके संयोगको आयुर्वेदमे "आयुष्य" कहते है. केवल शरीर या दूसरे और विभाग अलग अलगसे 'आयुष्यकर' नहीं हो सकते है यह आयुर्वेदका सिद्धांत है. उन सब विभागोंका संयोग "आयुष्य" कहा जाता है. "तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहा-भूतसमुदायात्मकं समयोगवाहि" (चरक शारीर) इस तरह शरीरकी व्याख्या की गयी है. चेतना जिसके आधारसे रहती है और जिसमें पंचमहाभूतोंका संयोग रहता है और इस संयोगको जो कायम रखता है वहही शरीर है. ऊपर लिखी हुई व्याख्याका यहही सार है. "चेतना-धातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः।" "चेतनावान्परश्चात्मा।" इत्यादि चेतनावान् आत्माके बाबत बहुत कुछ उल्लेख मिल सकते है. चेतना (Self Consciousness स्वयंस्फूर्त चेतना) यह केवल आत्माका गुण है. इसी वजह जिसमे यह आत्मा रहता है उस शरीरको 'सचेतन शरीर' कहते है. सचेतन शरीर और निरिन्द्रिय द्रव्योंसे भरा हुवा सब संसार इनमे 'चेतनाधिष्ठानभूतत्व' यह ही एक विशेष फर्क है. निरिन्द्रिय सृष्टि अचेतन और इसी कारण जड, स्थूल, पंचमहाभूत-समुदायात्मक होती है. सचेतन शरीर में ऐसी पंचमहाभूतसमुदायात्मक याने अचेतन चीजें भी रहती है और चेतनाभी रहती है. इसी वजह सचेतन शरीरके सब व्यापार बाह्य अचेतन संसारके व्यापारोंसे भिन्न प्रकारके होते है.

शरीरमे जो अचेतन चीजें मिलती है वे बाह्य अचेतन संसारमें मिल सकती है. पंचमहाभूत के माने यह है कि द्रव्योंको विभागनेसे जो पंचमहातत्व मिलते है, जिनके आगे उन द्रव्योंके और विभाग नहीं

हो सकते. इन पंचमहातत्त्वोंका विचार अपने शास्त्रमें एक विशेष पद्धतीसे किया गया है. संसारमे जो कुछ चीजें मिलती है उनकी अवस्थाओंका विचार करके यह पद्धति पंचमहातत्त्वोंका स्वरूप विवेचन करती है. इसी कारण पंचमहाभूत या पंचमहातत्त्व संसारकी अचेतन चीजोंके आखीरी विभाग होते है. और पंचमहाभूतोंके अलग अलग संयोगोंसे भिन्नभिन्न द्रव्योंकी उत्पत्ति होती है. इसी को "पञ्चीकरण" कहते है. द्रव्योंके जो गुण और कर्म होते है वे भी इसी "पञ्चीकरण" मे जो महाभूतोंका संयोग होगा उस संयोगके सहारे रहते है. जैसे–मुनक्का, मिश्री और चितावर–इनमेंसे मुनक्का और मिश्री मधुर और चितावर कटु याने तीखा होता है, इस भेद की वजह क्या है? तीनों चीजें पंचमहाभूतोंसे वनी हुई हो, तो इनमे ऐसा फर्क क्यों है? इसका जवाब यहही है कि द्रव्योंके भीतर पंचमहाभूतोंके परमाणुओंकी अलग अलग क़िस्मकी रचना होती है और इसी रचनासे उन द्रव्योंमे उनके विशिष्ट कर्म और गुण पैदा होते है, और इसी पंचमहाभूतोंकी रचनाको "पंचीकरण" कहते है. यह उपपत्ति आजकलकी इलेक्ट्रॉन्स और प्रोटॉन्सके उपपत्तीसे कुछ मिलती जुलती है. स्थूल या अचेतन द्रव्योंके उत्पत्तीकी यहही उपपत्ति है. अपने शरीरमें भी सब स्थूलद्रव्योंकी उत्पत्ति 'पंचीकरण' से है और इसी लिये उनको शास्त्रकार पञ्चमहाभूतात्मक (Physico-chemical Basis of the body) कहते है. शरीरके हड्डियोंमे चूना है, खून मे लोहा है, स्नायु और वातवाहिनिओंमे मॅग्नेशिया है. इसी तरह शरीरके सब विभागोंमे क्या क्या निरिन्द्रिय चीज है यह कह सकते है.

परंतु शरीर केवल इन स्थूलद्रव्योंसे या इनके मूलभूत पंचमहाभूतोंसे नही जी सकता. केवल स्थूल द्रव्योंके कर्म और गुणोंकी मीमांसा करनेसे शरीरके विविध व्यापार, स्वयंप्रेरकत्व, मन या बुद्धीके व्यापार इनकी मीमांसा नही हो सकती. इसके माने यह है कि इस पंचीकरणमीमांसासे शरीरके कुछ थोडेसे व्यापारोंकी तलाश लग सकती है. सब व्यापारोंकी नही.[१] शरीर पंचमहाभूतात्मक है और चेतनाधिष्ठानभूत भी है और विकास या उत्क्रान्तीके कारण इसमे व्यापारभिन्नता और इसके स्थूल द्रव्योंमे रूपभिन्नता पायी जाती है. जीव या आत्मा के

---

१ इसीका अंग्रेजीमे अनुवाद यह होगा —

Only Physico-Chemical Laws will not be able to explain the integral phenomena of life. There are higher and special laws of life-phenomena.

अधिष्ठानसे शरीरके द्रव्योंमे और उनके गुणधर्ममे फर्क हो गया है. जैसे–शरीरमे जो पचनक्रिया होती है और स्थूल द्रव्योंमेसे उनके भूतांशोंका विभाग होता है यहही कार्य बाहरकी रासायनी क्रियासे करें तो इसको बहूतहि अधिक ताप या उष्णता की जरूरत होगी. फिर यहही कार्य शरीरमें बिलकुल कम तापसे हो सकता है.

जीव या आत्माके अधिष्ठानसे शरीरके भिन्न भिन्न व्यापार और द्रव्योंमे जो फर्क हो जाता है उसे आयुर्वेदमे "धातु" या "त्रिधातु" मीमांसा यह नाम रखा है. इसी वजह 'त्रिधातू' के माने वह द्रव्य (तत्व) है कि जिसको "पंचीकरणसे शरीरमे पंचमहाभूतोंकी द्रव्योंमे उत्क्रान्ती या एक विकार उत्पन्न होकर जो चेतना तैय्यार होती है वह, या चेतनाधिष्ठित (जीवाधिष्ठित) सचेतन द्रव्य (तत्त्व)" कह सकते है. शरीरका धारण और पोषण करतें है, इसी लिये उनको "धातु" कहते है (धारणाद्धातवः।) "धातु" सचेतन और जीवाधिष्ठित द्रव्य होते है. और इसीसे यह भी सावित होता है के त्रिधातुओंका स्वरूप, गुण और कर्म यह सब स्थूल महाभूतात्मक द्रव्यों (Physical chemical Substances) से भिन्न और स्वतंत्र है. त्रिधातुओंमे जब विषमता पैदा होती है तब उनको 'दोष,' कहते हैं (दूषणाद्दोषाः।) और ये दोष जब अधिक बढ जायेंगे तो उनको, या धातू बनानेमे जो दूसरे नाकाम द्रव्य पैदा होते है उनको 'मल' कहते है. (मलिनीकरणान्मलाः।) वैद्यक ग्रंथोंमे 'दोष' 'धातु' और 'मल' इन शब्दोंका एकही अर्थसे प्रचार किया हुआ नजर आता है. किंतु इनका वर्णन बिलकुल अलग अलग किया हुआ है. 'धातू' इस शब्दके माने वात, पित्त और कफ ये ही "त्रिधातू" है. रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इनको भी धातू कहते है. किंतु "त्रिधातुओंको" प्रसादधातू भी कहते है. प्रसादधातू दूसरे सामान्य धातुओंसे अलग है यह कहनेकी भी जरूरत नही.

"दोष, धातु, मल मूलं हि शरीरम्।" इस सूत्रमें जो शरीरकी मीमांसा की गयी है, उसीका विवेचन अबतक हम कर चुके है.

एवं शरीरके चार विभाग होते है.

१ चेतनावान् आत्मा.

२. मानस विभाग.

३. त्रिधातू.

४. (अ) स्थूल धातु.

(आ) पंचीकृत पंचमहाभूतसमुदायात्मक शरीर.

इस तरह शरीरके मूलद्रव्य शरीरके संचालक और व्यापार-जनक होनेसे उनमे जीव या चेतनाका अधिष्ठान रहता है. और यह चेतनाधिष्ठान प्राप्त होनेसे उनमे जो विषमता (दोष) पायी जाती है वह भी इसी स्वरूपकी होगी यह स्पष्ट है. " रोगस्तु दोष वैषम्यम् " या " विकारो धातुवैषम्यम् " इन दोनों वचनोंमे आयुर्वेदका रोग शब्दका अर्थ प्रतीत होता है. रोगके लक्षण बहुत होंगे किंतु इन सब लक्षणोंका मूल एकही शारीरिक विकृति याने धातुवैषम्य होता है. इसी वजह रोगकी व्याख्या ऐसी की गई है.

चेतनाधिष्ठित याने सजीव धातुओंके आधारसे शरीरके अंदर सब हालचाल चली रहती है और उनही धातुओंकी विकृति (वैषम्य) होकर दोषोत्पत्ति होती है और उनही दोषोंसे सर्व शरीरमें विकार या रोग पैदा होते है. शरीरमें जो दोषवैषम्य होता है वह वैषम्य शुरू होनेके लिये कुछ कारण होते है, यह बात अलग है. रोगजंतु या अणु यहभी उन कारणोंमेसे एक प्रमुख कारण हो सकता है. इन कारणोंसे प्रथम धातुवैषम्य या दोष पैदा होते है और फिर रोगके लक्षण देखनेमें आते है. यह दोषभी प्रथम धातुओंके स्वरूपके रहते है याने यह दोषका द्रव्यभी सेन्द्रिय होता है. उनमेसे उनका वैषम्य (विषमता) निकाला जाय तो ये धातुरूप बन जायेंगे और धातुसाम्य प्रस्थापित होगा, नीरोगता होगी. यह नीरोगता प्राप्त होनेके लिये जो कुछ इलाज किये जाय वे सब इसी प्रकारके होने चाहिये जिनसे सेन्द्रिय दोषोंमेसे वैषम्य निकल जाय.

संसारमें यह एक महत्वका सिद्धान्त है कि समानगुणकर्मयुक्त द्रव्योंसे समानगुणकर्मयुक्त द्रव्योंकी वृद्धि होती है.* समान जातीय द्रव्य समानगुणयुक्त द्रव्योंसे बढ जाते है, इतनाही नही किंतु समान गुणयुक्त द्रव्य एक दूसरेके तरफ खींचा जाता है. उनमे एक किस्मका आकर्षण रहता है. बाह्य लोह शरीरमें जाय तो वह अपने आप शरीरके लोहसे मिश्र होता है या उस तरफ खींचा जाता है. चूना या चूनेके दूसरे क्षार खानेसे वे हड्डियोंके भीतर

---

*सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।
ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु ।
सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत् ।
तुल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्यय ।। चरक सू. अ. १

खींचे जाते है. तीखी चीजें पित्तका वर्धन करतीं है. गुरुद्रव्य या मधुर द्रव्य शरीरका बृंहगा करते है. उत्तेजक दवाइओंका असर वातवाहिनी, वातवह केन्द्र और स्नायु इनपर होता है. याने इन तीनों स्थानोंपर वे दवाइयां खींची जाती है. इन उदाहरगोंसे यह ही प्रतीत होता है कि समान द्रव्य, समान गुगा और समान कर्म ये सब शरीरके समानद्रव्य गुगाकर्मोंसे आकर्षित होने है.

विशेष याने विषम गुगाके द्रव्योंसे उन २ गुगोंका न्हास होता है. इन दोनों तत्त्वोंका शास्त्रीय रोगचिकित्सामे वहुत काम पडता है. किंतु यहां केवल इतनाही कह सकते है कि शरीरके समान द्रव्योंसे वाहरके समान द्रव्य खींचे जाते है. शरीर सेन्द्रिय होनेसे वाहरके भी सेन्द्रिय पदार्थ सुभीतेसे खींचे और आत्मसात् किये जाते है. निरिन्द्रिय द्रव्य इतने सुभीतासे न तो खींचे जा सकते, न आत्मसात् किये जाते. यह तो सच है कि सेन्द्रिय द्रव्योंमे जो कुछ पञ्चमहाभूतात्मक विभाग होगा उसका निरिन्द्रिय द्रव्योंकी सहायतासे और संशोषगासे जरूर फायदा होगा. किंतु कुल सेन्द्रिय द्रव्यपर इतना असर निरिन्द्रिय द्रव्यसे नही हो सकता. इसी वजह केवल स्थूल (निरिन्द्रिय) रासायनिक द्रव्योंसे (दवाइओंसे) अपने शरीरपर इतना असर नही हो सकता. अपने शरीरके सेन्द्रिय घटकोंमे जो कुछ निरिन्द्रिय चीजें (लोह, चूना, मॅग्नेशिया, गंधक, फॉस्फरस इत्यादि) पायी जाती है, वे भी वाह्य निरिन्द्रिय चीजोंसे स्वतंत्र है इतना सिद्ध हुआ है. रासायनिक क्रियासे वनाए हुए द्रव्योंसे सेन्द्रिय द्रव्योंमे जो द्रव्य अधिक पाये जाते है वे अधिक कार्यकारी होते है. जैसाः—सोडा सॅलिसिलास जो सेन्द्रिय द्रव्योंसे वनता है वह अधिक जल्द शरीरपर असर करता है और उसके सेवनका प्रमागा भी कम होता है. यहही सोडा सॅलिसिलास रासायनिक प्रयोगोंसे लॅबोरेटरीमें वनाया जाय तो उसका इतना असर नहीं हो सकता. इसके माने यह है कि निरिन्द्रिय द्रव्योंपर भी एक बार सेन्द्रियत्वका संस्कार किया जाय तो उनमे भी उस सेन्द्रिय द्रव्यसे ऐसे कुछ गुगा पाये जाते है, जिन गुगोंके कारगा वह सेन्द्रिय द्रव्योंके साथ जल्द मिल जा सकता है.

यहही नियम भस्मोके वावत सत्य है. भस्म तय्यार करनेके लिये प्रथम तो निरिन्द्रिय धातु ली जाती है किंतु उसका मारगा करनेसे उनके कगा बिलकुल छोटे और अलग अलग किये जाते है और उसी सूक्ष्म कगोंपर वनस्पति जैसे सेंन्द्रिय पदार्थोंका संस्कार किया जाता है, इस हेतूसे कि वे सेन्द्रिय सूक्ष्म अंश धातुओंके सूक्ष्म कगोंसे

मिल जाएं. इस अंशसंस्कारसे धातुओंके मूल गुण कायम रक्खे जाते है और उनमे कुछ ना कुछ सेन्द्रियत्व पैदा होता है.

इस प्रकार सेन्द्रियत्व पैदा होनेपर भस्मोंका (और आयुर्वेदीय रसक्रियासे बनायी हुई सिद्धौषधिओंका) शरीरके जो पंचमहाभूत-समुदायात्मक शरीरांश होते है उनपर अच्छी तरह असर होता है. इसी तरह शरीरके दूसरे अवयव-त्रिधातु और मन (मानस शरीर) इनपरभी असर होता है. इन भस्मोको सेन्द्रियत्व प्राप्त होनेसे और उनकी सूक्ष्मतासे वे सर्व शरीरके अंदर बिगर अटके हुए घूम सकते है और शरीरके सूक्ष्म सेन्द्रिय कणोंमे (परमाणुओंमे) खींचे जाते है. अभ्रकभस्मसे उन्मादरोगके कुछ प्रकारमें फायदा होता है वहभी इसी कारणसे है. अभ्रकका भस्म न लें और उसकी जगहमे केवल कच्चा अभ्रक लें तो इससे कुछभी फायदा न होगा, इतनाही नही बल्कि कुछ नुकसान उठाना पडेगा. प्रवालभस्मका कार्य मृद्वस्थि विकारमें (Rickets) इतना फलदायी होता है के उसे देखनेसे आश्चर्य पैदा होता है. चूनेका दूसरा कुछभी निरिन्द्रिय कल्प प्रवालके समान कार्य नही कर सकता. लोहभस्ममेंभी यह बात देखनेमें आती है. लोहभस्म औषधीमें बिलकुल कमप्रमाणसे दे सकते है. इतने छोटे प्रमाणमेंभी "धातुसाम्यप्रवृत्ति" उत्पन्न करनेकी शक्ति लोह-भस्ममे है. निरिन्द्रिय लोह लोहभस्मके समान कार्य नही कर सकता. आयुर्वेदीय चिकित्साका यह ही एक उद्देश है कि त्रिधातु और मानस-शरीर इन सूक्ष्म अवयवों तक धातु और उपधातुओंका कार्य पहूंच जाय. इसी उद्देशसे स्थूल और निरिन्द्रिय धातुओंपर सेन्द्रिय द्रव्योंका संस्कार बारबार करनेकी कोशिश की जाती है. वे सब धातु या उप-धातु बिलकुल सूक्ष्म बनाये जाते है और जहां तक सके वहां तक उनमें सेन्द्रियत्व पैदा करके कल्प बनाये जाते है.

धातुओंकी भस्म बनानेके लिये उनपर जो कुछ संस्कार किये जाते है उन संस्कारोंसे उनमे गुणवृद्धि और वीर्यवृद्धि पायी जाती है और उनमेसे दोष बाहर निकाले जाते है.* जैसे-सोनामाखीमें उसका गंदा स्वाद, और उल्टी (कै) हो जानेका और सिरमें चक्कर उत्पन्न करनेका दोष है. वे सब दोष सोनामाखीके सशास्त्र बने हुए भस्ममें नही पाये जाते है. संस्कारमें वे निकाले जाते है. प्रत्येक द्रव्यमें कुछ गुण और कुछ दोष होते है. इनमेंसे जो विशेष गुण होंगे उन्हीका फायदा उठाना चाहिये और जिनकी जरूरत नही है उनको निकालना चाहिये.

---

* संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते। चरक वि. अ. १-२७

औषधियोंमे जो गुण शारीर धातुओंका परिपोष करते है और उनका बल बढाते है वे गुण कायम रखना चाहिये और जिन गुणोंसे शारीरिक दोषोंमे अनिष्ट वृद्धि हो जाय वे कुछ संस्कारोंसे निकालना चाहिये. औषधियोंके जो कुछ गुण होंगे उनमे कुछ फायदेमंद होंगे और कुछ नुकसान करेंगे. जिन गुणोंसे शरीरका रोग बढ जायेगा वे दोष कहलाये जाते है. क्यौंकि उपकारक गुणधर्मको गुण और अपकारक गुणधर्मको दोष कहना चाहिये. भस्म जब दोषरहित होंगे तब सशास्त्र सिद्ध माने जायेंगे. सच कहे तो हरएक द्रव्यमें जो कुछ कार्यशक्ति रहती वह सब उन द्रव्योंके विशेष गुणसेही होती है. वह कार्य अच्छा हो या बूरा हो, वह उस द्रव्यका विशेष गुण है. किंतु जिस परिस्थितिमे या रोगकी अवस्थामे, उसकी जरूरत होगी, उससे फायदा होगा वह गुण और जिसकी जरूरत न होगी, जिससे नुकसान होगा, उसको हम दोष समझते है. जैसे–ताम्रः–इसमे वमन (कै) करानेकी शक्ति है. इस शक्तीकी जहां जरूरत होगी वहां यह वामक गुण समझा जाएगा. किंतु जहां इस शक्तीकी जरूरत नही है बल्कि इससे नुकसान है वहां यह दोष समझके उसे निकालना पडेगा. इसी लिये ताम्रभस्म तय्यार करनेके संस्कारोंमे वह वामकत्व निकालनेके संस्कार है. और जहांतक यह वामकत्व इसमे बना रहा है वहांतक वह शुद्ध और पूर्ण नही मानी जाएगी. निष्कलंक ताम्रभस्म बननी चाहिये. इस तरह जिस अवस्थामे वह भस्म देना है उस अवस्थाका, और दोषदूष्यादिओंका पूर्ण विचार करके संस्कार ठहराये जाते है और भस्म बनायी जाती है. जिस तरहके संस्कार करके वह भस्म बनायी जाय उसी तरहके गुण इसमे आ जायेंगे. इसी लिये औषधीयोजना करनेके समय वह भस्म कौनसे संस्कारसे बनायी गयी है इसका ख्याल रखना चाहिये. जैसे प्रवालभस्म, मामूली और अग्निपुटी. मामूली प्रवाल, गुलाबपानी, घीगुंवार आदि शीतवीर्य दवाइयोंके संस्कारसे बनाई जाती है. और उसका बहुत सूक्ष्म चूर्ण बनाते है. इसलिये शरीरमे जब तीक्ष्णत्वादि गुण बढ जायें तब यह प्रवाल देनी चाहिये. तीक्ष्णत्व यह पित्तका गुण है. प्रवाल पित्तघ्न होनेपरभी तीक्ष्णत्वादि लक्षणोंमे अग्निपुटी प्रवालभस्मका इतना उपयोग नही होगा. क्यौंकि वह अग्निसंस्कारसे बनी हुई है, और इसी वजह इसस तीक्ष्णत्वादि लक्षण बढ जाएंगे, कम नही होंगे. पित्तके जो दूसरे लक्षण होते है, जैसे सरत्व, द्रवत्व और विस्रत्व, उनमे अग्निपुटी प्रवालसे अधिक फायदा होगा. बहुत जलन के साथ वमन हो तो उसमे मामूली प्रवालभस्मसे फायदा होगा.

लेकिन उलटीमे बदबू, खट्टापन और पानीके माफिक पदार्थ आता हो तो इसमे अग्निपुटी प्रवालसे फायदा होगा. ऐसा अग्निपुटी और मामूली प्रवालभस्ममे फर्क है.

भस्म जिन धातु और उपधातुओंकी बनाई जाती है वे सब अपने शरीरके चित्परमाणुओंमे पाये जाते है. शरीरके छोटेसे छोटे परमाणुओंका भी (चित्परमाणुओंका) पृथक्करण आजकल किया हुवा है. उनमें भी निरिन्द्रिय द्रव्य पाये जाते है. किंतु बाहरके निरिन्द्रिय द्रव्यके परमाणुओंका शरीरके अंदर खींचा जाना दुर्घट है. इसीलिये उनके सूक्ष्म-अत्यंत सूक्ष्म-विभाग बनानेकी कोशिश की जाती है. भस्मोंपर किये हुवे संस्कारोंसे (भावना और पुट) उनके परमाणू सूक्ष्म किये जाते हैं और इनमे "गुणान्तराधान" याने अन्य गुणोंका प्रस्थापन किया जाता है. नये गुण उनमे पाये जाते है. जैसे-स्थूलत्वकी जगह सूक्ष्मत्व, गुरुत्वकी जगह लघुत्व, संहतत्वकी जगह विरलत्व इत्यादि. कुछ भी द्रव्य लो उसका मूल याने प्रमुख गुण वह द्रव्य न छोडेगा. "स्वभावो निष्प्रातिक्रियः" याने द्रव्यके मूल स्वभावमे हम कुछ भी फर्क नही कर सकते हैं. जैसे-घृत या तैल. इन दोनोंपर कुछ भी संस्कार करो, वे अपने स्नेहन गुणको कभी नहीं छोडेंगे. ताम्र, अपना तीक्ष्णत्व कभी नही छोडेगा. किंतु इस प्रधान गुणके साथ जो कुछ अन्य गुण होंगे उनमे संस्कारोंसे कम जादा कर सकते है. अभ्रकका प्रधान गुण धातुपरिपोषणक्रममें सहायता करनेका है और इसकी भस्म भी सब धातुओंका परिपोषण करती है. इस प्रकारसे भस्ममें गुण बढाये जाते है और दोष निकाले जाते हैं.

"गुण' के माने द्रव्योंकी भिन्न भिन्न क्रिया. जैसे-वंग (रांगा) उष्ण तीक्ष्ण और गुरु होता है. इसके माने यह है कि पचनके लिये वह गुरु या भारी है. और इसका वीर्य याने कार्यकारी शक्ति उष्ण (दीपन करनेवाली) और तीक्ष्ण (स्फोटक) है. ये वंगके तीन गुण भिन्न भिन्न अवयवोंमे, त्रिधातुओंमे और मनोदेशमेभी प्रत्ययमे आते है. भस्मका कार्य इतना सूक्ष्म होने के लिए वंगमे सूक्ष्मत्व यह गुण बढाना पडता है. एवं, द्रव्योंका भिन्न भिन्न अवयवोंमे जो विशेष कार्य होता है उसीका परिणाम 'गुण' है. इसीका ख्याल रखके भस्म बनानेके वख्त धातु उपधातुओंके दोष निकाले जाते है और उनके गुण बढाये जाते है. अंतिम हेतु यहही है कि भस्मका (सूक्ष्मभूत द्रव्यका) कार्य सूक्ष्म पेशी और परमाणु (जीवाधिष्ठित-सजीव) इनपर होना चाहिये. इसी वजह अभ्रकभस्म इत्यादिक भस्मोंका कार्य कुछ अजीवसा

आश्चर्यकारक देखनेमें आता है. आयुर्वेदशास्त्रमें इस 'गुण संस्कार' की उपपत्ति बहुत कुशलतासे प्राप्त की गई है.

दूसरे द्रव्योंके समान भस्मोंकाभी कार्य, रस, वीर्य और प्रभावके द्वारा प्रतीत होता है. 'गुणपरिपोष' अच्छी तरहका होनेसे भस्म किये हुये 'द्रव्य'का गुण कई दिन बना रहता है. और 'धातुसाम्य-प्रवृत्ति भी'* अधिक देर तक कायम रहती है क्योंकि उस भस्मकी व्याप्ति इतनी बढ जाती है.

भस्ममे, और जिस द्रव्यसे वह भस्म बनाई है उसमे प्रथम कार्यकारी एक रस बतलाया जाता है. जैसे-सुवर्ण-मधुर रसात्मक, रौप्य अम्लरसात्मक और लोह--कषाय रसात्मक. इसके माने क्या है? शक्करको मधुर रसात्मक कहना ठीक है. क्योंकि शक्कर जबानपर रखनेसेही त्वरित इसका मीठापन व्यक्त होता है. इसी तरह सुवर्णका मधुर रस कैसा व्यक्त होगा? इसका स्पष्ट अर्थ न समझनेसे, इस सर्व विचारको 'झूट' कहनेतक कई लेखकोंकी हद्द होती है.

'रसनार्थो रसः या रसनाग्राह्यो रसः।'

ऋच्छन्ति इन्द्रियाणि अत्र (ज्ञानार्थे) इति अर्थः॥

रसनासे (जबानसे) याने रसनेंन्द्रियसे हमको जिसका ज्ञान होता है वह "रस". इस व्याख्यामें रसनाका उच्चार केवल शाखाचंद्र न्यायसे है. रस जबानसे जल्द मालूम होता है. इसलिये उसकी व्याख्या 'रसना ग्राह्य' याने 'जो जबानसे ज्ञात होता है,' ऐसी की गई है. किंतु जहां जहां इन्द्रियज्ञान हो सकता है वहां रसका ज्ञान भी होता है. जैसे काली मिर्च जबानसे तीखी लगती है और शक्कर मीठी लगती है, फिर वहही तीखापन या मिठास पेट, आंख, कान इत्यादि अवयवोंपर कार्य करता है. आंख सुर्ख हो गये हो तो मिश्रीसे उसका प्रसादन हो सकता है, और पेटमे जलन हो तो भी मिश्रीके मिठाससे वह कम हो जाएगी. पाचकपित्त कम हो तो मिर्च इसका खास इलाज है. यह कार्य उन द्रव्योंमे जो पंचमहाभूतात्मक घटक रहते है उनके वियोजनसे होता है.

---

* विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते। यह प्रकृति-विकृति, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य या रोग-आरोग की व्याख्या है. रोग होने के वक्त धातुवैषम्य (त्रिधातु-वैषम्य) पैदा हो जाता है इसको कम करके "त्रिधातुसाम्य," "धातुसाम्यप्रवृत्ति" उत्पन्न होना चाहिये और कायम रहना चाहिये वह कायम रहनेसेही शरीर स्वस्थ याने नीरोग रहता है. आयुर्वेदशास्त्रका ध्येय भी यहही है. "धातुसाम्य क्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्।"

रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापःक्षितिस्तथा।
निर्वृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययाःखादयस्त्रयः॥ च. सू. अ. १-६३

जबानपर प्रथम असर होनेके लिये द्रव्यमें आप और क्षिति इन महाभूतोंकी आवश्यकता होती है. किंतु मधुरादि रस ज्ञात होनेके लिये सब महाभूतोंकी आवश्यकता है. रसके 'निवृत्ति' के लिये याने उत्पत्तिके लिये द्रव्य (समवायी कारण) पृथ्वी और आप होते है और रसविशेषके उत्पत्तिके लिये ख आदि तीन महाभूत और पृथ्वी और आप यह निमित्तकारण (प्रत्यय) होते है. इसके माने यह हैं कि पांचभौतिक द्रव्योंका वियोजन होनेके समय उस वियोजनका सबसे पहले जो असर होता है उसका ज्ञान अपने शरीरावयवोंको 'रस' के कारण होता है. वह शरीरावयव चाहे रसना हो या गला, आंख या पेट कुछ भी हो. रसो निपाते द्रव्याणाम्। (च. सू. अ. २६). द्रव्यका रसनासे या शरीरके दूसरे अवयवोंसे संबंध होनेसे उसका, स्निग्ध, शीत, उष्ण इत्यादि वीर्यगुण छोडकर जो तात्काल उस स्थानपर और मनपर असर होता है वह 'रस' के कार्यसेही है. काली मिर्चका स्पर्श होनेसेही सबसे पहले उसके तीखापनका असर शरीरके अवयवोंपर होता है, मिश्रीके मधुररसका असर प्रथम होता है. इस विवेचनका सार यह है कि शरीरके अवयवोंपर कौनसे भी द्रव्यका प्रथम जो असर होता है वह उस द्रव्यके रससेही होता है. और वह रस उस द्रव्यमें जो पंचमहाभूतात्मक परमाणू रहते है उनहींसे ज्ञात होता है. और ये पंचमहाभूतात्मक परमाणू सोना, चांदी, लोहा इत्यादि धातुओंमे भी रहते है. शरीरके अवयवोंपर उनका जो प्रथम असर होगा वह, या तो उनके वियोजनसे हो या संयोगसे हो, उन धातुओंका 'रस' माना जायेगा. यह रस केवल रसना (जबान) सेही ज्ञात होगा ऐसा नही. वह पेटसे और दूसरे इंद्रियोंसेभी ज्ञात हो सकता है. इसी वजह जैसे मधुर रससे प्रीणन, आल्हादन इत्यादि परिणाम होता है, वैसा दूसरे द्रव्यसे भी प्रीणन और आल्हादन पाया जाय तो चाहे वह जबानको मीठा लगे या न लगे उसका रस मधुर ही माना जायेगा. आमला और दूसरे कषाय द्रव्योंका शरीरके दूसरे अवयवोंपर जो असर होगा वहही असर करनेवाली दवाइयोंको कषाय रसप्रधान कहना चाहिये. इसी प्रकारसे सोना, चांदी इत्यादि धातु उपधातुओंके रसकी निश्चिति की गई है और यह विचार तर्क पद्धतीसे विरुद्ध नही है. इससे 'रस' का अर्थ यह होता है कि शरीरके अवयवापर उसी स्थानमे (वीर्यादि गुण छोडकर) दूसरे गुणोंसे

होनेवाला तात्कालिक परिणाम. यह परिणाम उन द्रव्योंके संयोगसे या वियोजनसे उन अवयवोंपर स्थानिन और तात्कालिक (Local action or Superficial action) होता है. रसके इस अर्थको ध्यानमें रखे तो रसका कार्य समझनेमे कुछ भूल न होगी. केवल सोना या दूसरे धातू धातुरूपसे तो उनका इतना असर नही होता है. इसालिये उनके भस्म बनाने पडते है. भस्म तैयार करनेमे यह भी एक उद्देश रहता है.

शरीरके अवयवोंपर द्रव्यका जो असर होता है वह उस द्रव्यका पचन होनेसेही होता है. हमारे ख्यालसे 'पचन' शब्दका अर्थ आयुर्वेद-शास्त्रमें बहुतही व्यापक किया गया है. 'पचन' के माने एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यका बनना. इसीको "रूपान्तर या पृथक्करणसे तैयार होनेवाले दूसरे पदार्थ" कह सकते है. काली मिर्च जब जबानपर रक्खी जाय तो जबान पर जो आर्द्रता या पानी होता है उससे वह प्रथम मिल जाएगी और इस मीलनके बाद उसका वियोजन होगा और इसके बाद इसका तीखापन जबानमें जो ज्ञानतंतू होते है उनसे ज्ञात होगा. यह सब कार्य रससेही होता है.यहही नियम अंदरके अवयवोंके बाबत सत्य है.रसका कार्य ज्ञात होनेको स्थानिक पचन या रूपान्तरकी जरूरत रहती है. और इस रूपान्तरसेभी उसका कार्य पूरा नही होता है. इन रूपान्तरित द्रव्योंपरभी आंतोंके अंदरके रसोंका कार्य होता है.उनकाभी पचन होता है. इस दूसरे पचन को 'विपाक' कहते है. विपाकका कार्य रसके कार्यसेभी गहरा और अंदरके इन्द्रियोंपर अधिक होता है. द्रव्यका जब विपाक हो जाता है तब वह द्रव्य रस और रक्तमें मिल जाता है और रसमे या रक्तमे जो कुछ दूसरे द्रव्य रहते है उन परभी उसका असर होता है. और रक्तके साथ शरीरमे घूमनेसे इसका असर दूसरे स्थूल धातुओंपर भी हो जाता है. इससे यह सिद्ध होता है कि 'विपाक' के माने "पचनके बाद द्रव्यके क्रियाका और गुणोंका शरीरपर परिणाम."

रस और विपाक का शरीरपर कार्य स्थूल रासायनिक तरहसेही (Physico-chemical) होता है. भस्मकाभी जो रसका और विपाकका कार्य होता है वहभी इसी स्थूल रासायनिक तरहसे होता है. लोहभस्मके कषायरसका कार्य स्तंभक और सुवर्णभस्मके मधुर रस और मधुर विपाकका कार्य प्रसादन और हृद्य प्रतीत होता है, वह भी शरीरके पांचभौतिक अवयवोंपर स्थूल रासायनिक परिणाम होनेसे है.

जिससे द्रव्य का विशिष्ट कार्य हो जाता है उसको उस द्रव्यका 'वीर्य' कहते है. "येन या क्रियते क्रिया। तद्वीर्यम् ॥" अथवा "येन

क्रियते तद्वीर्यम् । वीर्यं शक्तिः द्रव्यस्य गुणस्य वा ॥" जिस कार्यसे द्रव्यमें विशिष्ट गुण पाये जाते है वह कार्य करनेकी शक्ति 'वीर्य' कहलाई जाती है. और इसी को "द्रव्यान्तर्गत कार्यकारित्व" या "द्रव्यान्तर्गता कार्यकारिणी शक्तिः' कह सकते है. जहांतक द्रव्यमे यह शक्ति या वीर्य रहता है तहांतक उस द्रव्यके गुण पाये जाते है. औषधीद्रव्य या दूसरा कुछ भी द्रव्य हीनवीर्य होनेसे उसका विशिष्ट कार्य नही हो सकता. भस्म तय्यार करनेमे यहभी एक उद्देश रहता है कि उन धातु उपधातुओंका वीर्य बढ जाय, वह वीर्य जादा काल तक बना रहे और उसका प्रत्ययभी जल्द ज्ञात हो. जबतक द्रव्य और उसकी शक्ति शरीरमेसे बाहर नही जाती है तबतक उसके वीर्यकी प्रतीति बनी रहती है. जो द्रव्य वीर्यवान् होता है उसका कार्य शुरूसेही (शरीरावयवके संयोगसेही) ज्ञात होता है. (वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते । (च. सू. अ. २६). सोमलका (संखियाका) असर शरीरपर कई दिनोंतक रहता है, क्योंकि संखिया शरीरमेसे जल्द बाहर नही निकाला जाता (अधीवासः). हायड्रोसायनिक ॲसिड का परिणाम स्पर्शसेही शरीरपर हो जाता है (निपात). ये परिणाम वीर्यसेही हो जाते है. वीर्यके माने द्रव्यके गुणक्रियाओंका विशिष्ट कार्य.

"प्रभाव" याने द्रव्यकी खास शक्ति. "रसादि साम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् ।" अथवा

रसवीर्यविपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते ।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य च स्मृतः ॥ च. सू. अ. २६.

रस, विपाक, और वीर्य ये सब समान होनेपरभी द्रव्योंमे जो कुछ कार्य करनेकी खास शक्ति पायी जाती है उसीको "प्रभाव" कहते है. अथवा दूसरे उपाधियोंसे (रस, विपाक और वीर्यसे) जो कार्य होता है उसके अलावा जो खास कार्य होगा वह "प्रभाव" सेही होगा. इसका सार यह है कि द्रव्यकी खास शक्ति 'प्रभाव' है. जैसे पारदसे उपदंशका रोग हट जाता है, या किनाईनसे थंडीतापके जंतू (कीडे) मारे जाते है, या एक विषसे दूसरे विषका प्रतिकार होता है. (विषं विषघ्नमुक्तं यत्प्रभावस्तस्य कारणम् । च०) ये सब प्रभावके उदाहरण है. प्रभाव ऐसा क्यों होता है. इसका जबाब, कार्यकारण मीमांसा करके, अच्छी तरहसे हम नही दे सकते है. सुवर्णसे राजयक्ष्माके जंतू क्यों मारे जाते है? पारद और संखियासे उपदंशके जंतू क्यों मारे जाते है? या किनीनसे थंडीतापके जंतू क्यों मारे जाते है?

इन सब दवाइओंका कार्य कैसा, किस कारणसे, होता है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर आजतक पूरापूरा नही मिल सका. इसीलिये आयुर्वेद-शास्त्र केवल यहही कहता है कि यह सब कार्य 'प्रभाव' से होता है. और ऐसा लिख चुके है कि, "प्रभावोऽचिन्त्य एव च॥" याने प्रभावकी कार्यकारण मीमांसा करना दुर्घट है. अर्थात् प्रभावके माने द्रव्यकी खास कार्यकारी शक्ति, द्रव्यका खास गुण और उसका खास कार्य है.

वीर्य और प्रभाव, इन दोनोंका कार्य शरीरके 'त्रिधातु' और 'मन' इनपर प्रथम होता है और इसके बाद त्रिधातुओंके जरिये स्थूलधातू और इन्द्रिय, इनपर होता है. भस्म तय्यार करनेकी मेहनत इसलिये होती है कि इससे द्रव्योंका वीर्य (और जिनमें प्रभाव हो उनका प्रभाव) बढ जाय. इसलिये यह सब मेहनत फुझुल नही है.

यहांतक भस्ममे होनेवाले 'गुणसंस्कार' और भस्म तय्यार कर-नेमे जिस प्रक्रियाका ख्याल रख्खा जाता है इसके बावत थोडासा हम लिख चुके है. यह विवेचन बिलकुल कम है, पूरापूरा नही है. कुछ बातोका विचार सब सिद्धौषधिओंके साथ होना चाहिये. इसलिये यहां नही लिखा है. किंतु भस्मोंके बावत योग्य और उपयुक्त बातोंका विचार हो चुका है. रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव इनका सवि-स्तर और पूर्ण विवेचन आगे कभी होगा इसी विवेचनपर आयुर्वेद-शास्त्रका आधार है. आयुर्वेदीय गुणधर्मशास्त्रका याथातथ्य ज्ञान होनेके लिये इन बातोंका ख्याल आवश्यक है. हम अबतक जो लिख चुके है इससे वह ख्याल होगा ऐसी आशा है. इस ग्रंथसे भस्मोंपर गुणसंस्कार करनेसे उन भस्मोंमे जो विशिष्ट रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव और गुण पाये जाते है उनका कार्य 'मानस,' त्रिधातु, 'स्थूल-धातु' 'शरीरके अवयव' और 'घटक' उन पर कैसा होता है यह विस्तारपूर्ण लिखा है. त्रिधातु सब शरीरमें महत्त्वके होनेसे उनका और भस्मोका एकका दूसरेसे संबंध (अन्योन्य संबंध) ज्यादा तौरसे बतलाया गया है.

औषधिगुणधर्मशास्त्र.

प्रथम विभाग.

भस्में.

१. अभ्रक भस्म (सहस्र पुटी–हजार पुटकी.)

देनेका प्रमाण—½ से १ रत्ती.

[अभ्रक भस्म–सो पुटकी और इससे भी थोडे पुटकी (निश्चन्द्र) ऐसी भी बनायी और इस्तमाल की जाती है. उनके गुणधर्म कम होने से अलग लिखनेकी जरूरत नहीं है.]

अभ्रक के चार प्रकार होते है. पीला, सुर्ख, सफेद और काला. इनही को पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र अभ्रक कहते हैं.[1] अग्नीमें रख देनेसे जिसके पतले पतले टुकडे निकल आते है उसको पिनाकाभ्रक कहते है. जिसमें तपानेसे सर्प (नाग) के फूत्कारके माफिक आवाज होता है वह नागाभ्रक. जिसका आवाज अग्नीमें मेंड़क के माफिक होता है वह दर्दुराभ्रक. चौथे प्रकारके अभ्रकमें अग्नीसे कुछ भी फर्क नहीं हो सकता. इसी लिये उसको वज्राभ्रक कहते हैं. उससे रोग, बुढ़ापन और मृत्यू भी हट जाता है. उसीको कृष्णाभ्रक भी कहते हैं. अभ्रक भस्म बनाने के लिये कृष्णाभ्रक लेना चाहिये. वह स्निग्ध, जाड़े पत्तोंका, काला और वजनदार होता हैं. इसके पत्ते भी जल्द छूट जाते हैं.[2] इस अभ्रकके काले काले, चमकदार और अपारदर्शक बड़े बड़े टूकड़े मिलते हैं. उनको फोड़ ले या कुशलतासे उनके पत्ते छोड़ ले तो वे सफेद अभ्रकके समान पतले होंगे. किंतु उनका रंग काला या

---

(१) पिनाकं नागमंडूकं वज्रमित्यभ्रकं मतम् ॥ रसरत्नसमुच्चय

(२) पिनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम् ।
नागाभ्रं नागवत्कुर्याद् ध्वनिं पावकसंस्थितम् ।
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मडूकं ध्मातं पतति चाभ्रकम् ।
वज्राभ्रं वह्निसंतप्तं निर्मुक्ताशेषवैकृतम् ।
देहलोहकरं तच्च सर्वरोगहर परम् ।
स्निग्धं पृथुदलं वर्णसंयुक्तं भारतोऽधिकम् ।
सुखनिर्मोच्यपत्रं च तदभ्र शस्तमारितम् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

धूसर होगा. नीले रंगकी कांचके माफिक उनका रंग होगा और वे उतनेही पारदर्शक होंगे.

अभ्रकशुद्धिः—अभ्रककी भस्म वनानेके लिये पहले उसको शुद्ध करना चाहिये.[1] वज्राभ्रकको तपातपाकर कांजी, गोमूत्र, त्रिफलाका काढ़ा, गौका दूध या वेरकी छालके काढ़ेमें (इनमेंसे कुछभी एक लेना चाहिये) सात वार डुवानेसे अभ्रककी शुद्धि होती है.[2]

धान्याभ्रकः—अभ्रकको शुद्ध करने के वाद उसका प्रथम चूर्ण वनाना चाहिये. यह चूर्ण वनानेके लिये प्रथम धान्याभ्रक बनाते हैं. वज्राभ्रक या कृष्णाभ्रक के शुद्ध किये हुवे टुकड़े प्रथम खरलमें रखके विलकुल छोटे करना चाहिये. और इसमें उससे चौथा हिस्सा धान्य (चावलका धान) याने शालि मिलाके वे दोनो कम्वलमें अच्छी तरह वांधकर वह पानीमें तीन दिनतक भिगोना चाहिये. वह अच्छी तरहसे भीग जानेपर उस कम्वलको पानीसे निकाल कर, थालीमें या चौडे मूंहके वरतनमें उसको जोरजोरसे घिसाना चाहिये. अभ्रकका जितना अधिक प्रमाण हो उतनी ज्यादा देरतक यह घींसना आवश्यक है. घीसनेसे अभ्रक पानीमें निकल आता है. जैसा जैसा अभ्रक पानीमें निकल आवे वैसा ऊपरका पानी निकाल लेना चाहिये और उसकी जगह नया पानी या त्रिफलाका काढा डालना चाहिये. इसमें भी जॅव काफी अभ्रक निकल आवे तव वह भी निकाल कर नया पानी या काढा डालना चाहिये. इसी तरह जवतक सब अभ्रक निकल न जाय तवतक यह क्रम जारी रखना चाहिये. इसके बाद यह सब पानी इकट्ठा करके रख दें और ऊपर ऊपर का पानी फेंक दिया जावें. नीचे जो अभ्रक रह जाय उसे सुखाकर इसमें जो चावलका टरफल आ जायेगा वह निकालना चाहिये. इसीको धान्याभ्रक कहते हैं.[3] धान्याभ्रक

---

(१) सत्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।
अन्यथात्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥

(२) प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं कांजिकेऽभ्रकम् ।
निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वाऽपि गोजले ।
त्रिफलाक्वथिते चापि गवां दुग्धे विशेषत· ॥ रसरत्नसमुच्चय.
अथवा वदरीक्वाथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

(३) पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं वद्ध्वाऽथ कम्वले ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे क्लिन्नं वै मर्दयेत्करैः ॥
तन्नीर एव यत्नेन यावत्सर्वं स्रवेत्तत· ।
कम्वलाद्गलितं सूक्ष्मं वालुकासदृशं च यत् ।
तद्धान्याभ्रकमित्युक्तं ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

बनानेके समय कोई कोई पानीकी जगह त्रिफलाका काढा या खट्टी कांजी लेते हैं.[1]

सहस्रपुटी अभ्रकः—[यह भस्म बनानेके लिये जिन जिन वनस्पतिओंकी भावना दी जाती है. उनकी याद्दी टिप्पणीमें दी गई है.[2]]

---

(१) चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि कांजिके।
निर्यातं मर्दनाद्यत्तद्धान्याभ्रमिति कथ्यते॥ आयुर्वेदप्रकाश.

(२) श्रीगोविन्दपादास्तु अन्यान्येव गगनमारकाणि भेपजानि लिखन्ति; यथा अर्कदुग्धं. वटदुग्धं, सेहुण्डदुग्धं, घृतकुमारी, पंचांगुलमूलपत्राणि, काकमाची, मुस्ता, वटप्ररोह वस्तशोणितं, विल्वमूलपत्राणि, अग्निमन्थः, टिण्टुक, पाटली, श्रीपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी, रुदंति, बृहती, गोक्षुर, तिलपर्णी, खरमञ्जरी, गुड सिद्धार्थको धवल, पालंक्या, मालती, गोमूत्रं, हरीतकी, धात्री, विभीतक, तालीसपत्रं, चित्रकमूलपत्रं, जलकुम्भी, तालमूली, वृष, वाजिगन्धा, अगस्त्यपत्र, भृंगराजः, कदलीकंदरस, सप्तपर्णा, देवदारु, गुडूची, धत्तूर, कासमर्दक, मातुलानी, लोध्र, तुलसी, दूर्वा, मारीष, मूषकपर्णी, दाडिमपल्लवा, घोण्टा, शंखपुष्पी, नागवल्ली, पिण्डीतगरं, श्वेतपुनर्नवा, हिलमोचिका, मण्डूकपर्णी, तिक्तका, मदन।

इत्यादिभिर्मर्दनपुटने एकैकेनापि अभ्रको मारणीय। इत्यभ्रकमारणीय गण।। आभिर्यथालाभं सहस्रपुटा देया। यथासंख्यं च प्रत्येक सप्तदशपुटतः प्रायशो भवन्ति। एवं सहस्रसंख्या पूर्यते। इति सहस्रपुटि॥ आयुर्वेदप्रकाश.

इससे अलावा दूसरी एक पुटोंके वनस्पतिओंकी सूचि है. यह नीचे लिखी है—

(१) अकौआ का रस, (२) मुगलाई अरडका रस, (३) जगली तमाखू, (४) कसौदी (कासमर्द), (५) मूलीके पत्तोंका रस, (६) प्याजका रस, (७) गगावती, (८) चंचु, (९) बथुवा, (वास्तुक), (१०) चिल्ली या बडा बथुवा, (११) मुडी, (१२) चौलाई (तदुलीक), (१३) घीगुवार, (१४) नीम्बू रस, (१५) कच्चा अनार, (१६) गोखरूका पचाग, (१७) हल्दीका रस, (१८) तुलसी, (१९) भगरा, (२०) निर्गुण्डी या सम्हालु, (२१) दुधी, (२२) बिषखपरा (पुनर्नवा), (२३) गोमूत्र, (२४) अरडका तैल, (२५) डंवका रस, (२६) सूरन, (२७) शिगलिंगी, (२८) अरड, (२९) आमला, (३०) शखपुष्पी, (३१) काळा धत्तूरा, (३२) दुग्धी, (३३) कडवा परवल (पटोल), (३४) सेमर (शाल्मली), (३५) डेनदाली (सोनैया), (३६) हुरहुज (आदित्यभक्ता), (३७) सहजना (शिग्रु), (३८) नीळ, (३९) बकरेका खून, (४०) अदिका रस, (४१) नागरवेल, (४२) गिलोय, (४३) ब्राह्मी, (४४) मेंढाशिंगी, (४५) ओंगा (अपामार्ग), (४६) आक या अकौआ, (४७) गवारी, (४८) पीला धत्तूरा, (४९) लाल प्याज, (५०) गुडहर, (५१) उतरण, (५२) भुयआवला, (५३) अजामूत्र, (५४) सफेद गोकर्णी, (५५) दगमूल, (५६) त्रिफळा, (५७) त्रिकटु, (५८) थूहरका रस, (५९) शमीके पत्ते, (६०) कुलथी का काढा, (६१) पचामृत, (६२) वडके पारंब, (६३) चितावर, (६४) गूलर का रस, (६५) नागरमोथा, (६६) खिरेटी, (६७) दारु हल्दी, (६८) सफेद मिस्री, (६९) साल मिश्री, (७०) मूसाकानी, (७१) अरडका मूल, (७२) कुटकी, (७३) छोटी सतावर, (७४) गोरीसर,

(आगेके पृष्ठपर देखिये)

अभ्रकको प्रत्येक वनस्पतीकी भावना देनेके बाद गजपुट देना चाहिये. डेढ़ हाथ लंबा, डेढ़ हाथ चौड़ा और डेढ़ हाथ गहरा ऐसा एक खड्डा तय्यार करके उसमें तीन हिस्से गोवर (कंडे) भरके, उसके ऊपर मिट्टी कपड़ा किये हुए शरावमें अभ्रक रख देना चाहिये, और इसके ऊपर फिर गोवर भरके अग्नि देना चाहिये. इस योजनाको 'गजपुट' कहते हैं. इस तरह एक हजार पुट देनेसे सहस्रपुटी अभ्रक तय्यार हो जाता है. अच्छी तरह बनायी हुई अभ्रक भस्मका रंग कपिलाके फूल जैसा या मंगलोरके टाइल्स (खपरे) जैसा हो जाता है.

ग्रंथोक्त गुणधर्म.

गौरीतेजः परममस्मृतं वातपित्तक्षयघ्नम् ।
प्रज्ञावोधि प्रशमितरुजं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।
वल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यम् ।
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योमसूतेन्द्रवन्धी ॥ रसरत्नसमुच्चय

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुःकरं धातुविवर्धनंच ।
हन्यात्त्रिदोषव्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रंथिविषकृमींश्च ॥

रोगान् हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते ।
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥

(गत पृष्ठसे आगे)

(७५) असगंध, (७६) मुलहटी, (७७) काली मिश्री, (७८) वडका रस, (७९) तिलवन, (८०) भाग, (८१) गाजा, (८२) कूट, (८३) धमासा, (८४) सहजना, (८५) काकोली (८६) दन्तीमूल, (८७) नागकेसर, (८८) नखला, (८९) तगर, (९०) काला वाला (खस्) (९१) कमीला (कंपिल्लक), (९२) अगर, (९३) काला अगर, (९४) मजीठ, (९५) लोंग, (९६) जायफल, (९७) तमालपत्र, (९८) दालचिनी, (९९) खारीक, (१००) इलायची, (१०१) कूडा का मूल, (१०२) राई, (१०३) पद्मकमुल, (१०४) जीरा, (१०५) काला जीरा, (१०६) सुपारी, (१०७) कटकरजाकी छाल, (१०८) बब्बूल की छाल, (१०९) मदार का मूळ, (११०) विदारी कद, (१११) प्याज का रस, (११२) सफेद निसोद, (११३) रासन, (११४) जटामासी, (११५) किवाच, (११६) ताड, (११७) अमलताश, (११८) वदाग, (११९) भटकटैया, (१२०) तेलिया देवदार, (१२१) कायफल, (१२२) तिक्तकंद, (१२३) फूलप्रियगु, (१२४) कबाबचिनी (१२५) मुनक्का, (१२६) सफेद चंदन, (१२७) विष्णुक्रान्ता, (१२८) पीलू, (१२९) मकोय, (१३०) लाजाह्वा, (१३१) महुवाके फूल का काढा, (१३२) लकोड कपुरी, (१३३) पीपल की छाल, (१३४) नरसलके फूल का काढा, (१३५) वायविडग, (१३६) कस्तूरी का पानी.

दीर्घायुष्यान् जनयति सुतान् विक्रमैःसिंहतुल्या-।
न्मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम्[1] ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

वेल्लव्योपसमन्वितं घृतयुतं वेल्लोम्मितं सेवितम् ।
दिव्याभ्रं क्षयपांडुरुग्ग्रहणिका शूलासकुष्ठामयम् ॥
मूर्तिश्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरम् ।
मंदाग्निं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

मृतं सत्वं हरेन्मृत्युं सर्वरोगविनाशनम् ।
क्षयं पांडुं ग्रहणिकां श्वासं शूलं सकामलम् ॥
ज्वरान्मेहांश्च कासांश्च गुल्मान्पंचविधानपि ।
मंदाग्निमुदराण्येवमर्शांसि विविधानि च ॥
अनुपानप्रयोगेण सर्वरोगान्निहन्ति च ।
अभ्रं सत्वगुणा वक्तुं शक्यते न समासतः ॥ रसप्रकाश सुधाकर

अभ्रकभस्म कई प्रकारोंसे बनाया जाता हैं. उनमेसें शतपुटी और सहस्रपुटी अभ्रक भस्म अकेला दे दिया जाता है. निश्चंद्र अभ्रक भस्मका उपयोग केवल मिश्रयोग बनानेमें होता है. इस ग्रंथमें हम केवल सहस्रपुटी अभ्रकभस्मके गुणधर्म देते हैं क्योंकि वह ही सबसे श्रेष्ठ है.

अभ्रकभस्मका मुख्य कार्य सूक्ष्म या सूक्ष्मतर परमाणु बनानेका है. यह शरीरके संचालक इंद्रियोंमे पहुंचकर उनके घटकों की वृद्धीके लिये सूक्ष्म परमाणु पहुंचाते हैं. उनको लेकर वे घटक खुद बढ जाते हैं. जिन विकारमें शरीरके घटक और परमाणु धीरे धीरे कमताकद और कम हो जाते हैं, इंद्रियोंका 'शोष' (सूखना) हो जाता है, इनकी काम करनेकी ताकद रोजाना कम होती जाती है इस प्रकारके विकारोंमे या दोषविकृतीमें (जिसको संस्कृतमें 'शोष' संज्ञा दी जाती है) अभ्रकभस्म सबसे अच्छा इलाज हैं. इंद्रियोंके घटक कम और कमताकद होना यह विकार अलग है और उनका सड जाना या नाश होना यह विकार अलग हैं. क्षीण घटक केवल कमताकद रहता है और सडा हुआ घटक तो बिलकुल मृत के समान है. इसलिये जिस विकारमें घटक सड गये होंगे उसमें अभ्रकभस्मका कुछ उपयोग नहीं होगा.

---

(१) मृताभ्रक—निश्चंद्रकं सुसूक्ष्मं च लोचनाञ्जनसंनिभम् ।
तदा मृतमित्युक्तं अभ्रकं नान्यथामृतम् ।
मृतं निश्चन्द्रतां यातं अरुणं चामृतोपमम् ।
सचंद्रं विषवज्ज्ञेयम् । आयुर्वेदप्रकाश.

मगजकी शक्ति क्षीण होनेसे, सिरमें हलकापन, बारबार चक्कर आना, कुछ भी विचार करे तो विचार करनेमें एक विचारमें दूसरे विचार की गडबड होना, एकदम खड़े रहनेसे चक्कर आकर गिर पडने की भीति (सूतशेखरमें भी यह लक्षण पाया जाता है) किंतु रोगी कभी गिर पडता नहीं, विचार करनेकी ताकद कम होना, कमजोरी, इस कमजोरीमें भी यह विशेष है के रोगी बिलकुल दुबलापतला, चिंताग्रस्त, अप्रसन्न, और चित्तमें भ्रान्ति हो ऐसा नजर आता है. उसका मूंह देखकर यह ख्याल होता है कि उसका चित्त दुर्बल हो गया है. उसके चेहरेमें मानसिक दुःस्थितीका चित्र खुल्लाखुल्ला दिखता है. लोहभस्मकी जिन लोगोंको जरूरत रहती है उनके मूंह पर फिकापन और कई वक्त पीलापन रहता है और यह फिकापन होनेपर भी उनकी नाड़ी जोर जोरसे चलती है. यह अवस्था ऊपर लिखी हुई अवस्थासे भिन्न है. इस प्रकारके रोगी अभ्रकभस्मके लायक नहीं हैं. अभ्रकभस्मके लायक रोगीका मूंह ऐसा नहीं होगा. उसकी नाडियां क्षीण और कमजोर लगेगी, यह लोहभस्म और अभ्रक भस्ममें फ़र्क है. अभ्रकभस्मके लायक रोगीको बारबार थोडाथोडा पसीना आता है और वह सिरपर अधिक आता है. पसीना आनेपरभी उसको हलकापन या हुश्शारी नहीं आती है किंतु क्षीणता अधिक बढ जाती है. कुछभी काम करनेमें उत्साह नहीं रहता. यह सब अभ्रकभस्मके लायक मानसिक लक्षण हैं. कभी कभी बाहरसे, रोगी तन्दुरुस्त होनेपरभी अन्दरसे उसको कभी उत्साह नहीं रहता. इस अवस्थामें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा.

अपस्मार या उन्माद के रोग में दो अवस्था होती हैं. तीव्र अवस्थामें ब्राह्मी या खुरासानी अजोवान के समान तीव्र शामक और ज्ञानतंतुओंका क्षोभ कम करनेवाली दवाइयां देना जरूर है. किंतु इन दवाइयोंसे इस विकारका मूलच्छेद नहीं होगा. रोग के तीव्र लक्षण कम होंगे. रोगका कुछ देरतक शमन जरूर होगा. अपस्मार और उन्माद ये दोनो मनके विकार याने मानसरोग हैं. केवल इतनाही इनमें साम्य है. अपस्मार-स्मृति या स्मृतिजनक केन्द्र का विकार है, और मनोवृत्तिओंके विभ्रमसे उन्माद विकार होता है. मनोवृत्तीके क्षोभसे या स्मृतिजनक केन्द्रके क्षोभसे, सर्व शरीरके ज्ञानतन्तुओंमें जो क्षोभ होता है वह केवल शामक दवाइयां देनेसे कम होगा. किन्तु मन की या स्मृतिजनक केन्द्रकी मूलतः क्षोभ होने की जो 'प्रवृत्ति' रहती है वह कभी कम न होगी. इस लिये यह प्रवृत्ति कम करनेकी

दूसरी औषधी देना पडता है. यह एक सामान्य अनुभव है कि उन्माद या अपस्मार ये दोनो विकार क्षीण, दुवलेपतले और वेताल मनके स्त्रीपुरुषोंको सताते हैं. अच्छे तन्दुरुस्त आदमीको, जिसका मन अचल है, जो आत्मानात्म विचार करता है ऐसे आदमीको उन्माद या अपस्मारसे पीडित कभी देखा सुना नहीं. इसके माने यह है कि ये दोनो विकार शरीर और मनसे अशक्त तथा वेताल मनके आदमियों में पाये जाते हैं. इसी लिये इन रोगियोंको केवल तीव्र और क्षोभनाशक दवाइयोंसे कभी फायदा नहीं होगा. कभी कभी तो फायदे की जगह मन और स्मृतिकेन्द्र इनकी शक्ति कम हो जाती है. और वह शक्ति कम होनेसे मूल रोग वढ जाता है. रोग वढ जानेपर अधिक तीव्र दवाइयां दी जायेगी और उनसे फिर रोगी का मन अधिक अशक्त हो जायेगा. इसका परिणाम मानासिक इन्द्रिय और दूसरें ज्ञानतंतुओंपर होगा. रोगी की शक्ति रोज रोज कम होती जायेगी और यहही रोगका मूल कारण होनेसे रोग दिन दिन वढताही जायेगा. यह अनिष्ट चक्रनेमिक्रम (Vicious Circle) रोगीको सताता है. इस लिये तीव्र या शामक चिकित्सा योग्य नहीं है. यह सच्ची चिकित्सा नहीं है. इससे रोगी अपने विकारसे कभी मुक्त होना दुर्घट है.

उन्माद, अपस्मार, स्मृतिनाश या वुद्धिविभ्रम के विकार में सामान्यतः सर्व मानसयंत्रकी शक्ति कम हो जाती है. इस यंत्र को जिन पोषक द्रव्योंकी जरूरत रहती है उन्हे रसादि धातुओंसे यह मनोयंत्र नहीं निकाल सकता है. यह शक्तिनाश भी इसी वजह होता है. इस विकारमें यदि हम मनोयंत्र का पोषण करें या इस यंत्रको जरूरी पोषक द्रव्य पहुंचाये तव इस रोगको हटानेकी आशा है. आजकल की चिकित्सा इस उद्देशसे नहीं की जाती है. आजकलकी चिकित्सामें केवल शामक द्रव्योंका उपयोग किया जाता है और वातविकारका शमन करनेकी कोशिस की जाती है. यह चिकित्सा सफल नहीं होती है. किंतु ऊपर लिखे हुवे उद्देशके अनुसार चिकित्सा करें तो कुछ ना कुछ फायदा होगा ऐसा अनुभव है. विकारमें जव कोई इन्द्रिय, उसके पोषणके अभावसे, या उसके घटकोंकी अपने लायक द्रव्य रक्तमेंसे निकाल लेनेकी शक्ति कम होनेसे, क्षीण हो जाता है तव इस विकारको हटानेके लिये ऐसी दवाईकी जरूरत है कि जो अपने ओज या तेजसे सव धातुओंको और उनके जारिये सर्व इंद्रियोंको शक्ति पहुंचायेगी. अभ्रकभस्म इस तरह की दवा है. अभ्रक-

भस्म शुरू करनेके बाद थोडेही दिनोंमें, शरीरके परमाणुओंको ओज या शक्ति प्राप्त होती है और उनकी ताकद बढ जाती है. उपर लिखे हुवे विकारमें स्मृतिकेन्द्रकी क्षीणता नष्ट करके उसको अपनी प्रथम शक्ति प्राप्त हो यह इलाज सशास्त्र होगा. अभ्रकभस्मसे मन के सूक्ष्म-सूक्ष्म विभागोंको धीरे धीरे ताकद मिलती है. ताकद मिलनेसे संज्ञा और आज्ञा वाहिनीओंकी निर्बलता नष्ट होती है. इसी वजह उनका क्षोभ भी छोटी छोटी बातोंसे नहीं हो सकता. क्षोभ प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है.

अर्धांगवात (लकवा) में दो अवस्था होती हैं. प्रथमकी तीव्र अवस्था शांत होने के बाद दूसरी अवस्थामें रक्तवाहिनीओंकी पूर्व-शक्ति प्राप्त होने के लिये, या बारबार मनःक्षोभ होता हो या मनः-क्षोभकी आदत पड जाय तो इस मनःक्षोभको नष्ट करनेके लिये अभ्रक-भस्मका उपयोग होना चाहिये. इस अवस्थामें अभ्रकभस्म देनेसे रक्तवाहिनीओंके घटक सबल हो जाते हैं. जिस विकारमें आदमी केवल संशयसे ग्रस्त होता और ऐसा समझता है के खुद कोई बडे रोगसे बीमार हो और इसी बीमारीसे क्षीण हो रहा हो और राज-यक्ष्मा या दूसरा कोई विकार हो जानेकी भीतीसे नाहक चिंता करता हो तो उस आदमीको अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा. इसी प्रकार जिस आदमीकी आनंदके समय कभी तबियत खुश नहीं रहती हो. जिसको सब कुछ मिलता है और जिसपर सब आनंददायक प्रसंगोंकी खैरात हो रही है और जो ऐसे प्रसंगमें भी कुछ छोटी बातें ख्यालमें रखके दुःखी रहता है ऐसे आदमीको अभ्रकभस्म देना चाहिये.

बच्चोंमें कभी कभी उनकी उमरके साथ २ उनकी विचारशक्ति नही बढती है. कई बच्चोंको सामान्य ज्ञानभी जल्द नही होता. कई लडके बिलकुल दीवाने जैसे अपने हाथों के तरफ देखते रहते है. कई बच्चे हांसते नही, खेलते नही या कुछ चेष्टाभी नही करते, केवल रोते रहते हैं. ऐसे बच्चेका शरीर दूसरे विकारोंमें सूख जाएगा किंतु इस विकारमें शरीर तो बाहरसे कमताकद नही दिखता उसके मूंहपर चिंता या भीतीसे निस्तेजता और दीनता पायी जाती है. (आगे आरोग्यवर्धिनी गुटी के गुणधर्म देखिये) इस अवस्थामें अभ्रक-भस्मसे फायदा होता है. किंतु इस अवस्थाका मूल कारण उपदंशका विकार हो, तो अभ्रकभस्मके साथ 'गंधकरसायन' अनंता (गौरीसर) इत्यादि दवाइयां देना चाहिये.

मस्तिष्क के कुछ विभागकी अशक्ततासे या उस विभागका योग्य विकास न होनेसे छोटे बच्चोंमें विकार हो जाते हैं. वे अपनी गर्दन न उठा सकते हैं. हाथपैरोंपर उनका अधिकार नहीं चलता. बोलनेमें भी शब्दोच्चार स्पष्ट नहीं होते हैं. शब्दोच्चार अटकता हुवा निकल आता है. इस अवस्थामें बच्चेमें पगलापन तो कुछ नही होता. उसकी समज अच्छी रहती है किंतु बोलने या चलनेका प्रयत्न करनेसे भी वह अच्छी तरहसे नही कर सकता. इसका कारण यह है कि मस्तिष्क से जो संदेश आतां है उसमें पूर्णशक्ति नही रहती है. बच्चेको ज्ञान तो पूर्ण रहता है और उस ज्ञान की वजह वह अपनी तरफ खूब प्रयत्न भी करता है. किंतु मस्तिष्कमें जिस विभागसे यह आज्ञा निकलनी चाहिये उसकी नाताकतीसे वह यत्न निष्फल हो जाती है. इस विकारमेंभी अभ्रकभस्मका दूसरी दवाइयोंके साथ या स्वतंत्रतासे उपयोग होता है.

उपर लिखी हुई लक्षणोंके साथ कुछ बालकोंकी सिरकी हड्डियां कमताकद होती हैं. उनका सिर (विशेषतः आगेका भाग) बडा हो जाता हैं. कपालके अस्थि बढ जानेसे कपालका आकार भी बदल जाता हैं. इसके साथ बारबार कपालपर पसीनाका आना, मूंह में पानीका आना; पानी आनेपरभी मूंहमें छाले या जबानपर फुंसिया वगैरह न होती हैं, कफ अधिक होनेसे खांसीके साथ बहूत बलगम गिरता है; लडकोंकी छातीकी हड्डिया नरम होनेसे श्वासोच्छ्वास के जोरसे उनके बीचका भाग आगे निकल आता है. बारबार उल्टी (कै) भी होती है. इन लक्षणोंमें अभ्रकभस्म देनेसे फायदा होता है. (प्रवाल, मंडूर और मृगशृंग देखिये).

अभ्रकभस्म एक उत्तम 'रसायन' है. 'रसायन' के माने यह है "जिस द्रव्यसे रसादि धातुओंकी पैदास अच्छी तरहसे होकर, वे सर्व शरीरमें फैल जाय और जहां जहां उनकी जरूरत हो, वहां २ वे प्रथम पैदा हुवे धातुओंसे मिल जाय. उस प्रकारके द्रव्य को 'रसायन' कहते हैं." अभ्रकभस्मका कार्य इसी तरहका है. शरीरमें जहां जहां धातुओंके पैदासमे विकार हो, या धातुओंकी पैदास कम हो, या धातुओंकी पैदास होनेपरभी वे अपने अपने स्थानोंपर योग्य प्रमाणमें न पहुंचते हो; इन सब विकारोंमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा. अर्थात् रस धातूसे पैदा हुवे रक्तादि स्थूल धातू जब शुरूसेही रूपतः या गुणतः विकृत हो जाते हैं तब अभ्रकभस्मसे उनकी विकृति नष्ट होती है और धातुपरिपोषणक्रम दुरुस्त हो जाता है. अभ्रकभस्मके

इस गुण के कारण उसका उपयोग पांडुरोग, रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय इत्यादि पुराने या तीव्र विकारोंमें अच्छी तरहसे कर सकते हैं.

लडकियोंको जवानीमें 'हारिद्रक' नामका (Chlorosis) विकार होता है. रक्तमेंसे छोटे छोटे लाल घटक कम हो जाते हैं. कुछ भी विशेष बाह्य विकार न होनेपरभी लडकीका मूंह फीका हो जाता, बदन सूख जाता है, कभी बुखार कभी वमन हो जाती है, हाथ पैरोंके नाखून पीले पड जाते हैं. उनका आकारभी बदलता है और वे धीरे धीरे हरे रंगके हो जाते है. यह सब विकार रक्तमें लाल घटक कम होनेसेही पैदा होते हैं. रक्तकण (लाल घटक) तय्यार करनेका कार्य अभ्रकभस्मके साथ लोहभस्म देनेसे पूर्ववत् हो जाता है. इस हारिद्रक रोगका मूल कारण मानसिक हो तो उसमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा. कभी कभी यह कारण मानसिक हैं या शारीरिक है इसका तलाश अच्छी तरहसे नही कर सकते है, या दोनो कारण शुरूसे रहते है. इस अवस्थामें अभ्रकभस्म और लोहभस्मका मिश्रण देना चाहिये.

पंडुरोगमें भी मानसिक कारण हो या वातवाहिनी बिगडनेसे रक्तकी (रक्तकणोंकी) पैदास कम हुई हो तो इसमें अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा.

बवासीरमें भी ज्यादा खून गिरनेसे पंडुरोग उत्पन्न होता है. इसमें भी मूल कारण मानसिक हो (जैसे मनःसंताप) या वातवाहिनी बिगडनेसे या उनको अधिक कष्ट पडे हो तो इस अवस्थामें अभ्रक-भस्म देना चाहिये.

आंतो की अशक्ततासे, उनके आखिरखे हिस्सेमें जो 'गुद-त्रिवली' होती है उसपर दाब आनेसे सूजन आती है, उसमेंसे खून निकल आता है और विशेषतः खून गिरनेके बाद कमजोरी मालुम होती है. इस विकारमें अभ्रकभस्मका उपयोग होता है. इस अवस्थाके दो प्रकार होते है. एक विकार यकृतका बिगाड होनेसे, आंतोंमेंसे जो रक्तवाहिनी यकृतके तरफ जाती है उसपर दाब आनेसे होता है और दूसरा प्रकार आंतोंकी अशक्ततासेही होता हैं. इस दूसरे प्रकारमें अभ्रकभस्मसे फायदा होता है.

इन दोनो प्रकारोंमें आखिरमे रक्तार्श (खूनी बवासीर) पैदा हो जाती है और रोग पुराना होनेसे बारबार खून गिरनेकी आदत पड

जाती है. इस आदत को नष्ट करनेके लिये अभ्रकभस्मका उपयोग होता है. किंतु ववासीरके मस्से अभ्रकभस्मसे कम नही हो सकते हैं. मस्सोंके लिये शस्त्रकर्म, क्षारकर्म या अग्निकर्म यहही इलाज है. इनही से वे नष्ट हो सकते है. केवल खून गिरनेकी आदत अभ्रकभस्मसे कम होती है.

रक्तार्श के मस्से निकालनेके वाद या रक्तार्शका उपद्रवरूप, भगंदर विकार हो जाता है. इसमें भी रोगका जोर कम करनेके लिये और गुदमार्गमें जो व्रण पड जाता है वह अंदरसे भर जानेके लिये अभ्रक-भस्म देनेसे वहूत रोगियोंको फायदा हुवा हैं.

दूसरे पुराने फुंसियो या घावोंके लिये भी शारीरिक परमाणु-ओंको ताकद देनेके लिये और घाव भरनेके लिये अभ्रकभस्म दूसरी दवाइयोंको मदद करती है.

अशक्ततासे उत्पन्न होनेवाला स्वरभेद, स्वरसाद (आवाजका वैठना) यह विकार स्वरवहनाडियोंकी अशक्ततासे पैदा होता है. इस विकारमें वोलनेकी ताकद कम होती है. रोगी वोलना चहाता हें किंतु वोलने के समय स्नायुओंकी शक्ति कम होनेसे शब्द का उच्चार करना दुर्घट होता हैं. उच्चार करें तव भी वह आवाज इतना कम होता हें के पास का आदमी भी सुनता नही. शब्द मानो मूंहके अंदरही रह जाता है.

-(जसदभस्म—रोगी खुद वोलनेको चाहताही नही.)

फेफडोंकी अशक्ततासे, उरःस्थ कफाविकृति होती है, और इसमें फेंफडोंके तरहतरहके तीव्र और चिरकारी विकार उत्पन्न होते हैं. इन विकारोंमे अभ्रकभस्मका उपयोग होता है. फेंफडोके विकारोंमें अभ्रक-भस्मके समान दूसरी कोईभी चीज नही है. अभ्रकभस्म फेंफडोंको शक्तिदायक है.

फेफडोंक समान हृदयको भी अभ्रकभस्मसे ताकद मिलती है.. जव हृदयकी केवल अशक्तता हो याने हृदयमें कोई इंद्रियजन्य विकार (Organic disease) न हो तो अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा. इसी वजह हृदयके या फेंफडोंके पुराने विकारोंमें अभ्रकभस्म देते हैं. अभ्रकभस्मका कार्य धीरे धीरे होता है. कई दिनोंतक रहते हुए वुखारमें हृदय और फेंफडोंकी अशक्तताके लक्षण पाये जाते हैं. इस विकारमें जवतक वुखार जारी रहेगा तवतक हृदयकी और फेंफडोंकी शक्ति कायम रहना चाहिये. इसालिये वैद्योंका यह रिवाज हैं कि इन-

विकारोंमे शुरूसेही अभ्रकभस्म दें. वातकफप्रधान ज्वरमें (इन्फ्लुएन्झा) अभ्रकभस्मका इस तरह का उपयोग कई वैद्योंने किया है.

आजकल अभ्रकभस्मकी यह एक तारीफ सुनी जाती है कि क्षयके विकारमें वह एक खात्रीका इलाज है. किंतु आजकल जिस प्रकारका क्षयविकार दुनियामें पाया जाता है–याने जन्तुजन्य क्षयविकार–इसमें अभ्रकभस्मसे फायदा हुवा बहूत कम नजर आता है. जन्तुजन्य क्षयविकारकी सर्व अवस्थाओंमें अभ्रकभस्मसे अपेक्षित फायदा नही होता यह हमारा अनुभव है.

जन्तुजन्य क्षयविकारको छोडकर अन्य क्षयविकारोंमे जो आयुर्वेदमें लिखे हुवे हैं, (जैसे–अनुलोम और प्रतिलोम क्षय) अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होता हैं. जन्तुजन्य क्षयविकारमेंभी बिलकुल शुरूसेही जब बुखार कम रहता है या बुखार का केवल आन्देशा रहता हैं तब कभी कभी अभ्रकभस्मसे फायदा होता है. इसके माने यह नहीं के अभ्रकभस्म जन्तुघ्न है. अभ्रकभस्मसे फेफडोंके और दूसरे अवयवोंके परमाणुओंको ताकद मिलती है और उनपर क्षयके विषारका कुछ असर नही हो सकता. इसी वजह रोग बढता नही और रोगीको भी उत्साह रहता है. क्षयविकारकी प्रथम अवस्थामें केवल अभ्रकभस्म की जगह अभ्रकभस्म, मृगशृंगभस्म और गिलोय का सत्व मिश्रण करके वह दूध और मिश्री के साथ या दूसरे सौम्य अनुपान के साथ देना चाहिये.

दूसरे प्रकारके (निर्जन्तुक) क्षयविकारमें अभ्रकभस्म एक खात्रीका इलाज है. इस क्षयविकारका मुख्य और स्पष्ट लक्षण यहही है कि दूसरा कुछ भी कारण नजर न आने परभी शरीरके अवयव घटते जाते हैं शरीर दुबलापतला हो जाता है. क्षय का यह प्रकार कई दिनोंतक रहता है और रोगीकोभी शुरूसे उसका ख्याल नही रहता. इसमेभी कभी कभी बुखार आता है किंतु वह जन्तुजन्य क्षयविकारके माफिक नही रहता. दूसरी बात यह है के लॅबोरेटरीमें परीक्षा करें तो इसमें क्षयविकारके जन्तु नही पाये जाते है. इस प्रकारके (निर्जन्तुक) क्षयविकारकी कौनसीभी अवस्था हो, अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होता है. इससे परमाणुओंकी पैदास बढ जाती है और नाश कम होता है.

पुराणे कफविकारोंमें भी अभ्रकभस्मसे फायदा होता है. पुरानी खांसी और उसके साथ दमा हो तो श्वासवह नलिका खराब हो

जाती है और उसमें घाव पड जाते हैं. इस विकारमें रोगी निःशक्त हो तो अभ्रकभस्मकी जरूरत है. इसके साथ कुछ भी कफघ्न औषध मिला दो, किंतु शहद के साथ अभ्रकभस्म दे तो भी अच्छा काम होगा.

कफवातात्मक या केवल कफात्मक श्वासविकारमें (दमा) कफ-स्थानकी अशक्तता पायी जाती है. इसमें दमाके साथ खांसी भी होती है. और खांसी करते करते गाढा सफेद चिकरणा और वडा वल्गम निकल आता है. इसमें पसीना भी वहुत आता है. पसीना थंडा होता है और वह दमाके परिश्रमसे आता है. कभी कभी परिश्रम न होने-पर भी स्वभावसेही पसीना आता है. इस हालत में अभ्रकभस्म देना चाहिये.

वृद्ध, अशक्त या दुवले पतले आदमिओंको वरसातके दिनों में या जाडे के शुरुवातमें थंडी हवासे दमा होता है, दूसरे दिनोंमें भी, थंडीसें दमा होता है. इसमें चुपचाप वैठनेसे और हिलचाल न करनेसे आराम रहता है. इसमें भी अभ्रकभस्मसे फायदा होगा.

कभी कभी अशक्त और पंडुरोगी स्त्रियोंको अकस्मात् दमा होता है और वहुत घवराट होती है. श्वास के कारण उलघाल होती है. रोगी घवराता है पवन चहाता है. जितना पवन चलावे उतना उस का मनप्रसन्न रहता है. दिनरात ऐसी तगमग वनी रहती है, इसका मूल कारण भी श्वासवाहिनिओंका संकोच हो सकता है; श्वासवाहिनिओंके संकोच के कारण जितने प्राणवायूकी शरीरको जरूरत है उतना प्राण-वायु अपना शरीर न पाता है. इसलिये शरीर प्रयत्न करता है के कहांसे भी उसको पवन मिले. पवन न मिलनेसे सव शरीरके अंदर दाह (जलन) पैदा होती है और पवन लेनेको जी चहाता है. यह सव हालत प्राणवायूके कम होनेसे पैदा होती है इसलिये कुछ भी दवाई आराम नहीं दे सकती है. श्वासवाहिनिओंका संकोच कम करके विगडे हुवे पित्तका भी शमन करना चाहिये. इस प्रकारका कार्य अभ्रक भस्म करता है. इस विकारमें अभ्रकभस्म, चंद्रप्रभा, रुद्रवंती और आरोग्यवर्धिनी ये दवाइयां देना चाहिये. मनःक्षोभ या दूसरे मानसिक लक्षण अधिक हो तो इस अवस्थामे अभ्रकभस्मका कार्य अच्छी तरह होता है.

जिन रोगिओंको वार वार खांसीकी आदत है, जिनको वीचमें कुछ काल खांसी वंद रहती और फिर आ जाती है, जिनको सालमें एकही कालमें (विशिष्ट ऋतूमें) खांसी आती है, जिनको विशिष्ट

पदार्थके सेवनसे खांसी आती है, उन सब रोगिओंके शरीरमें ऐसी आदतें पड जाती है के उनकी प्रकृति केवल उन्ही चीजोंको नहीं चहाती है. इस आदत को हटानेके लिये प्रथम इस विशिष्ट प्रकृती को सुधरना चाहिये. यह कार्य अभ्रकभस्म से होता है. इसमें एकही बात का ख्याल रखना चाहिये के अभ्रकभस्म हररोज न लेना किंतु बीचमें कुछ दिन छोड कर फिर कुछ दिन उसका सेवन करना चाहिये. इस विकारमें अभ्रकभस्म केवल शहद के साथ चटाना अच्छा है.

हृदयकी अशक्ततासे—थोडे भी चलनेसे श्वास लगता है, रोगी पहाडपर नहीं चढ सकता है, दम नही छाटता, रुधिराभिसरण भी अच्छी तरह नही चलता, नाडी कमजोर, मंद और अनियमित चलती है, इन लक्षणोमें अभ्रकभस्म देनेसे फायदा होता है. रक्तवाहिनिओंका कवच पतला होता है और जिस विभागमें वह पतला हो वहां कफके संचयसे और जोरसे वह फूल जाती है, इस विकारमें और इसकेभी आगेकी-रक्तपित्तकी अवस्थामें अभ्रकभस्म एक खात्री का इलाज है. इसमें केवल अभ्रकभस्न की जगह, अभ्रकभस्मके साथ प्रवालभस्म और गिलोयका सत्व देना चाहिये. इस विकारमें प्रथम उपदंशका विकार हुआ हो तो इसी मिश्रणके साथ सारिवावलेह (गौरीसरका पाक) लेना चाहिये. अभ्रकभस्म का प्रधान कार्य शरीरके परमाणुओंको ताकद देने का है. इसलिये जिस अनुपानके साथ या द्रव्यके साथ वह दिया जाय उसका कार्य स्पष्ट हो जाता है. जैसे—दालचीनीके समान द्रव्योंके साथ देनेसे फुफ्फुस संनिपात (निमोनिया) और आंत्र संनि-पात (टायफॉइड) में फायदा होता है. क्यों कि इन दोनो विकारोंमें रोगके जंतू पाये जाते है और उनका नाश करनेकी ताकद श्वेतपरमा-णुओंमें उत्पन्न होती हैं. लोहभस्मके साथ अभ्रकभस्म देनेसे श्वेत-परमाणुओंसे भी अधिक ताकद रक्त परमाणुओंमें आ जाती है. इसी लिये पंडुरोगमें अभ्रकभस्म, लोहभस्म और त्रिफला शहदके साथ दिया जाता है.

अभ्रकभस्म हृदयको उत्तेजित करती है. किंतु यह कार्य कुचलेके माफिक या कपूरके माफिक उत्तेजक नहीं है. अभ्रकभस्मसे हृदयके स्नायुपरमाणुओंको ताकद आ जाती है. जहां जहां परमाणुओंकी ताकद कम हो गयी हो वहां २ अभ्रकभस्म देनी चाहिये. हृदयके विका-रसे जब सूजन पैदास होती है तब भी अभ्रकभस्मसे फायदा होता है.

पेट की अशक्ततासे या पित्तोत्पादक पिंड की अशक्ततासे पित्त का स्राव कम होता है और एक तरहका अपचन (बदहज्मी) का

विकार होता है. इसको अशक्तताजन्य (अशक्ततासे पैदा होनेवाला) अपचन या अग्निमांद्य कह सकते हैं. इस अग्निमांद्यमें अभ्रकभस्म देनेसे पित्तोत्पादक पिंड को और आंतोको शक्ति आ जाती है और यह पुराना विकार हट जाता है. अरुचि या भोजनका स्वाद न समझना इस विकारमें भी आंतोंका विकार या अशक्तता कारण होती है. विशेषतः यह उपद्रव दूसरे विकारोंके बाद हो जाता है. क्षय, पांडु, कामला इत्यादि विकारोंके वाद अरुचीका उपद्रव हो तो उसमें अभ्रकभस्म जरूर देनी चाहिये. अम्लपित्तका विकार पुराना हो गया हो और उसमें सूतशेखरादि आयुर्वेदीय औषधोंसे कुछ फायदा न होता हो तो अभ्रकभस्म देनी चाहिये. अम्लपित्तके विकारमें बारबार कै करनेकी इच्छा होती है, पेटमें दर्द होता है और वमनमें खूनभी गिरता है. मांसार्बुद (Cancer) का विकार न हुवा हो तो अभ्रकभस्मसे फायदा होगा. पेट का आकार वढ जानेसेभी कभी कभी वमन (कै) होती है. इसमेंभी वंगभस्म और अभ्रकभस्म देना चाहिये.

क्षयजन्य अतिसारमें भी दूसरे जन्तुघ्न औषधोंके साथ अभ्रकभस्म देनी चाहिये. नीचे लिखी दवाइओंका मिश्रण देनेसे फायदा होगा—अभ्रकभस्म, मौक्तिकभस्म, शंखभस्म और कपर्दिकभस्म.

दूसरे भी पुराने और कष्टकारक अतिसार होते हैं. इनमे आंतोकी अशक्तता होनेसे वहुत दिनोंतक ये विकार बने रहते हैं. इस कारणसे शरीरभी दुबला पतला हो जाता है. धातुपरिपोषण कार्य ठीक ठीक नही होता. इस प्रकारके अतिसारमें आंतोंके स्नायु कमजोर होते हैं और वे बिलकुल रू के माफिक मुलायम हो जाते हैं. इनसे मलका धारण भी नही हो सकता और बारबार, पतलीसी और थोडी थोडी टट्टी आती है. इसमेंभी अभ्रकभस्मसे फायदा होगा. (सुवर्णमालिनी वसंत, सुवर्णपर्पटी देखिये).

ग्रहणीकी अशक्ततासे कई दिनोंतक चलते हुवे संग्रहणीके विकारमें अभ्रकभस्मसे फायदा होगा. विशेषतः इसमें अंतर्व्रण होनेसे बारबार खून गिरता हो तो अभ्रकभस्मसे जरूर फायदा होगा.

पेटमें रसवाहिनी और रसोत्पादक पिंड के विकारसे या उनके कार्य में कुछ हरकत आनेसे पेटमें ग्रंथि (गांठ) वढ जाती है. इसमें भी शूल (दर्द) रहती है किंतु वह मंद और कायम रहती है. इसके साथ ज्वरभी रहता है. रोगी अशक्त होता है. बद्धकोष्ठ [कब्जियत] और अपचन येह उपद्रव हो जाते हैं. इसमें भी अभ्रकभस्म देनी चाहिये.

लघुग्रहणी, तिर्यक्ग्रहणी और मध्यमग्रहणी की अशक्ततासे कब्जियत पैदा होती है. इसमें ग्रहणीका मल निकालनेका कार्य अच्छी तरह नहीं हो सकता. मल अंदरही रह जानेसे, उसमेंसे नावाजवी अपायकारक चीजें रक्तमें खींची जाती हैं. इससे रक्तादि धातु विगड जाते हैं. और इसका परिणाम चमडीपर और अंतस्त्वचापर भी होता है. इससे वारवार मुंहमें छाले आते हैं. हाथके उंगलीयोंपर लाल लाल चट्टे आते हैं. जब यह विकार पुराना होता है तव उसका स्वरूप भयानक होता है. इसमें अभ्रकभस्म देनी चाहिये.

वस्ति याने पेशावके थैली की अशक्ततासे, या अवरोधक स्नायुओंकी अशक्ततासे बून्द बून्द पेशाव चालू रहता है. कुछ भी पेशाव थैलीमें भर जाय तो उसको जल्द निकालने की इच्छा होती है. इसमें अभ्रकभस्मसे अच्छा लाभ होता है. पुराने मूत्रकृच्छ्रमें भी इसका उपयोग होता है. पेशाबमें वारवार खूनका गिरना भी बंद हो जाता है. मधुमेहके विकारमें शरीरके घटे हुवे परमाणु अभ्रकभस्मके सेवन से वढते जाते हैं. इस विकारमें अभ्रकभस्मके साथ शिलाजीत, जामुनका वीज इनमेंसे एक या रोगीकी प्रकृति और दोष देखकर दूसरी दवाइयां मिलाना चाहिये. इससे मधुमेहका विकार हट जाता है, और रोगीको आराम रहता है. (वसंतकुसुमाकर, पुष्पधन्वा, देखिये).

मानसिक आघातसे या वातवाहिनिओंको (नसोंको) अधिक परिश्रम होनेसे नपुंसकत्व पैदा होता है. इसमेंभी अभ्रकभस्म देनी चाहिये. अभ्रकभस्मसे जननेन्द्रियके स्नायू जननेन्द्रियके परमाणू और जननेन्द्रियको चेतन करनेवाली नसें और उनका मस्तिष्कमें स्थान, इन सब अवयवोंको शक्ति आ जाती है और नपुंसकत्व नष्ट होता है. यह अभ्रकभस्मका विशेष गुण है.

अभ्रकभस्म—बढिया रसायन, वृष्य, मेधाजनक और योगवाही है. रसादि धातु तय्यार करनेमें अभ्रकभस्मसे सहाय्य होता है. अभ्रकभस्मका वृष्य कार्य (कामवर्धक कार्य) बस्ताण्डके समान जल्द नहीं होता है. क्योंकि सर्व धातुओंके परिपोषणसे यह कार्य होता है और इसी वजह यह परिणाम कायम रहता है. अभ्रकभस्मका योगवाही कार्य तीन तरहसे होता है.— (१) दूसरे औषधोंका गुणावर्धन करना, (२) उनमेंसे दोष निकालना और दोष निकालनेके समय उनके गुण कायम रखना, और (३) दोष कम करनेके समय गुणको बढाना. इस योगवाही गुणके कारण अभ्रकभस्म कई नुस्खेमें शामिल किया गया है. ये अभ्रकयुक्त नुस्खे बहूत शर्तीयां दवाइयां हैं.

अभ्रकभस्मका कार्य औषधोंके संयोगसे कभी कभी मंद (बहुत दिनोंतक चलनेवाला) किया जाता है तो कभी कभी तीव्र हो जाता है. जैसे-लक्ष्मीविलास गुटी में कपूर आदि दवाइयोंके साथ मिलानेसे अभ्रक का कार्य तीव्र और जल्द हो जाता है. किंतु आरोग्यवर्धिनी मे ताम्र आदि दवाइयोंके साथ मिलानेसे अभ्रक का कार्य धीरेसे होता है. लक्ष्मीविलास गुटी उसमें अभ्रकभस्म रहनेके कारण उत्तेजक होती है, तो आरोग्यवर्धिनी उसही अभ्रकभस्म से धातुपरिपोषकीया पूर्व धातूसे पर धातु बनानेवाली होती है. जैसा एक एक औषधके परिमाणसे नुस्खेके गुण में फर्क होता है वैसाही द्रव्यसंयोगकी भिन्नतासे फर्क होता है.

अभ्रकभस्मका कार्यः—मस्तिष्क, वातवहमंडल, वातवाहिनी (नसें), फेंफडे, हृदय और सर्व शरीरके परमाणु इनको ताकद देनेका, नये वनानेका और उनका क्षोभ कम करनेका कार्य अभ्रकभस्मसे होता है.

दोष और दूष्यः—कफ और वात दोषके दुष्टीसे और रस, रक्त, मांस और अस्थि इन धातुओंके (दूष्योंके) विकारोंमें अभ्रकभस्म से फायदा होता है.

अभ्रकभस्मका कार्य जल्द होनेकी इच्छा हो तो उसे शहद के साथ खूब घोंटना चाहिये. घोंटनेसे उसके सूक्ष्मतम परमाणु वनते हैं. ये परमाणु आंतोकी अंतस्त्वचासे जल्द खींच लिये जाते हैं और रक्त में मिश्र होते हैं. इसी वजह अभ्रकभस्मका कार्य धातुपरिपोषणक्रम और अंतःस्राव वढानें में अच्छा होता है.

अभ्रमभस्मके प्रमुख कार्यः—(१) तरल और तरल-तर (सूक्ष्म) परमाणु वनानेमें सहाय्य करना, (२) शरीरके इंन्द्रियोंको ताकद देना, (३) उनको पोषक द्रव्य पहुंचाना, (४) वातवाहिनीओंका क्षोभ कम करना, (५) स्नायुओंकी नाताकती, इंन्द्रियोंकी दुर्बलता, ज्ञानतंतुओकी कमजोरी नष्ट करके शरीरसंचालक प्राण को उत्तेजित करना; और (६) सर्व इंद्रियसमूहको अपने अपने कार्य करनेकी शक्ति देना.

अभ्रकभस्मसे कभी नुकसान हुवा देखा नहीं. कभी कभी नाडी जल्द चलने लगती है तो कभी नाडीका जोर (Pressure) वढ जाता हैं. कुछ दिन अभ्रकभस्म वंद करनेसे ये लक्षण कम होते हैं. अभ्रकभस्मके साथ मौक्तिक भस्म देनेसेभी ये लक्षण कम हो जाते हैं.

अनुपानः—जिन दूसरी दवाइयोंके साथ यह दवा दी जाती है उनको अनुपान कहते हैं. (जैसे शहद या आदेका रस) अभ्रकभस्म कई अनुपानोंके साथ दी जाती है. उनकी योजना दोषदूष्यके विचारसे होनी चाहिये.

[अभ्रकको अंग्रेजीमे-Mica और कृष्णाभ्रकको-Biotite कहते है. रसायन या पृथक्करण शास्त्रके दृष्टीसे अभ्रक-Double silicate of Alumina and Potas (Sodium) है. कभी कभी इसमें लोहा (Iron) और मॅग्नेशिया भी पाया जाता है.

श्वेताभ्र—K_2O, 3 Al_3O_3, 4 SiO_2—(पोटॅशियम ऑक्साइड, ३ ॲल्युमिनियम ऑक्साइड, ४ सिलिकॉन ऑक्साइड).

कृष्णाभ्र—(वज्राभ्र)-3 MgO, Al_2O_2, 3 SiO_2 (३ मॅग्नेशियम ऑक्साइड, ॲल्युमिनियम ऑक्साइड और ३ सिलिकॉन ऑक्साइड), कृष्णाभ्र में कुछ थोडा हिस्सा लोहा भी पाया जाता है.

श्वेताभ्र—Muscovite (मस्कोव्हाइट) Potash mica.

कृष्णाभ्र—Biotite (बायोटाइट) Ferromagnesium mica..

अभ्रकभस्मका रासायनिक पृथक्करण—(१) सिलिका, (२) लोह, (३) ॲल्युमिनियम, (४) पोटॅशियम, (५) मॅग्नेशियम.

२ कपर्दिका भस्म. (कौडीकी भस्म)

सेवन का प्रमाण—½ से २ रत्ती.

कौडी तीन प्रकारकी मिलती है. सुफेद, पीली और शोण (बडी कौडी) भस्म तय्यार करनेके लिये या दूसरे नुस्खेमें डालनेके लिये पीली कौडी लेनी चाहिये. पीली कौडीमेभी वजनसे भारी, मध्यम और हलकी कौडी होती है. डेढ तोला वजनकी कौडी श्रेष्ठ, एक तोला वजनकी कौडी मध्यम और पौना तोला वजनकी कौडी कनिष्ट मानी जाती हैं[२].

कपर्दिका शुद्धिः—(१) कौडी, छांछ, आंबीलोनाका रस या नीमूका रस इनमें आठ दिन तक भिगोना चाहिये. फिर वे सफेद होनें

---

१ वराटिका त्रिधा प्रोक्ता श्वेता, शोणा त्रिधाऽपरा ।
पीता... ।। आयुर्वेदप्रकाश.

२ सार्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ रसरत्नसमुच्चय.

तक उनको अम्ल पदार्थोंकी भावना देनी चाहिये. इसके वाद साफ धोनेसे वे शुद्ध हो जाती हैं[1].

(२) कांजीमें एक प्रहरपर्यंत पकानेसे कौडी शुद्ध होती हैं[2].

कपर्दिका भस्म बनानेकी रीतः—(१) शुद्ध कौडीको गजपुट देनेसे वह औरभी सफेद होती है. फिर इसका चूर्ण करते हैं. यह कपर्दिका भस्म है[3].

(२) शुद्ध कौडीको गजपुट देनेके वाद, इसका चूर्ण करना चाहिये. फिर इस चूर्णको घीगुवारके रससे और नीमूके रससे सात भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके वाद गजपुट देना चाहिये. इससेभी अच्छी कपर्दिका भस्म तय्यार होती है[4].

कपर्दिका भस्म तय्यर होनेके वाद उसका रंग विलकुल सफेद (बगलेके परके माफिक) होता है.

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

परिणामादि शूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ॥ रसरत्नसमुच्चय.
कपर्दिका हिमा नेत्रे हिता स्फोटक्षयापहा ।
कर्णस्रावाग्निमांद्यघ्नी पित्तास्रकफनाशिनी ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

कपर्दिकाभस्म यह एक चूनेका सेन्द्रिय कल्प है. यह सेन्द्रिय होनेके कारण निरिन्द्रिय द्रव्योंसे जल्द और आसानीसे शरीरमें फैलता है. कौडी यह एक प्राणीका घर है. और यह घर, वह, शरीर-कीडेके शरीरमेंसे एक रस निकलता है. उससे बना हुआ है. इस लिये कौडीमे सेन्द्रियत्व है.

कौडी, शंख और शुक्ति (सीप) ये सब एकही वर्गके है. इनके भस्म पेटमें स्वादुता पैदा करते हैं. इनमेंसेभी यह गुण कपर्दिका भस्म

---

१ वराटी तक्रचांगेरीजंबीराणां रसे शुभे ।
प्रक्षिप्य भावयेत्तावद्यावच्छुक्ला न पश्यति ।
पश्चादुधृत्य गृह्णीयाद्वराटीं शुद्धिमागताम् ॥ रसरत्नाकर.

२ वराटा· कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयु ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

३ अंगाराग्नौ स्थिता ध्माता सम्यक्प्रोत्फुल्लिता यदा ।
स्वाङ्गशीता स्मृता सा तु पिष्ट्वा सम्यक्प्रयोजयेत् ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

४ वृद्धवैद्याधार. [ग्रंथोंमें कभी कभी वैद्योंकी औषधी बनानेकी पद्धति नहीं दी जाती है. ऐसी पद्धति कभी कभी आजकलके प्रचारमें पायी जाती है किंतु ग्रंथोंमें नहीं मिलती है इसका ग्रंथाधार नहीं लिख सकते है. केवल वृद्ध वैद्योंकी प्रथा यह ही एक आधार है. इसलिये "वृद्धवैद्याधार" लिखा है.]

में अधिक है. कोष्ठगत वातके वृद्धीसे पेटका फूलना, पेटमें दर्द और शूल, खाना खायें तो वह जैसा एकही जगहपर अटका हुवासा मालुम होना, डिकारें आना, वे कभी कभी सूखी तो कभी कभी खट्टी आती है, जी मचलाता है, कभी वातकारक, भारी या तले हुवे पदार्थ खायें तो ये लक्षण वढ जाते हैं और अजीर्ण होता है. इस हालतमें कपर्दिका भस्म देनी चाहिये. इसी रोगमे कै (उलटी) ज्यादा हो और हरएक उलटीके साथ पेट अधिक फूलता हो और उसके साथ पेटका शूल भी अधिक हो तो कपर्दिकाभस्मके साथ दाडिमावलेह (अनारक पाक) देना चाहिये.

रसाजीर्णकी आदतमें भी कपर्दिकाभस्म एक अच्छा इलाज है.

वात, पित्त या वातपित्त के विकारसे पैदा हुवा परिणामशूल कपर्दिकाभस्मसे हट जाता है. उंडुक और पित्तधरा कला इन दोनो अवयवोंमें विकृति होनेसे परिणामशूलका विकार होता है. कपर्दिका-भस्मसे पित्तविकृति कम होती है और उंडुकमें (Duodenum) जो छाले पड जाते हैं वे, पुराने और बढ गये न हो तो, कम हो जाते हैं. यहां कपर्दिकाभस्मका व्रणरोपक कार्य होता है.

अन्नद्रवाख्यशूलमें भी कपर्दिकाभस्मसे फायदा होता है. इस शूलमें वातप्रकोपसे आनाह (पेटका फूलना और दर्द) हो तो कप-र्दिकाभस्म और शंखभस्म मिलाकर देना चाहिये.

अम्लपित्तकी प्रथम अवस्थामें खट्टी और फेनयुक्त कै (वमन) होती है. इस अवस्थामें कपर्दिकाभस्म देनी चाहिये. कपर्दिकाभस्म के साथ सुवर्णमाक्षिकभस्म दे तो और फायदा होगा.

ग्रहणी रोगके शुरूमें या आमातिसारमें आमका पचन करनेके लिये कपर्दिकाभस्म देना अच्छा है. प्रथम एक दो दिन लंघन देनेकें बाद आमपाचन करना चाहिये. कपर्दिकाभस्म अकेली दे सकते हैं. नहीं तो जिनमें कपर्दिकाभस्म मिलाई है ऐसे नुस्खे भी दे सकते हैं. जैसे–जातीफलादि गुटिका, प्रमदानंद रस इत्यादि. जातीफलादि गुटि-कामें अफीम और जायफल इन दोनो औषधियोंका तीव्र स्तंभक कार्य है, इसलिये जातीफलादि गुटिकाका इलाज सोचसोचके करना चाहिये. आमातिसार और ग्रहणी, इनमें शूल अधिक हो, और वह आमजन्य हो तो कपर्दिकाभस्मसे आराम होगा. ग्रहणीरोग पुराना होगया हो तो कपर्दिकाभस्मसे उसमें कुछ फायदा नहीं होता. विशेषतः आम और रक्त के साथ टट्टी आती हो तो कपर्दिकाभस्म न देना अच्छा है.

ग्रहणीकी प्रथम अवस्थामेंभी आम और रक्त हो तो कपर्दिकाभस्म न देनी चाहिये. अगर देवें तो दूसरे स्तंभक और रक्तप्रसादक द्रव्योंके साथ देवें.

रसक्षयकी प्रथम अवस्थामें कपर्दिकाभस्म देते हैं. विशेषतः बिलकुल कम खानेसेभी अन्नका पचन न होना, मीठी मीठी डिकारें आना, उसमें बदबू होती है और कब्जियत भी होती है. इन लक्षणोंमें कपर्दिकाभस्मसे फायदा होता है.

रक्तपित्त और क्षतक्षयके विकारमें कपर्दिकाभस्म, प्रवालभस्म और सुवर्णगैरिक (सुवर्णगेरू) का मिश्रण देते हैं. इसमें जो चूनेका अंश रहता है उससे और माधुर्योत्पादक गुणसे रक्त और रक्तवाहिनिओंका स्तंभन होता है और खून गिरना बंद होता है.

पुराने अग्निमांद्यमे (बदहज्मी) कपर्दिकाभस्म घी के साथ या दूसरे पाचक द्रव्योंके साथ दी जाती है. जीर्णज्वर और प्लीहा, वृद्धिमेंभी अग्निमांद्य हो, तो कपर्दिकाभस्मसे फायदा होगा.

कर्णस्राव (कानमेंसे पानी निकलना) मे जब वह स्राव गाढा-तीक्ष्ण और फुन्सिया उठानेवाला होता है तब कपर्दिकाभस्म देनी चाहिये. प्रथम कानमे कपर्दिकाभस्म थोडीसी डाल दे और इसके उपर सिद्ध तैल या मीठा तेल छोडे. कपर्दिकाभस्म दूधके साथ पेटमें भी लेते हैं.

चमडीके जलनपरभी कपर्दिकाभस्मका जल्द असर होता है. कपर्दिकाभस्म, मुरदाडसिंग, सुवर्णगेरू, गिलोयका सत्व, चंदन और बंसलोचन समभाग और इसमें अंडीका तेल डालके अच्छी तरह खरल करो. यह मरहम मुलायम ब्रशसे या रुईसे जली हुवी चमडीपर लगाना चाहिये. यहांतक के चमडीके उपर एक गाढा लेप हो. जैसा जैसा यह लेप लगाया जाता है वैसाही आराम पड जाता है. जलन बंद होती है और बाद फोडेभी नहीं ऊठते है. चमडी बिलकुल पहलेके माफिक हो जाती है.*

कपर्दिकाभस्म के गुणधर्म—पित्तशामक, विशेषतः पित्तकी अम्लता अधिक हो तो कम करना, कोष्ठस्थ वातनाशक, शूलघ्न और पाचक.

कपर्दिकाभस्मका कार्य—यकृत्, प्लीहा, आमाशय और ग्रहणी इन अवयवोंपर होता है.

---

* यह लेप अहमदनगर मे आयुर्वेद महाविद्यालयके चिकित्सामंदिरमे कई रोगियोंपर अजमाया गया है.

दोष और दूष्य—पित्तदोष; रस और कभी कभी रक्त.

कपर्दिकाभस्म लेनेसे कभी कभी मूंहमें छाले पडते हैं. तब उसमें गिलोय का सत्व मिलाना चाहिये.

३. कासीसभस्म (पुष्पकासीस की भस्म)

प्रमाण—१ से २ रत्ती.

कासीस दो प्रकारका होता है. वालुका कासीस और पुष्पकासीस. वालुका कासीस को पांसुकासीस भी कहते हैं. भस्म बनानेके लिये पुष्पकासीस लेना चाहिये.[1]

कासीस शुद्धिः—

(१) भंगराके रसमें भिगानेसे कासीस शुद्ध होता है.[2]

(२) पित्त या आर्तव में भिगानेसे कासीस शुद्ध होता है.[3]

कासीस का भस्म बनानेकी रीतः—

(१) क्षारोंसे कासीस का मारण करके अम्लद्रव्योंकी सात भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके बाद एक एक पुट देना चाहिये. इससे कासीसकी भस्म बन जाती है.[4]

(२) गंधक से भी कासीसका मारण हो सकता है.[5]

कासीसका रंग किंचित् लाल और काला होता है.

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

...........सोष्णं कषायाम्लमतीव नेत्र्यम् ।
विषानिलश्लेष्मगदव्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरंजनंच ॥
बलिना हत कासीसं कांतं कासीसमारितम् ।
उभयं समभागंहि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ।
विषमांशघृतक्षौद्रप्लुतं शाणमितं प्रगे ।
सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रं पाण्डुक्षयामयम् ।
गुल्मप्लीहगदं शूलं मूलरोगं विशेषतः ।
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ।
आमसंशोषणं श्रेष्ठं मन्दाग्निपरिदीपनम् ।
पलितं वलिभिः सार्धं विनाशयति निश्चितम् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

---

१ कासीसं वालुकाद्येकं पुष्पपूर्वमथाऽपरम् ।
पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तम् । रसरत्नसमुच्चय.
२ सकृद्भृंगाम्बुनाक्लिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ॥ („)
३ कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रिया ॥ („)
४ क्षाराम्लैर्मर्दितं ध्मातं सत्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ („)
५ बलिना हतकासीसम् । („)

कासीसद्वयमम्लोष्णं तिक्तंच तुवरं तथा ।
वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्र्यं कण्डूविषप्रणुत् ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ आयुर्वेदप्रकाश.

कासीस के माने हिराकस (कसीस) का भस्म. यह उष्ण, कषायरसात्मक, अम्ल और नेत्रविकारको फायदेमंद औषध है. इस भस्मके गुणोंमें कषायरस का अधिक उपयोग होता है. आंखके विकारोंमें–विशेषतः अभिष्यंद पूयाभिष्यंद (आंख का आना), नेत्रव्रण, नेत्रकनीनीव्रण इत्यादि विकारोंमें पुष्पकासीसका भस्म फायदा देती है. यह भस्म और शतधौतघृत मिलाके अच्छा खरल करो तो एक उत्कृष्ट नयनांजन बन जायेगा. इसमें जो कषायरस होता है उसका रक्तप्रसादक कार्य जल्द नजर आता है. नेत्रविकारमेंभी इसी रक्तप्रसादक गुणके कारण फायदा होता है. यह रक्तप्रसादन मुलायम चमडीपर या कोमल इंद्रियोंपर भी अच्छी तरह हो सकता है.

कासीसभस्म आमका संशोधण करती है और मंदाग्नी (बदहज्मी) को हटा देती है. पाचक अग्नीको वढाती है. रसायनविधीसे कासीसभस्मका घी और शहद के साथ सेवन करनेसे बहुत फायदा होता है. केवल कासीसभस्मसे भी आमपाचन होता है. पचनेन्द्रियमें या पचनेन्द्रियके समीपके विभागमें, रक्तधातूमे विकार हुवा हो, या इन इंद्रियोंको रक्त कम पहुंचाया जाता हो तो उससे भी बदहज्मी और आम पैदा हो सकता है. आम या बदहज्मीके कारणोंमें रक्तका कम होना यहभी एक कारण है. रक्त यह पित्तधातूका आधार है. पित्त रक्तके आश्रयसे रहता है. रक्त कम होनेके कारण पित्तधातूसे पाचकपित्त कम प्रमाणमें तय्यार होता है. कासीसभस्मके सेवनसे इस रक्तकी भरपाई की जाती है.

कासीसभस्म अग्नीको प्रदीप्त करती है. जब अन्नरसमे पचन करनेकी ताकद कम हो तब पचनेन्द्रियोंको उत्तेजित करके पाचकरस पूर्ववत् तीव्र करनेका कार्य कासीसभस्मसे होता है. अन्नके पचनकी क्रिया पचनके इंद्रियोमेंसे जो भिन्नभिन्न रस पाये जाते हैं उनकी और रसायन द्रव्योंकी सहायतासे होती है. यह कार्य पित्तधातूकी मददसे होता हैं. कासीसभस्मके सेवनसे पित्तधातूका विकार नष्ट होता है और पित्तधातू नियमित काल और प्रमाणसे बहता है. और इसका असर सर्व पचनेन्द्रियोंपर और पाचक रसोंपर हो जाता है.

कासीसभस्मसे आम नष्ट होता है. इसलिये आमजन्य अजीर्ण या पुराना अजीर्णका विकार या उनमेसे पैदा होनेवाले दूसरे विकारोंमे

कासीसभस्मसे आराम मिलता है. जवानीमेंही चमडीका सूख जाना (वली) या शिरपर टक्कल (पलित) होना ये विकार कासीसभस्मसे कम होते हैं. उम्र कम होनेपरभी बालोंका सफेद होना और बुढापनसा मालूम हो तो कासीसभस्म देनी चाहिये. इन विकारोंमें कासीसभस्मके साथ कांतलोहभस्म, त्रिफलाचूर्ण, शहद और घी, अवस्थाभेदसे भिन्नभिन्न प्रमाणमें देनेसे वे विकार नष्ट होते हैं.

वहही नुस्खा पांडुरोगकी प्रथम अवस्थामें, विशेषतः वारवार अजीर्ण होनेसे पांडुता प्राप्त हुई हो तो, अच्छा काम देगा.

'धातुगत पचन' के माने यह है कि रस या रक्तके जरिये अपने अपने जरूरतके परमाणु खींचकर सब धातू अपना आकार बढाते हैं. यह पचनकी प्रवृत्ति प्रत्येक धातूमें रहती है. यह पचन कम होनेसे वह धातूभी कम होता जाता है. इस विकारमें क्षयरोगके कीड़े जरूर मिलेंगे ऐसा नियम नहीं है. क्षयरोगके कीड़े न हो तो कासीसभस्मसे जरूर फायदा होगा. विशेषतः उपर लिखे हुवे नुस्खेसे अधिक फायदा होगा.

वातज गुल्म और शूलके विकारमें कासीसभस्म देते हैं. यह कार्य भी अग्निप्रदीपन होनेसे गुल्मका पचन होनेपर सफल होता है. साथ साथ शूल भी नष्ट होता है.

ग्रहणीके विकारमें जो सेन्द्रिय विषार निर्माण होते है उनको नष्ट करनेवाली कई दवाइयां हैं. इनमेंसे कासीसभस्म भी एक अच्छा इलाज है. ये दवाइयां दो प्रकारकी होती हैं. जैसे—आरोग्यवर्धिनी, कपर्दिकाभस्म, ताम्रभस्म इत्यादि दवाइयां उष्ण, तीक्ष्ण और रसायन होती हैं. दूसरी कासीसभस्मके माफिक कषायरसात्मक, शामक और रसायन होती हैं. विशेषतः सेन्द्रिय विषारोंसे जलन पैदा होती हो तो इन शामक दवाइयोंका कार्य अच्छी तरह होता है. जलन के साथ पेटका फूलना, वायूका निस्सरण न होना, वायूके संचयसे पेटमें आवाज होना इत्यादि लक्षण हो तो दूसरे दवाइओंकी अपेक्षा कासीसभस्मसे अधिक काम होगा.

पुराने निजव्रण (फोडे, फुन्सी) में कभी कभी कासीसभस्मसे फायदा होता है. विशेषतः रक्त और मांस धातु दूषित हुवे हो और पित्त दोष बढ गया हो तो यह एक पेटमें देनेका इलाज है. बाहरसेभी दूसरी दवाइयां लगाना चाहिये. विशेषतः फोडेमें जलन हो और फोडेके किनारेपर छाले या छोटी छोटी फुंसिया हो, वे बिलकुल लाल,

रंगकी हो और स्रावके साथ खून निकलता हो तो बाहर लगानेके दवाइओंके साथ पेटमें कासीसभस्म देनी चाहिये.

नेत्रगत व्रणमें—विशेषतः आंखके माडी (कनीनी) पर व्रण हो तो-कासीसभस्म आंखमें और पेटमेंभी देनी चाहिये.

कासीसभस्मका विशेष गुण—रक्तके रक्तपरमाणु वढाना.

दोष—वात और कफ.

दूष्य—रस; रक्त और रक्तपरमाणु.

स्थान—यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी और नेत्र.

कासीस भस्मसे कभी कभी जी मचलाता है और कै होती है.

४ जसद्भस्म (जसत की भस्म या पुष्पांजन की भस्म)

प्रमाण ½ से २ रत्ती.

जसद्के दो प्रकार होते हैं. एक जसद् और दूसरा शवक.[1]

जसदकी शुद्धि—

(१) जसद् गरम करके (उसका पानी होता है) दूधमे डालनेसे शुद्ध होता है. वह दूधमे डालते वख्त छानना चाहिये और इस तरह इक्कीस वार दूधमें डालना चाहिये.[2]

(२) जसद् गरम करके तेल, छांछ, गोमूत्र, कांजी और कुल्थी के काढेमें सात सात वार डालनेसे शुद्ध होता है.[3]

(३) जसद् गरम करके विजोराके रसमे सात वार डालनेसे शुद्ध होता है.[4]

(४) मनुष्यका मूत्र, घोडेका मूत्र, छांछ या कांजी में जसदका पानी डालनेसे जसद् शुद्ध होता है.[5]

जसदकी भस्म वनानेकी रीतः—

(१) जसदके वजनसे चौथा हिस्सा शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक लेकर उन दोनोंको प्रथम घीकुमारके रसमें और वादमें नींबूके रसमें

---

१ खर्परं द्विविधं प्रोक्तं जसदं शवकं तथा ॥ रसचडाशु

२ जसदं गालयेत्पूर्वं दुग्धमध्ये तु ढालयेत् ॥
एकविंशतिवारांश्च. खर्परः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ (,,)

३ तैले तक्रे गवांमूत्रे काञ्जिके च कुलात्थिके ।
सप्तधा सप्तनिर्वापात् सर्वलोहं विशुध्यति ॥ योगरत्नाकर.

४ खर्पर परिसंतप्त सप्तवारं निमज्जित. ।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते ॥ रसरत्नसमुच्चय

५ नृमूत्रे वाऽश्वमूत्रे वा तक्रे वा काञ्जिकेऽथवा ।
प्रताप्य मज्जितं सम्यक् खर्परं परिशुध्यति ॥ रसरत्नसमुच्चय

खरल करके इनसे जसद्के छोटे छोटे पतले टुकडे को लेप करो और शराव संपुटमें डाल कर इसको गजपुट देओ. इससे जसद्की भस्म बन जायेगी.[1]

(२) जसद्के टुकडे बनाके उनको एक प्रहर तक अफीमके पानीमें या हींगके पानीमें रक्खो. वाद लोहेके कढाईमें या खपरेमें रख-कर अग्निपर चढाओ. जब पिघल जायेगा तव लोहेके डावसे (चमचेसे) दो घंटे तक हिलावो. जसद्की अच्छी भस्म वन जायेगी.[2]

(३) जसद् गरम करके जब पिघल जाय तब उसमें मालकांगनी का पंचांग (पत्ते, फूल, फल, मूल और छाल) डालकर, उसको लोहेके डावसे अच्छी तरह घोंटो. पीले रंगकी जसदभस्म बन जाती है.[3]

इन सब रीतीसे वनाये हुवे भस्ममें धातूका चूर्ण तो बन जाता है. तब भी वह सेन्द्रिय शरीरमें अच्छी तरहसे नहीं खींचा जाता है. भस्मको सेन्द्रियत्व प्राप्त होनेके लिये, इसको खानेके नीमूके रससे, हल्दीके काढेसे और घीकुमारके रससे प्रत्येक १४।१४ बार भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके वाद अग्निपुट देना चाहिये और अग्नि-पुटके वाद खरलमें अच्छी तरह मर्दन करना चाहिये.

भस्म अच्छी बनी या नहीं इसकी परीक्षा यह है कि उसमें ॲसिड या नीमूका रस डालने पर उसमे कुछभी विकृति नहीं होती है. उसमे फेन नहीं आता और उसका रंगभी नही बदलता. वह निरुत्थ होती है. ऐसी भस्म शरीरमे अच्छी तरह फैलती है. अच्छा मर्दन (खरल) हुवा

---

१ जसदस्य चतुर्थांशं पारदं गंधकं तथा ।
मर्दयेत्खल्वके सम्यक् कन्यानिंबूरसैः पृथक् ।
लेपयेत्तेन पत्राणि गजाह्वे पाचयेत् पुटे ।
एकेनैव पुटेनैव भस्मसाज्जसदं भवेत् ॥ रसचंडांशु.

२ जसदं कणशः कृत्वा यामैकमवगाहयेत् ।
अहिफेनजले किंवा रामठस्योदकेऽपि वा ।
तदोद्धृत्य खरांगारे खर्परे गालयेद्भिषक् ।
घर्षयेल्लोहदर्व्याऽथ भस्म स्यात्वांटियुग्मतः ॥ रसचंडांशु.

३ वृद्धवैद्याधार. (मालकांगनीके छोटे छोटे रोपे होते है. उनके पत्ते गहरे हरे रंगके और डंडा तुलसीके डंडेके माफिक स्याह रंगका होता है. फूल छोटे और सफेद रंगके होते है और फल गुंदनाके फलके समान छोटा और गोल, पहले हरे रंगका और पकनेसे लाल और पीले रंगका होता है. फलमे कालासा बीज रहता है. उसका तेल निकालते है तेल पीले रंगका होता है और इसको हमारे मुलुखमे "किंकणेल" कहते है.

या नहीं यह पहचाननेके लिये भस्म पानीमें छोड दो. अच्छी भस्म पानीमें तैरती है.

यह भस्म पीले रंगकी या थोडी लाल रंगकी वन जाती है. खापरियामें मिट्टीका मिश्रण अधिक रहता है. ऐसा जसदभस्ममें नहीं होता. जसद्भस्म शुद्ध और वनस्पतीमारित होनेसे उसमें अधिक गुण पाये जाते हैं. हम सुवर्णमालिनीवसंतमे भी जसद्भस्म डालते हैं.

जसद्भस्म का रंग पीली मिट्टीके समान रहता है.

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

जसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तनुत् ।
चाक्षुष्यं परमं मेहपांडुश्वासं च नाशयेत् ॥ रसचंडांशु.

कच्चे जसद्भस्मके दोषः—

अपक्वं जसदं रोगान्प्रमेहाजीर्णमारुतान् ।
वमिं भ्रमं करोत्येतच्छोधयेन्नागवत्ततः ॥ „

जसद्दोषपर इलाजः—

वलाभयां सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयं ।
जसदस्य विकारस्तु शान्तिमायाति नान्यथा ॥

जसद्भस्म तुरट और शीतल है. कफपित्तका नाश करता है. आंखके लिये हितकारक है. मधुमेह, पांडुरोग, श्वास इत्यादि विकार जसद्भस्मसे जल्द नष्ट होते है. सर्वांगज्वरमे भी जव वदनमे जलन पैदा होती है, क्षयकी प्रथम अवस्थामे जव थोडासा ज्वर रहता है, तो जसद्भस्मसे वह कम हो जाता है. रसवाहिनी और रसवहपिंड इनके विकारमे जसद्भस्म एक उत्कृष्ट इलाज है. गलरोग, गंडमाला, अपची और आंतोंकी सूजनमे भी जसद्भस्मसे फायदा होता है.

आंतोंकी सूजनसे एक तरहका अतिसार (दस्त) उत्पन्न होता है. इसमे उल्टी भी होती है और रोगी वहुत क्षीण होता है. इसमे और आंत्रिक संनिपातमे एकही प्रकारके लक्षण होते है और सूल होनेका संभव है. किंतु दूसरे कुछ लक्षण भिन्न है. आंत्रिक संनिपातमे ज्वरकी मुद्दत होती है और उतने दिनोंतक विकार कायम रहता है. आंतोकी सूजनमे (आंत्रशोथज्वर) पेटमे तीव्र शूल होता है इतना आंत्रिक संनिपातमें नही होता. आंत्रशोथज्वर मे जवानपर वडे वडे छाले पड जाते है और कभी कभी जवानकी अंतस्त्वचा निकल जाती है और उसका रंग लाल और वह बनाये हुवे चमडेके माफिक मुलायम रहती है. आंत्रिक संनिपातमे जवानपर पीले और सफेद रंगका

पडदा आता है. बीचका और पीछेका हिस्सा काला (जैसा जल गया हो) और किनारेका लाल रहता है. जबान रूक्ष और खरस्पर्श (गौके जीभके माफिक उपर कांटे होते है) होती है. आंत्रिक संनिपातमे केवल ज्वर या उसके उपद्रवोंसे मृत्यु आता है. तो आंत्रशोथज्वरमे अशक्तता अधिक होनेसे मृत्यु होगा. आंत्रशोथज्वरमे रोगीकी आवाज बिलकुल क्षीण हो जाती है और बोलनेका यत्न करे तो भी शब्द सुनने नही आता है. मूंह मुझोंता, कालासा दिखता है. हातपैर हिलानेतक भी ताकद नही रहती यह अवस्था भयंकर है किंतु इसीमे जसदभस्मसे फायदा होता है.

जसदभस्मका कार्य आंत्रशोथमे किस तरह होता यह हम कह नही सकते. इसके लिये प्रयोग करना चाहिये और प्रयोगके साधन आज मौजूद नही है. किन्तु यह संभव है कि जसदभस्मका तुरट गुण और शीतत्वादि गुण इनसे यह कार्य होता होगा. जसदभस्मके कार्यकी उपपत्ति निश्चित न समझनेपर भी आंत्रशोथमे इससे बहुत फायदा होता है इसमें शंका नही. १ रत्ती जसदभस्म और ६ रत्ती चीनी मिलाकर खूप खरल करो और इस मिश्रणकी छ पुडिया बनाओ. आंत्रशोथमे एक एक पुडी दो दो घण्टेसे छांछके साथ खिलाओ. आहार केवल छांछही होना चाहिये. छांछ रोगीको न सहन हो तो दूध देना चाहिये. दूध देते हो तो औषध भी दूधके साथ देना चाहिये. दूध और छांछ इनमे कोईभी न सहता हो तो सत्तूका पानी, या धानके लावा का मंड देना चाहिये. केवल इतनाही आहार होना चाहिये. तालिमखानेका पानीभी इसमे फायदा करेगा.

गलेमे गांठकी सूजन होती है. यह रोग पुराना होनेपरभी या दूसरे पुराने कंठरोगमे जसदभस्मसे फायदा होता है. वलय, वृंद, बलाश इन रोगोमे जसदभस्मसे कुछ भी फायदा नही होता है. किन्तु स्वरघ्न, विदारिका, गिलायु, अधिजिव्ह, उपजिव्ह इत्यादि विकार कम होते है. स्वरसाद और स्वरभंगमे भी जसदभस्मसे अच्छा कार्य होता है. ये विकार उपदंश रोगके उपद्रव हो तो जसदभस्म नही देनी चाहिये. क्षयजन्य, कफजन्य या रसवह पिंडके बिगाडसे पैदा हुवे हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा.

पोथकी, अभिष्यंद, वर्त्म, शुंडिका इत्यादि नेत्रविकारोमें भी जसदभस्मसे फायदा होता है. $\frac{1}{2}$ तोला शतधौतघृत या गौका ताजा मक्खन और १ रत्ती जसदभस्म अच्छी तरह खरल करके उसका

अंजन बनाओ. यह अंजन दिनमे दो तीन बार आंखमे डालनेसे कनी-नीके पासके व्रण और आंखोकी पलकोंके अंदरके व्रण सुधर जाते है. इसी अंजनसे उपर लिखे हुए नेत्रविकार भी अच्छे हो जाते है.

नाडीव्रण, भगंदर, दुष्टव्रण इत्यादि विकारोमें भी जसद्‌भस्म खानेसे फायदा होगा.

क्षयरोगकी एक विशिष्ट अवस्थामे भी जसद्‌भसमसे फायदा होता है. इस अवस्थामे उरःक्षत होता है और रोगी कहता है कि फेफडोंमेसे कुछ भाग निकल गया हो ऐसा अंदेशा होता है. क्षयरोग विषार सर्व शरीरमे फैलता है, और उसके संचयसे खून बिगड जाता है. बिगडे हुवे खूनसे ज्वर पैदा होता है और वह ज्वर तीव्र होता है. सुबह पसीना आता है और ताकद बिलकुल नही रहती. साथ साथ बल-मांसविहीनत्वही होता है. इस हालतमे शिलाजीत के साथ जसद्‌भस्म देनी चाहिये. इससे क्षयरोगका विषार तय्यार होनेका कार्य बंद होता है. रोगीको आराम रहता है.

जसद्‌भस्मका मेहरोगमें भी उपयोग होता है. मेहरोगके दूसरे प्रकार और मधुमेहमें आयुर्वेदशास्त्रके दृष्टीसे फर्क है. जसद्‌भस्मसे मेहमे और मधुमेहमे भी लाभ होता है. पित्तभूयिष्ठ लक्षण अधिक हो तो जसद्‌भस्म देनी चाहिये. सब शरीरमें अंदरसे ताप का अंदेशा, हाथपैरोंका जलन, सर्व शरीरमे जलन, किंतु थर्मामीटरसे देखें तो ताप बिलकुल नही होता है, प्यास बहुत लगती है किंतु थोडे पानीसे वह मिट जाती है. शरीरमे ऐसी पीडा होती है के मानो गरम गरम सूइयें घुस जाती हो, जीभ कडी और सूखी होती है, गलेमे गांठकी सूजन न होनेपरभी दर्द और गलेक रोकना, शक्तिपात, कुछ भी काम करनेको जी नही चहाता, पेशावमे शक्कर कम होनेपरभी थकावट अधिक होती है. (पेशावमे शक्करका प्रमाण अधिक हो तो—नागभस्म देना चाहिये.) सिरमे चक्कर, स्मृतिनाश, विचार करनेकी शक्ति नहीं रहती है, कुछ भी विचार थोडी देरतक करे तो विचारोंका गोलमाल होता है, सिरमे गरमाई पैदा होती है और अधिक विचार करे तो एकदम विचार बंद हो जाते है और सुन्नसा मालूम होता है. ये लक्षण पित्तजन्य मेहके है. पित्तजन्य मेह छ प्रकारके होते हैः—क्षार, नील, काल, पीत (हारिद्र), रक्त और विस्र (मांजिष्ट). इन सब प्रकारोंमे जसद्‌भसमसे जरूर फायदा होगा.

प्रमेह विकारमे जल्द इलाज न करे तो मधुमेहका विकार शुरू होता है. इसमे भी जसदभस्मसे लाभ होगा. आजकलके उपपत्तीसे 'इन्शूलिन्' नामके द्रव्यका (जो स्वादुपिंडमेसे निकलता है) एकही इलाज मधुमेहमे हो सकता है. शरीरमे इस इन्शूलिनकी उत्पत्ति कम होनेसे रक्तमे शक्कर अधिक रह जाती है. उसका पचन नही होता है. रक्तमे अधिक शक्कर होनेसे वह मूत्रपिंडोंसे मूत्रमे निकाली जाती है. पेशाबमे शक्कर आ जाती है. यह इन्शूलिन बाहरसे देकर अंदरकी कमताई पूरी की जाती है और इस बाहरके इन्शूलिनसे रक्तमेसे शक्कर शरीरके घटकोंमे खींची जाती है और उसका पचन होता है. मधुमेहके विकारमे पेशाबमे शक्कर जाती है और रक्तमेभी अधिक शक्कर रहती है. यह सब इन्शूलिनके कमताईका परिणाम है. इसी उपपत्तीं (कारणमीमांसा) को सच माने तो इन्शूलिन यह एकही इलाज मधुमेहमे हो सकता है. किंतु इस उपपत्तीका और आगे विचार करे तो दूसरे इलाज भी मधुमेहके विकारमे लाभदायक होनेकी आशा दिखती है. स्वादुपिंडमे जो इन्शूलिन कम पैदा होता है वह किस कारणसे होता है. स्वादुपिंडका यह विकार किस प्रकारका है इसका भी विचार करना चाहिये. आयुर्वेदशास्त्रका दोषदूष्यविचार इस बाबतमे श्रेष्ठ है. दोषदूष्यकी विकृतिसे ही इस स्वादुपिंडमे इन्शूलिन कम बनता है और इस दोषदूष्यकी विकृतीको नष्ट करनेसे धातुसाम्य प्रस्थापित होगा; और यहही इलाज मधुमेहमे या दूसरे विकारोंमे श्रेष्ठ माना जाएगा. इस उपपत्तीका विवेचन करनेको यहां अवकाश नही है. केवल इतनाहि लिख सकते है कि मधुमेहमे मधुद्रावक (इन्शूलिन) यह एकही इलाज नही है. जसदभस्मके माफिक दूसरे इलाज भी मौजूद है.

पांडुरोगमे भी हाथपैरोंका जलन और रसवाहिनी या रसंवह पिंडका विकार हो तो पित्तदोषको कम करनेके लिये जसदभस्म देना चाहिये.

गलेमे गांठ हो या पेटमे गांठ हो और इससे श्वासकी बीमारी बढ गयी हो, या श्वास और इस गांठमे कुछ साहचर्य (संबंध) हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा.

जसदभस्मका कार्यः—दोष-कफ और पित्त; दूष्य-रस और मांस, स्थानः-रसवाहिनी, रसवहग्रंथी, आंत्र, गल, नेत्र, मूत्रपिंड (वृक्क), स्वादुपिंड, यकृत् और उरस्.

५. ताम्रभस्म.

प्रमाण ½ से १ रत्ती.

ताम्रके दो प्रकार होते है—नेपाल और म्लेंच्छ.

नेपाल ताम्र श्रेष्ठ है.[1]

ताम्रका शोधनः—

(१) गोमूत्र, नींमूका रस या इमलीकाकल्क और सोहागा.. इनमे तांवेके पतले पतले पत्रे एक प्रहर तक पकानेसे ताम्रकी शुद्धि होती है.[2]

(२) तांवेके पतले पत्ते बनाके वे गोमूत्रमे उबलानेसे ताम्र शुद्ध होता है.[3]

(३) तांवेके पत्तेको नींमूका रस और सैंधानोनसे लेप देना चाहिये. फिर अग्नीमे तपाकर सौवीरकमे बुझाना चाहिये. इस तरह सातवार करनेसे ताम्र शुद्ध होता है.[4]

(४) तांवेके पत्तेको नीमूका रस और सेंधानोनसे लेप देकर वह अग्नीमे तपाकर निर्गुंडीके रसमे आठबार बुझानेसे ताम्र शुद्ध होता है.[5]

(५) तांवेके पत्तेको थूहरका रस, आकका रस और नमकसे लेप देना और अग्नीमे तपाकर निर्गुंडीके रसमे तीन वार बुझाना इससे भी ताम्रकी शुद्धि होती है.[6]

---

१ म्लेंच्छं नेपालकं चेति तयोर्नेपालमुत्तमम् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

२ गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
साम्लक्षारेण संशुद्धिं ताम्रं प्राप्नोति सर्वथा ॥ निघंटरत्नाकर.

३ गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
शुद्ध्यते नात्र संदेहः ॥ रसरत्नसमुच्चय.

४ ताम्रं निर्मलपत्राणि लिप्त्वा निंब्वम्बुसिंधुना ।
ध्मात्वा सौवीरकक्षेपाद्धि शुध्यत्यष्टवारतः ॥ रसरत्नसमुच्चय.
यवैस्तु निस्तुपैः पक्वैः सौवीरं संधितं भवेत् ।

५ निंब्वम्बुपटुलिप्तानि तापितान्यष्टवारकम् ।
विशुध्यंत्यर्कपत्राणि निर्गुण्ड्यारसमज्जनात् ॥ र. स. (अर्क = ताम्र).

६ वज्रीदुग्धे सलवणेस्ताम्रपत्रं विलेपयेत् ।
अग्नौ संताप्यनिर्गुंडीरसैः संसेचयेत् त्रिशः ।
स्नुह्यर्कक्षीरसेचैर्वा शुल्वं शुद्धि प्रजायते ॥ योगरत्नाकर.

(६) तांबेके बिलकुल छोटे तुकडे लेकर वे छांछमे ५।६ दिन रखना. हररोज धोकर फिर छांछ बदलना चाहिये. पांच दिनके बाद धोकर फिर सुखाना चाहिये. और तेलमे २४ घंटे तक रखना चाहिये. फिर अग्नीमे रखके जबतक तेल जलजाय और वह गरम होके लाल रंगका हो तबतक तपाना चाहिये. लाल होनेपर उसपर थोडासा छांछ सींपकर उसको हिलाना और फिर छांछ सींपना चाहिये इस तरह बार बार करनेसे ताम्र शुद्ध होता है.[1]

ताम्रका मारण:—(भस्म बनानेकी रीत).

(१) पारा और गंधक की कज्जली बनाके उसको नीमूके रसमे घोंटना और उसका लेप तांबेके शुद्ध किये हुवे पत्तेको देना. उनको मिट्टीके कटोरेमे डालके उपर एक कटोरा रखके उसके उपर गीली मिट्टीसे लिपटा हुवा कपडा लपेटना (शरावसंपुट). उसे सुखाकर अग्नीमे डालना चाहिये. इस तरह तीन गजपुट देनेपर ताम्रकी भस्म होती है.[2]

(२) तांबेके वजनका पारा और उतनाही गंधक, गंधकका आधा हिस्सा हरताल, हरतालका आधा हिस्सा मनसिल लेकर कज्जली बनाना. इसमेसे थोडा भाग गर्भयंत्रमे रखके उसपर ताम्रके शुद्ध टुकडे रखना. फिर उनपर कज्जली रखना. फिर टुकडे और फिर कज्जली इस तरह सब ताम्र रख्खा जाय. इसको एक प्रहरतक आंच देकर वह ठंडा हो जानेपर उनका चूर्ण बनाना. यह चूर्ण ताम्रभस्म है. (सोमनाथी ताम्रभस्म)[3]

(३) एक भाग गंधक और एक भाग शुद्ध ताम्र लेना. एक मिट्टीका कटोरा लेकर उसमे प्रथम आधा गंधक डालकर तांबेके टुकडे डालना. फिर बाकी आधा गंधक डालकर, दूसरे कटोरेसे ढंकना. फिर मिट्टीसे लिपटा हुवा कापड लपेटकर तीन प्रहरतक गजपुटसे

---

१ वृद्धवैद्याधार.

२ जम्बीररससंपिष्टं रसगंधकलेपितम् ।
शुल्बपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

३ शुल्बतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च ।
तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया ।
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलिसंनिभाम् ।
यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरांतरे ।
कज्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत् ।
प्रपचेद्यामपर्यंतं स्वाङ्गशीतं प्रचूर्णयेत् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

आंच देना. ठंडा होनेपर उसका चूर्ण करना. और कपडेसे छान लेना. यह ताम्रभस्म है.[1]

(४) ताम्रके शोधनके छट्ठे प्रकारसे शुद्ध किया हुवा ताम्र लेकर उसको तिलवन, उतरण, सफेद वसु और नींबूका रस इनकी चौदा चौदा भावना देकर गजपुट देनेसे मोरके परके रंगकी ताम्रभस्म तय्यार होती है.[2]

ग्रंथोक्त गुणधर्म—

(१) तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितम् ।
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम् ॥
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयम् ।
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद्ध्रुवमिदं तत्सोमनाथाभिधम् ॥ रसरत्नसमुच्चय.

(२) सेव्यं सम्यक्वेल्लमेकप्रमाणं कासं श्वासं हन्ति गुल्मप्रमेहौ ।
पिप्पली मधुना सार्धं सर्वदोषहरा परा ।
दुर्नामग्रहणीरोगाग्निहन्ति च रसायनम् ॥ रसचडांशु.

(३) ताम्रं शीतं निहन्याद् व्रणकृमिजठरानाहसंप्लीहपांडु- ।
श्वासश्लेष्मास्रवातक्षयपवनगदं शूलयुग्मं च गुल्मम् ॥
कुष्ठान्यष्टादशाऽपि स्मरबलरुचिकृद्रक्तमेदोऽम्लपित्त- ।
च्छेदि प्रोक्तं त्वशुद्धं कृमिदरणरुगाध्मानकुष्ठाधिकारी ॥

बृहद्योगतरंगिणी, यो. र. इ०

(४) ताम्रं तीक्ष्णोष्णमधुरं कषायं शीतलं सरम् ।
कफपित्तक्षयः पाण्डुकुष्ठघ्नं च रसायनम् ।
परिणामशूलमर्शांसि मन्दाग्निश्च विनाशयेत् ॥ र र.

(५) पिप्पली मधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत् ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं अग्निमान्द्यमरोचकम् ।
गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलपक्त्यर्थमुत्तमम् ।
दोपत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ॥ र र स.

---

१ शुद्धं शुल्वं गंधकं वै समांशं पूर्वं स्थाल्यां स्थापयेद्गंधकार्धं ।
मध्ये शुल्वं स्थापनीयं प्रयत्नात्तस्योर्ध्वं वै गंधचूर्णस्य चार्धं ॥
स्थालीमुखे चूर्णघटीं निवेश्य लेपं तथा सैंधवमृत्स्नयाऽपि ।
चुल्ल्यां च कुर्यादथ वन्हिमेवं यामत्रयेणैव सुपाचितं भवेत् ॥
शीतीभूतं दोपहीनं तदेव कृत्वा चूर्णं गालितं वस्त्रखण्डे ॥ र प्र सु.

२ वृद्धवैद्याधार.

अच्छे बने हुवे ताम्रभस्मका रंग मयूरकण्ठ जैसा (मोरके गलेके रंगसा) नीला होता है.[1]

ताम्रभस्मका प्रमुख उपयोग यह है कि शरीरमे जो भिन्न भिन्न ग्रंथि होते है उनकी सूजन हो या वे बढ गये हो तो उनका आकार कम करना और उनके परमाणुओंको ताकद देकर उनकी शक्ति वढाना. विशेषतः यकृत् और प्लीहा इनकी वृद्धिमे ताम्रभस्मसे बहुत फायदा होता है. ताम्रभस्मसे उनके वढे हुए परमाणु घटने लगते है और जो करीव करीब मर गये है उनको ताकद आजाती है. वे अपना काम करने लगते है. जो बिलकुल नाकामके हो वे दूसरे परमाणुओंसे अलग किये जाते है. ताम्रभस्म लेनेसे वह प्रथम यकृत्मेंही जाती है और फिर यकृत्से सव शरीरपर फैलती है. इस लिये ताम्रभस्मका असर प्रथम यकृत् और पित्ताशय पर होता है. पित्ताशयका संकोच होगया हो या पित्तका स्राव गाढा हो गया हो या पित्ताशयके अंदर कुछ विकार होकर पेटमे दर्द हो, तो इस तरहकी पेटकी दर्दमे ताम्रभस्मसे फायदा होगा. इससे यकृत्पित्तका स्राव अच्छी तरह और नियमित हो जाता है. पित्ताशयमे कभी कभी पित्तके कंकर वन जाते है और इससे शूल होता है. इसमे भी ताम्रभस्म देनेसे वे कंकर धीरे धीरे पिघल जाते है. ताम्रभस्म इस विकारमे करैलेके पत्तोंके रसमे देनी चाहिये. यकृत्के भिन्न भिन्न विकारोंमे विशेषतः जिनमे यकृत्के परमाणु वढ गये हो वहां ताम्रभस्म जरूर देनी चाहिये.

प्लीहा (टिल्ली) के वृद्धीपरभी ताम्रभस्म अच्छा काम देती है. गुल्म, अष्टीला इत्यादि विकारोंमे भी उन ग्रंथिओंका क्षरण करनेके लिये ताम्रभस्मका उपयोग होता है. गुल्मके विकारमें ताम्रभस्मके साथ कुमारी आसव या दूसरा कुछ सौम्य विरेचन देना चाहिये. आमाशयका कर्कटग्रंथि या मांसार्बुद ताम्रभस्मसे कम होता है. कर्कटग्रंथि या मांसार्बुदके लिये आयुर्वेदकी दो दवाइयां हैं. एक ताम्रभस्म और दूसरी वंगभस्म. इनमेसे ताम्रभस्म वातप्रधान या कफप्रधान दोषवृद्धीमे देनी चाहिये. पित्तवृद्धि हो और पित्तप्रधान दोष ग्रंथिओंमे लीन हुए हो तो वंगभस्म देनी चाहिये. ताम्रभस्मसे मांसार्बुदके दोषोंका स्राव होता है. खून गिरता हो तो उसमे ताम्रभस्म न देनी चाहिये, वहां वंगभस्मकी जरूरत है.

---

१ ताम्रभस्म धूपमे रक्खे और देखे तो उसका रंग मोरके परके माफिक दिखता है. उसमे चंद्रिका (चमक) नही रहती है. दहीमे मिलानेसे उसका रंग बदलता नही.-हरा नही होता. इस तरहकी भस्म अच्छी समझनी चाहिये.

उदररोगमें भी ताम्रभस्मका उपयोग होता है. सामान्यतः उदर-रोग तीन इंद्रियोंमे दोषप्रकोप होनेसे पैदा होता है. (१) हृदयकी विकृति (२) यकृत्‌की विकृति और (३) मूत्रपिंडकी विकृति. आजकल इस बातपर वादविवाद हो रहा है कि प्रथम हृदयका विगाड होनेपर यकृत्‌का विकार होता है या प्रथम यकृत्‌का विकार होनेपर हृदय विगड जाता, और उदररोग पैदा होता है? इसमे सच बात यह है कि जिन दोषोंकी विषमतासे यकृत्‌का विकार होता है उनहींसे हृदयकाभी विकार होता है. "स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः॥ स्थानांतराणि च प्राप्य विकारान्कुरुते बहून्॥" इस न्यायसे यकृत् और हृदय इन स्थानोंमे एकही प्रकारकी दोषविकृति होती है. इसीलिये कौनसा दोष वढ गया है यह देखकर ताम्रभस्म या दूसरी दवाइयां देनी चाहिये. कफप्रधानें या कफवातप्रधान दोषदुष्टीमे ताम्रभस्मसे फायदा होगा. ताम्रभस्ममे मूलतः मूत्र उत्पन्न करनेका गुण नहीं है. जलोदरके विकारमे शरीरमे भरा हुवा पानी निकालनेकी जरूरत है. पानी निकालनेके मार्गोंमे मूत्रमार्ग प्रधान है. मूत्र वढानेमे ताम्रभस्मका साक्षात् कुछ भी कार्य नहीं होता. इसलिये ताम्रभस्मके साथ दूसरी मूत्रल दवाइयां देनी चाहिये. पुनर्नवा देनेसे यह लाभ होगा.

ताम्रभस्मके साथ शामकमूत्रल दवा देनेपरभी विरेचन औषध देनेसे पानी निकलनेका दूसरा एक मार्ग खुला हो जायेगा. कभी कभी केवल ताम्रभस्मसे भी दस्त आते है. विशेषतः पित्तप्रकृतीके आदमीको दस्त आते है. क्योंकि ताम्रभस्म पित्तको वढाती है और उसके तीव्र-त्वादि गुण वढ जाते है. इसलिये ताम्रभस्मके साथ अमलतास का गूदा या कुटकीके समान द्रव्य देनेसे पित्तका विरेचन अच्छी तरह होगा और दस्त भी पानीके माफिक आयेंगे.

ताम्रभस्मसे रक्तका जोर भी वढ जाता है. इसी वजह ताम्रभस्म देनेके बाद कभी कभी नाकसे या गलेसे खून निकलने लगता है. मूत्र-पिंडके विकारसे जलोदर हुआ हो और इसमे ताम्रभस्म दें तो मूत्र-पिंडकी सूजन अधिक वढ जाती है और पेशाव कम निकलता है. जलोदरका पानी बाहर नही निकलता लेकिन अधिक वढ जाता है. मूत्रपिंडका पूयवृक्क नामका एक विकार है. इसमे ताम्रभस्मसे फायदा होता है. मूत्रपिंडमें जो मवाद जम जाता है वह कम होकर धीरे धीरे मूत्रपिंड अपना काम अच्छी तरह कर सकता है. इसमे भी ताम्रभस्म देनेका प्रमाण वहुत कम होना चाहिये. साधारण मूत्रविकारोंमे ताम्र-भस्मका उपयोग न करना ही ठीक है. जलोदरके विकारमें भी विशिष्ट

प्रकारके जलोदरमें ताम्रभस्मसे फायदा होगा. सबमे नहीं. यकृतोदर, कफोदर और प्लीहोदर इन तीन उदर विकारोंमे फायदा होगा. इनमे भी ऊपर लिखे हुवे दोष और दूष्य होने चाहिये.

हैजाके विकारमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है. हैजामे जब खूब दस्त आते है तब हाथपैरोमे ऐंठन आती है. यह ऐंठन ताम्रभस्मसे कम होती है. किंतु इस हालतमे ताम्रभस्म बिलकुल कम प्रमाणमें और बार बार देनी चाहिये. ऐंठन जल्द बंद हो जायेगी. वमन, शूल और भ्रम भी इससे कम होगा. ऐंठन बंद होनेके बाद माक्षिकभस्म, शंखभस्म, कामदुधा इत्यादि दवाइयां देनी चाहिये.

अम्लपित्तमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है. इस विकारमे कै कम होती है किंतु इसमे पित्तके कारण जलन अधिक होती है, चक्कर और पेटमे शूल बहुतही तीव्र होते है. जिस प्रकारके अम्लपित्तमे कै अधिक है, और दर्द या तकलीफ कुछ नहीं हो उसमे सुवर्णमाक्षिक भस्मसे फायदा होगा. इस प्रकारमे वान्ती (कै) खट्टी या मीठी होती है और पित्तका संचय भी अधिक होता है. ताम्रभस्मसे जिस प्रकारका अम्लपित्त शान्त होगा उसमे पित्तका प्रमाण कम होता है किंतु कम होनेपरभी वह तीक्ष्ण और जलन पैदा करनेवाला होता है. इन लक्ष-णोंको कम करनेके लिये ताम्रभस्म देनी चाहिये. इससे पित्तका स्राव होता है और वह शरीरके बाहर निकल जाता है याने ताम्रभस्म एक किस्मका विरेचन है. ताम्रभस्मका प्रमाण कम होना चाहिये और साथ साथ कुछ स्नेह भी देना चाहिये. तब इससे फायदा होगा. यकृत्पित्तका स्राव कम होनेसे एक किस्मका अतिसार उत्पन्न होता है. उसमें भी ताम्रभस्मसे फायदा होता है.

गर या सेन्द्रिय विषार पेटमे जानेसे जो विकार पैदा होता है उसमे संशोधनकी जरूरत पडती है. इस विकारमे वह गर या सेन्द्रिय विषार किस जात का या किस प्रकार का है इसका ख्याल रखना चाहिये. मदोत्पादक विषार पेटमें जानेसे या कुछ गर के कारण बेहोशी उत्पन्न हुई हो तो ताम्रभस्म देनेसे उसका शोधन होगा. सेंद्रिय विषार भी शरीरमे संचित होनेसे बेहोशी उत्पन्न होती है. उसमेंभी ताम्रभस्मका कार्य होता है. आमाशय और पक्वाशय इन दोनोंका संशोधन ताम्र-भस्मसे होता है. दोष-कफभूयिष्ठ होने चाहिए.

अष्ठीला आदि ग्रंथी कोष्ठमे (पेटके ऊपरके हिस्सेमे) बढ गये हो, या उनके बढ जानेसे कोष्ठद्रवशूल या दूसरे कोष्ठशूल उत्पन्न हुए

हो तो ताम्रभस्म देनी चाहिए. वहुत वडा और कठिण गोला भी धीरे धीरे कम हो जाता है.

पांडुरोगमे कभी कभी प्लीहा और यकृत् इन दोनोंकी या इनमेसे एक की वृद्धि हो जाती है. पांडुरोगमे चमडीका रंग पीला होता है किंतु इस प्रकारमें वह फीका रहता है. चमडी पर तेल लगाये जैसी स्निग्धता, सूजन और सुफेदसा रंग रहता है. सर्व शरीरपर थोडी थोडी सूजन होती है, और इसका कारण भी प्लीहा या यकृत् का विकार होता है. इसमे पित्तकी क्षीणता और कफकी वृद्धि हो तो ताम्रभस्म देनी चाहिए.

कफज गुल्म या अष्ठीला वहुत वढ जाने पर भी ताम्रभस्मसे कम होती है.

मांस खानेवाले आदमीको मेहका विकार हो तो दूसरे औषधोंकी अपेक्षा ताम्रभस्मही अच्छी होगी. ताम्रभस्म देनेसे जो पित्त उत्पन्न होता है उससे मांसका पचन आसानीसे होता है इसी कारण वह मेहके विकारमेभी काम देता है.

ग्रहणी विकारमें पित्तकी उत्पत्ति कम होती है और जितना पित्त उत्पन्न होगा वह भी तीक्ष्णतामे कम होता है. इस अवस्थामें टट्टी विलकुल सुफेद पानीमे आटा मिलाये जैसे रंगकी (विशेषतः वाजरी के आटेके रंगकी) और चिकनी आती है. इसमे वदवू भी होती है. जी मचलाता और कभी कभी उल्टी (कै) भी हो जाती है. वह कै भी सुफेद, चिकनी और दुर्गंध होती है. इस विकारमे ताम्रभस्मसे फायदा होगा.

ताम्रभस्मके गुणधर्मः—यह कडक, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदन करनेवाली और पित्तका स्राव वढानेवाली है. इस लिये इसका उपयोग सम्हालके करना चाहिये. कोई कहते है कि ताम्रभस्म वहुत उत्तेजक होनेके कारण नपुंसकत्वनाशक है. किंतु यह गुण हमने कभी देखा नहीं है. इसलिये इस विकारमे ताम्रभस्म न देना ही अच्छा होगा.

ताम्रभस्म निरुत्थ (जलानेसे जिसमे तांवा न मिलता हो) लेनी चाहिये. कच्ची ताम्रभस्म लेनेसे भ्रम, प्रलाप, कै, कभी कभी ज्वर, दस्त, शूल और रक्तस्राव होता है.

यह भस्म—गर्भिणी, सूतिका, वाल, वृद्ध, क्षतक्षीण, क्षयके विकारसे क्षीण और ववासीर के रोगी (विशेषतः खूनी ववासीर के रोगी), इनको कभी न खिलानी चाहिये.

ताम्रभस्म कच्ची रहनेसे जो विकार होंगे उनमे लक्षणोंके भेदसे उन लक्षणोंके विपरीत कार्यकारी औषध देना चाहिये. विशेषतः मौक्तिक भस्मसे अधिक फायदा होगा.

ताम्रभस्मका कार्य

दोष—कफ.

दूष्यः—रस, रक्त और मांस.

स्थान—यकृत्, प्लीहा, उंडुक, पित्तधरा, पक्वाशय, ग्रहणी और कोष्ठग्रंथी.

कार्य—पित्तका स्राव वढता है. इसके तीक्ष्णत्व और ऊष्णत्व, ये गुण वढ जाते है. रक्तका (नाडीका) जोर वढता है. रक्तस्राव भी अधिक होता है. इसलिये कफ वृद्धीमे कार्य होता है.

६ त्रिवंग भस्म.

प्रमाण–१ से २ रत्ती.

रांगा, सीसा और जसद, अलग अलग शुद्ध करके सम प्रमाणमे मिश्र करना. इससे हल्दी (पीसी हुई) डाल कर खूब घोटना. इससे गर्द पीले रंग की भस्म तैयार होती है. इसको त्रिवंग भस्म कहते है. इसको हल्दी के काढेसे और घीगुवार के रससे चौदा चौदा भावना देनी चाहिये. हरएक भावनाके बाद अग्निपुट देना चाहिये. भस्म निरुत्थ हो जानेतक ये भावना और पुट चालू रक्खे. कौनसीभी भस्म जवतक निरुत्थ न हो तवतक उसका उपयोग न किया जाय. अच्छी तरह वन गयी हो तो त्रिवंगभस्म का रंग गर्द पीला हो जाता है.

त्रिवंगभस्म से ताकद आती है और नपुंसकत्व और सिरागत वात विकार नष्ट होते है.

मेह विकारोंमे मे भी इक्षुमेह, हरिद्रामेह और लालामेह इनमे त्रिवंगभस्म अच्छा कार्य करती है. वार वार पेशाब करनेकी इच्छा, पेशाव का प्रमाण भी वढ जाना, इन लक्षणोंमे त्रिवंगभस्म का सेवन कुछ दिनोंतक करना चाहिये. इसका प्रमुख कार्य पेशाबके उत्पत्तीपर होता है. मधुमेहमें भी इसका उपयोग करते है किंतु उसमे केवल नागभस्मसे अधिक फायदा होगा. मधुमेहमे भी प्रथम गठियावात (संधिवात) की वीमारी हो या कई दिनोंके पहले संधिवात होगया हो या सिरमे दर्द, या पेटशूल या दूसरा कोई पुराना विकार होनेके वाद उपद्रव के तरीकेसे मधुमेह होगया हो तो केवल नागभस्मकी जगह

त्रिवंगभस्म देना ही योग्य है. मधुमेहकी भी आखीरी अवस्था हो और प्रमेहपीटिका का उपद्रव हो तो, न तो नागभस्म और न त्रिवंग-भस्मसे कुछ हो सकेगा. इसमे केवल सिलाजीतसे ही फायदा होगा.

त्रिवंगभस्म यह एक वढिया वाजीकर (जननेंद्रिय को ताकद देनेवाला) औषध है. नपुंसकत्वमेंभी उससे लाभ होगा. अतिवीर्यपात, बहुत अधिक स्त्रीसंग, इन आदतोंसे जननेन्द्रिय शीघ्र शिथिल हो जाता है और नपुंसकता प्राप्त होती है. वार वार स्वप्नदोष होना और उससे नपुंसकत्व प्राप्त होना, या यौवनके उत्साहके कारण बहुत स्त्रीसंगसे नपुंसकत्व उत्पन्न होना इन विकारोंमे त्रिवंगभस्म बहुत लाभ पहुंचाती है. यह भस्म वीर्यको वढाती है और जननेंद्रियके स्नायूको ताकद पहुंचाकर शिथिलता नष्ट करती है. नपुंसकत्व न होने पर भी जिनको स्वप्नदोष होता है या विना किसी कारण वीर्यस्राव होना इन विकारोमे भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होता है. नपुंसकत्वका एक प्रकार ऐसा है कि जननेंद्रियका उत्तेजन वाज वखत तो ठीक रहता है किंतु स्त्रीके पास जानेसेही वह नष्ट हो जाता है. घबराट होती है और चिंता भी रहती है. इस विकारसे त्रिवंगभस्मका सेवन करनेसे लाभ होगा.

स्त्रियोंके वंध्यात्व (वांझपन) मे भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होता है. गर्भाशय या योनिमार्ग मे कुछ रुकावट हो और उस रुकावट के कारण वंध्यात्व उत्पन्न हुआ हो तो उस रुकावट को निकालनाही उचित है. किंतु ऐसी रुकावट न होनेपरभी अंडकोष की अशक्तता या संकोचसे, अथवा फलवाहिनीओंकी अशक्तता या संकोचसे, या इन इन्द्रियोंका विकास पूर्ण न होनेसे वंध्यात्व उत्पन्न हुआ हो तो त्रिवंग-भस्म देनी चाहिए, अण्डकोष का विकास न होनेसे स्त्रियोके विशिष्ट इंद्रियोंकी भी वृद्धि नही होती है. जैसे–नितंव भाग की वृद्धि न होनेसे उनका आकार वेडौल होता है. स्तनोंकी वृद्धि न होनेसे छातीका आकार भी उन्नत नही होता ऐसी स्त्रीमे विशिष्ट स्त्रीभावना न होनेसे उसके मूँहपर भी जनानी झाँक नही रहती है. वाहरसेही–केवल देखने-सेही–इस रोगका निदान कर सकते है कि इस स्त्रीके अंडकोषोंका विकास नही हुआ है. इस विकारमे तो त्रिवंगभस्म ने कमाल की है.

स्त्रियोंके अंतरिन्द्रियोंको त्रिवंगभस्मसे शक्ति मिलती है. जल्द जल्द और वहुत गर्भधारणा होनेसे, या गर्भपातकी आदत होनेसे, स्त्रियोंके अंतरिंद्रियोंको अशक्तता आ जाती है और इसी अशक्ततासे

वाह्येंद्रियोंपर असर होता है और सब शरीर सूख जाता है इसमेंभी त्रिवंगभस्मसे फायदा होगा.

कभी कभी स्त्रियोंको कम उम्रमे स्त्रीत्व प्राप्त होता है, या कम उम्रमे वहुत संभोग होनेके कारण अंतरिन्द्रियोंको धक्का लगता है और वे दुवले हो जाते है. इससे यह होता है कि या तो गर्भधारण नही होती; या गर्भ रहे तोभी वह पूर्ण नही वढता, थोडेहि दिनोंमे गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है· अगर पूर्ण दिन भी होगये तो बच्चा विलकुल दुवलापतला होता है. इस विकारमें भी गर्भाशयको शक्ति देनेके लिए और उसका गर्भधारण का कार्य सुकर होने के लिए त्रिवंगभस्म देनी चाहिए.

अत्यंत कामवासना या वार वार संभोग होनेके कारण स्त्रियोंके जननेंद्रियोंसे सुफेद, चिकण और पतलासा स्राव निकलने लगता है. वह कभी कभी इतने अधिक प्रमाणमे होता है कि उस स्त्रीको वडी तकलीफ होती है. कभी कभी केवल संभोगके विचारसेही बहुत स्राव निकल आता है. कभी कभी दूसरे प्राणिओंका संभोग देखकर, या ऐसी वाते सुनकर या उनके केवल स्मरणसेही यह स्राव आ जाता है. त्रिवंगभस्मके सेवनसे यह स्राव वंद हो जाता है.

लडकियोंको वूरी आदतोंसे या मासिकस्राव शुरू होनेके पहले ही संभोग होनेसे, जननेन्द्रियमे अशक्तता आती है, और वे जल्द थक जाती है. जननेन्द्रियमेंसे पानीके माफिक स्राव निकल आता है और वह स्राव कभी कभी वहुत होता है. इसमे त्रिवंगभस्म देनेसे यह स्राव भी वंद हो जाता और इंद्रियोंकी ताकद भी वढ जाती है.

स्नायू और सिरा-गत वायूके विकारसे सर्व शरीरमे-विशेषतः वातवाहिनिओंमे दर्द पैदा होती है. नसोंका आकुंचन होता है, उनमें पीडा होती है और वे स्पर्शमे कठिण होती है. उनकी शक्ति कम होनेके कारण आदमी अपने हाथपैर उठा नही सकता और उनसे काम लेनेमें भी बडी तकलीफ हो जाती है. एक ओरके नसोंकी अशक्ततासे और दूसरी ओरकी नसोंका कार्य अधिक होनेसे हाथपैर टेढे हो जाते है. सारा वदन टेढा होता है. हाथपैरोंमे कंप होता है. इस विकारमें भी त्रिवंगभस्मसे फायदा होगा.

त्रिवंगभस्मका कार्यः—

दोष—वात और वातपित्त.

दूष्य—रक्त, मांस, अस्थि और शुक्र.

स्थान—सहस्रार, वातवाहिनी, वातवहमंडल, शुक्रस्थान, गर्भाशय और अंडकोष.

७. नागभस्म (सीसेकी भस्म)

देनेका प्रमाण—½ से १ रत्ती.

सीसा दो प्रकारका होता है. एक कुमार और दूसरा शमल. इसमे कुमार सीसाश्रेष्ठ है और वह ही रसायनोंमे लिया जाता है.[1]

सीसेकी शुद्धिः—

(१) कतरे पत्तेकी निर्गुंडीके रसमे उसी पेडके जडका चूर्ण और हल्दीका चूर्ण मिलाकर सीसेके पानीमे (तपानेसे पतला हुवा सीसा) तीन वार डालनेसे सीसा शुद्ध हो जाता है.[2]

(२) जिसके तलमे छेद है ऐसा एक वरतन लेकर उसमे आकका रस डालके, सीसेका पानी तीन वार डाल दिया जाय. उससे सीसा शुद्ध होता है.[3]

(३) त्रिफलाका काढा, घीगुवारका रस, या कण्हेरीके पत्तोंका रस लोहेके कढाईमे डालकर, उसपर खैरके अग्नीसे तपा हुवा सीसा सात वार ढालनेसे सीसा शुद्ध होता है. हरवख्त रस नया लेना चाहिये.[4]

(४) हल्दी, तुंवरू फल, तालिमखाना, जंगली तुलसीका वीज, दारुहल्दी, त्रिफला, इमली, शिवलिंगी, भटकटैया, ब्राम्ही और जीरा, इनमेसे जितनी मिलेगी उतनी चीजें लेकर उनकी राख वनाना, वह तीन

---

१ नागंच द्विविधं प्रोक्तं कुमारं शमलं तथा।
कुमारं रसमार्गेषु योजनीयं गुणाधिकम् ॥ रसचडाम्रु

२ सिंधुवारजटाकांतिहरिद्राचूर्णकं क्षिपेत्।
द्रुते नागेऽथ निर्गुण्ड्यास्त्रिवारं निक्षिपेद्रसे।
नाग शुद्धो भवेदेवम् ॥ रसरत्नसमुच्चय

३ नागोद्रुतोऽग्निसंयोगाद्रविदुग्धे निपातित।
सच्छिद्रहंडिकासंस्थस्त्रिवारं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ योगरत्नाकर.

४ फलत्रिकजकषाये वा कुमारीरसे वा।
करविरसलिले वा गालयेत्सप्तवारम्।
खदिरदहनतप्तं लोहपात्रे स्थितं सत्।
तदनु सपदि नागो जायते शुद्धभाव ॥ रसचडाग्रु

कांटेवाले थूहरके रसमे मिलाकर उसका लेप सीसेके पत्तोंको देना चाहिये, फिर उस सीसेका पानी वनाके उसी राखमे डालना. इस तरह सात वार करनेसे सीसा शुद्ध होता है.[१]

(५) तेल, छांछ, गोमूत्र, कांजी या कुलथीका काढा, इनमे सीसेका पानी सात वार डालनेसे सीसा शुद्ध होता है.[२]

सीसेकी भस्म वनानेकी रीत

(१) शुद्ध मनसील अडूसेके रसमे खरल करके उसका शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप करना चाहिए. फिर उनको कुंभपुट तीन वार देनेसे सीसेकी भस्म वनती है.[३]

(२) केचवे और अगस्तिया (हथिया) के पत्तोंको पीसकर उनका लेप शुद्ध सीसेके पत्तोंको करके उनको अग्नीमे रखना. जव पिघल जाय तव अडूसा और ओंगा का क्षार सीसेके वजनसे चौथा हिस्सा, उसमे डालकर एक प्रहर अडूसेके रसमे खरल करना. फिर उसका एक गोला वनाके लघुपुट देना. इस तरह सात वार पुट देनेसे सिंदूर रंगकी सीसेकी भस्म वन जाती है.[४]

(३) शुद्ध मनसील नागरवेल के पत्तोंके रसमे खरल करके शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप देना. और वे मिट्टीके कटोरेमे धरके दूसरे कटोरेसे

---

१ निशातुम्बुरुबीजानि कोकिलाक्ष कुवारिकाम्।
गौरीफलाम्लिकाचंडीक्षुद्राब्राह्मी सजीरकम् ।
यथालाभेन भस्मैकं वज्रीक्षीरेण भावयेत् ।
तन्मध्ये भावितं नागं शुद्धे सेकंतु सप्तधा ॥ र. र.

२ तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिके च कुलत्थके ।
सप्तधा सप्तनिर्वापात्सर्वलोहं विशुध्यति ॥ योगरत्नाकर.

३ त्रिभि कुंभपुटैर्नागो वासास्वरसमर्दित ।
सशिलो भस्मतामेति तद्रज सर्वमेहजित् ॥ र. म

४ भूभुजंगमगस्त्यं च पिष्ट्वा पात्रं प्रलेपयेत् ।
तद्रसं विद्रुते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तनु चतुर्थांशं गुरूक्तित ।
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च घट्टितः ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरेण मर्दयेत् ।
पुटेत्पुन समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥
एवं सप्तपुटान्नागं सिंदूरं जायते ध्रुवम् ॥

ढक कर मिट्टीसे लिपटे हुवे कपडेसे लपेटकर उनको लघुपुट देना. सीसेकी निरुत्थ भस्म वन जाती है. लघुपुट वत्तीस वार देना पडता है.[1]

(४) पीपलकी और इमलीकी छाल लेकर जलाना और वह राख समभाग लेकर उससे चौगुना सीसा लेना. प्रथम लोहेके कढाईमे सीसाका पानी वनाके उसमे थोडी थोडी राख डालकर लोहेके डंडेसे खूव घोंटाना. एक प्रहर तक घोंटनेके वाद उसमे समभाग मनसील मिलाना, और नीमूके रसमे या कांजी में घोंटकर लघुपुट देना. ठंडा होनेपर फिर खरल करके और नीमूके रसमे या कांजीसे घोंटनेके वाद उसके $\frac{1}{20}$ (वीसवा हिस्सा) मनसील डालके फिर लघुपुट देना. इस तरह साठ लघुपुट देनेसे नागभस्म तय्यार होगी.[2]

(५) शुद्ध मनसील आंकके रसमे मिलाके उससे शुद्ध सीसेके पत्तोंको लेप करो. और लघुपुट देओ, इस तरह जव तक भस्म तय्यार हो जाय तव तक पुट देना चाहिए.[3]

(६) ओंगा, कौहा और पीपल के छाल की राख वनाके वह सीसेके समान लेना. लोहेके कढाईमे प्रथम सीसेका पानी वनाकर उसमे वह राख थोडी थोडी डालकर पलाशके डंडेसे घोंटना. सात दिनतक ऐसा करनेसे सीसेकी भस्म वन जाती है.[4]

(७) ओंगेके नये पत्ते या हल्दीका चूर्ण सीसेके पानीमे डालकर केवडेके डंडेसे खूव घोंटना. इससे सीसेका सिंदूरके समान रंगका चूर्ण

---

१ तांबूलीरससपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ।
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ॥

२ अश्वत्थचिंचात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशतः ।
क्षिपेन्नागं पचेत्पात्रे चालयेल्लोहचाटुना ।
यामाद्भस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्या मनःशिला ।
जम्बीरैरारनालैर्वा पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ।
स्वांगशीतं पुनः पिष्ट्वा विंशत्यंशशिलायुतम् ।
अम्लेनैव तु यामैकं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे ।
एवं षष्टिपुटैः पक्वो नागः स्यात्सुनिरुत्थितः ॥ रसरत्नसमुच्चय

३ शिलया रविदुग्धेन नागपत्राणि लेपयेत् ।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते तथा ॥ रसरत्नसमुच्चय

४ अपामार्गार्जुनाश्वत्थभस्माभिर्भर्जयेद् दृढम् ।
लोहपात्रे तु सप्ताहं तुल्यं भस्मानि चाशु च ।
दंडे पलाशके चैव म्रियते नाऽत्र संशयः ॥

बन जाता है. यह निरुत्थ नही है. निरुत्थ होनेके लिये ओंगाके पत्ते, मालकांगनीका पंचांग (पत्ते, फूल, फल, लकडी और जड़), नीमूका रस, हल्दीका काढा, क्षार और घीगुवार का रस इनमे प्रत्येक चौदा चौदा वार भावना देनी चाहिए.[1]

यह धातु भस्म बनानेमे बडी तकलीफ देती है. थोडीसी अधिक आंच दी जाय तो एकदम पिघलकर पूर्ववत् धातु बन जाती है और फिर शुरूसे भावना या पुट देना पडता है. इस लिए हरएक अग्निपुटके पहले, भावना देनेके समय जो कुछ कचरा रह गया हो उसे फेंक देना चाहिए. और सीसेका मल हो तो वह फिर उसमे मिलाकर अच्छी तरह घोंटना चाहिए, धीरे धीरे सीसेकी निरुत्थ भस्म बन जाएगी.

ग्रंथोक्त गुणाधर्मः—

(१) सतिक्तमधुरो नागो मृतो भवति भस्मसात् ।
आयुष्कीर्तिं वीर्यवृद्धिं करोति सेवनात्सदा ॥ र. र.
क्षयपवनविकारे गुल्मपाण्ड्वामयेषु ।
भ्रमकृमिफलशूले मेदकासामयेषु ॥
ग्रहणिगुदगदे वै नष्टवह्नौ प्रशस्तो ।
शुभविधिकृतनागः कामपुष्टिं ददाति ॥ र. चं.

(२) नागः समीरकफपित्तविकारहंता ।
सर्वप्रमेहघनराजिकृपीटयोनिः ॥
उष्णः सरोरजतरंजनकुष्ठगार्शो- ।
गुल्मग्रहण्यतिस्रुतिक्षणदांशुमाली ॥ बृ. यो. त.

(३) नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति ।
व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति ।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति ।
मृत्युं च नाशयाति संततसेवितः सः ॥ आ. प्र

(४) अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ।
प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत् ॥ यो. र.

(५) अशीतिर्वातजान्रोगान्धनुर्वातं विशेषतः ।
कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं श्वयथुं शीतिकाज्वरम् ।
ग्रहणीमामदोषं च वह्निमांद्यं सुदुर्जरम् ।
सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥ र र. स.

---

१ वृद्धवैद्याधार.

नागभस्म जबतब निरुत्थ न हो, तबतक उसका सेवन न किया जाय. अनिरुत्थ भस्म लेनेसे पेटशूल होनेका संभव है. अच्छी बनी हुई निरुत्थ नागभस्मका रंग लालसा काला या पीला रहता है.

"नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति।" यह गुणपाठ ग्रंथकारोंने दिया है. इसके माने सिर्फ यह है कि नागभस्मसे ताकद बढती है. नागभस्मके सेवनसे रसधातूसे लेकर शुक्र धातूतक सर्व धातू यथाक्रम बढ जाते है और उनकी पुष्टि होनेसे सर्व शरीर पुष्ट हो जाता है. धातुओंके जरिये इंद्रियोंको बल प्राप्त होता है और अग्नीका बल भी बढता है.

आमाशयका आकार बढ जानेसे अम्लपित्तका विकार होता है. सुबह पेटसे या गलेमे जलन होती है, प्यास लगती है और कै करानेकी इच्छा होती है. ये सब अम्लपित्तके लक्षण है. अंतःपरिमार्जनसे (पेटमे रबडकी नली या मलमलका कपडा छोडकर धोनेसे) यह विकार कम होता है. एक बार अंतःपरिमार्जन करके बाद नागभस्म दिया जाय तो तुरन्त फायदा होगा. नागभस्मसे आमाशयका आकुंचन होनेको मदद होती है. आमाशयका व्रण और उसके कारण जो अम्लपित्त पैदा होता है इन दोनों विकारोंमे नागभस्म अच्छा इलाज है. वहां भी रोग बहुत दिनका पुराना हुआ हो और रोगी अशक्त और दुबला पतला हो तो नागभस्म जरूर देनी चाहिए.

कोई समझते है कि अपचि या गंडमाला ये विकार केवल एक स्थानमेंसे पैदा होते है और वहांही रहते है. किंतु यह भूल है. जिन ग्रंथिओंका विकार होता है और सूजन होती है उनमे दोषदुष्टि तो है ही किंतु सर्व शरीरमें भी उन दोषोंका विकार रहता है. यह स्थानिक विकार नहीं है, प्राकृतिक है. इस विकारमे कभी कभी ऐसी अवस्था आती है कि शरीरके सब धातू सूख जाते है. चमडी सूख जाती है. और सर्व शरीर जैसी केवल हड्डी और चमडी रह गयी हो वैसा दिखता है. गंडमाला या अपचीमे ग्रंथिओंकी सूजन होती है और वे कठिण और चमडीसे ऊपर उठायी हुई दिखती है. इस अवस्थामे सबसे बढिया इलाज नागभस्म ही है. नागभस्म शुरू करनेके बाद थोडेही दिनोंमे ग्रंथिओंकी कठिणता कम होती है और दूसरे धातू धीरे धीरे बढते जाते है. जिन दोषोंसे यह विकार शुरू होता है उनपर नागभस्मका असर होता है.

प्राकृतिक वातविकारोंमे भी नागभस्मसे फायदा होता है. प्राकृतिक रोगोंका लक्षण यह है कि वे बहुत दिनोंतक शरीरको तकलीफ

देते हैं. कुछ दिन कम होते है और फिर बढ जाते है. कुछ प्राकृतिक विकार तो कभी कभी बिलकुल नष्ट हुवेसे दिखते है और थोडासा कुपथ्य होनेसे फिर बढ जाते है. दूसरे प्राकृतिक विकार कम अधिक प्रमाणमें सब दिन बने रहते हैं. पहले प्रकारके उदाहरण-जैसे उन्माद या अपस्मार. दूसरे प्रकारके-जैसे मधुमेह, गंडमाला, क्षयरोग इत्यादि. उनमेंसे दूसरे प्रकारके प्राकृतिक विकारोंसे नागभस्म देनेसे फायदा होता है. पहले प्रकारमे अभ्रकभस्म और दूसरेमे नागभस्म, ऐसा इन दोनों की चिकित्सामे फर्क है.

मधुमेहके विकारमें नागभस्मसे वहुत फायदा होता है. मधुमेहका विकार सर्व शरीर, दोष और धातुओंकी विकृतीसे उत्पन्न होता है. आयुर्वेदशास्त्रके मतसे मधुमेहमें तीन दोष, मेद, मांस, रक्त, शुक्र, अपृधातु, ओज, वसा, लसीका, मज्जा, रसधातु इत्यादि सर्व विकृत होते है और उनका, एकका दूसरेपर, असर होनेके कारण मधुमेह उत्पन्न होता है. शरीरमे सचेतन परमाणुओंकी उत्पत्तीमे विगाड होता है और इसी वजह रस धातूसे लेकर शुक्र और ओज धातू तक विकृति फैलती है. केवल एक इंद्रिय या रस धातू दुष्ट नही होता. सब धातू बिगड जाते है यह आयुर्वेदका कहना है.

इसी सिद्धांतके अनुरोधसे चिकित्सा करना हो तो अपना प्रथम कर्तव्य यह है कि त्रिदोष या परमाणुओंकी उत्पत्ती मे जो विकृति हो उसे नष्ट करें इस विकृतीको नष्ट करनेसे परमाणुओंसे बने हुवे धातुओंकी दुष्टि अपनेआप नष्ट होगी. त्रिदोषमे जो विकृति इस विकारमे पायी जाती है वह दो प्रकारकी होती है. एक अपृधातु-उत्पादक और दूसरी अपधातु-शोषक. मधुमेहमे प्रथम प्रकारकी दुष्टि रहती है. नागभस्मसे यह प्रथम प्रकारकी दुष्टि नष्ट होती है. नागभस्म शुरू करनेसे प्रथम यह फायदा होता है कि प्यास की तकलीफ कम होती है. दूसरा यह है कि मधुमेह विकारका प्रमुख लक्षण जो पेशावमे शक्कर निकलनेका है वह धीरे धीरे कम होता है. धातुओंकी ताकद वढनेके कारण यह कार्य होता है. इस समय रोगी केवल दुग्धाहार सेवन करे तो तुरन्त फायदा होगा. मधुमेहके उपद्रव विकारोंमे नागभस्मके साथ शिलाजीत देना चाहिए.

मधुमेहके रोगी दो प्रकारके होते है. एक स्थूल और दूसरे कृश. स्थूल शरीरके रोगिओंमे मेद धातूकी विकृति रहती है.शरीर बडा होनेपरभी उनमे ताकद कम रहती है. इस प्रकारके रोगिओंको नागभस्म देना

चाहिये. रोगी कृश हो और साथ साथ पेटमे जलन आदि पित्तलक्षण हो तो जसदभस्मसे फायदा होगा.

कोष्ठशूल (पेटशूल) मे भी नागभस्म देते है. यहभी विकार एक विशिष्ट प्रकारका होना चाहिए. इस प्रकारमें आंतोकी और दूसरे कोष्ठगत इन्द्रियोंकी ताकद कम होती है. वे अपना कार्य अच्छी तरह नही करते है और इस कमजोरीके कारण उनकी हालचाल कम होती हैं. इस कोष्ठशूलमे वातप्रधान या वातपित्तप्रधान विकृति रहती है. कै कभी कभी होती है किंतु सब मैला एकदम नही निकल आता. कै थोडी होने परभी तकलीफ अधिक होती हैं. रंग बनानेके कारखानेमे काम करने वाले मजदूरोंको कोष्ठशूलका विकार होता है. उसमे भी नागभस्मसे फायदा होता है.

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) से टट्टी खुली नही आती है. इसका एक प्रकार आंतोकी अशक्ततासे उत्पन्न होता है. दूसरे प्रकारोंमे कभी शुक्र धातु क्षीण होता है और कभी दूसरे धातू क्षीण होते हैं. इस दूसरे प्रकारमे टट्टी की इच्छाभी नही होती है. पहले प्रकारमे टट्टीकी इच्छा होती है किंतु आंतोकी अशक्तताके कारण मल बाहर नही निकल सकता. पहले प्रकारके बद्धकोष्ठमे नागभस्मसे फायदा होता हैं.

हड्डियोंके भीतर जो व्रण होता है, जिसको अस्थिगत व्रण कहते हैं, उसमेभी नागभस्म देते है. अस्थिधातूकी वृद्धीके लिए जिन द्रव्योंकी जरूरत हैं उनको आंतोंसे लेकर अस्थिधातूतक पहुंचानेका कार्य नागभस्म कर सकती है. यह द्रव्य पार्थिव या निरिन्द्रिय घटकोंसे बनता है.

दोषोंकी दुष्टि अस्थि और मज्जा धातुओंमे होगी तो हड्डी क्षीण और मुलायम हो जाती है. हड्डियोंपर बडे फोडे जैसी सूजन आती है. वह कठिन होती है और हड्डिओंसेही बनती हैं. हाथ पैरोंके सन्धि या जोडोंके पासके अस्थि बढ जाते है. कभी कभी शुरूसे या बादमे हड्डियोंमे तीव्र शूल रहता है. सन्धिओंमे भी शूल रहता हैं, बुखार, कै और बेचैनी आदि लक्षण भी होते है. यह विकार कभी कभी गर्भिणीको और कभी कभी प्रसूतीके बादभी बहुत सताता है. आयुर्वेदके सिद्धांतसे यह अस्थिमज्जागत वातप्रकोप हैं. इसीसे वे लक्षण होते हैं. इसमेभी नागभस्मने अच्छा काम किया है. आमला, गोखरू और मिश्रीके चूर्णके साथ नागभस्म देनेसे तुरन्त फायदा होगा.

अशक्तताके कारण उत्पन्न हुआ बद्धकोष्ठ और उसके बाद उत्पन्न हुवी बवासीर इन दोनोंमे नागभस्म देते है. इस प्रकारके बवा-

सीरमे गुदा के किनारेपर सूजन आती है और अंदरका भाग बाहर निकल आता है (गुदभ्रंश). यह भाग प्रयत्न करनेपरभी अंदर नहीं जा सकता. बवासीरके मस्से बिलकुल मुलायम रहते है. उनमे कुछ भी खूनका जोर नही रहता. टट्टी फिरनेके समय जोर करनेकी ताकद नहीं रहती है. कृत्रिम उपायसे टट्टी कराना पडता है. इस प्रकारकी अशक्ततामे नागभस्म देनी चाहिये. शुक्रपात अधिक करनेसे भी इस तरह की अशक्तता आती है. बद्धकोष्ठ होता है. इस प्रकारमे नागभस्मकी अपेक्षा वंगभस्मसे अधिक फायदा पाया जाता है.

पित्तज गुल्म या रक्तगुल्म मे ताकद वढानेके लिये नागभस्म देते है. पित्तगुल्मके आरंभसेही नागभस्म दी जाय तो उसका बढना बंद होता है और आकार वहही कायम रहता है. रक्तगुल्मकी प्रथम अवस्थामें कुछ भी चिकित्सा न करमी चाहिए. रक्तगुल्म पुराना होनेपर उसकी चिकित्सा सफल होती है. (रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ।)

ग्रहणी और अतिसार इन दोनो विकारोंमे रोगको हटानेके लिये शरीरको ताकद नहीं रहती है. इसी वजह रोग बहुत दिनोंतक कायम रहता है, और शरीर अधिक क्षीण होता है. इस विकारमे ज्वर न हो तो नागभस्म देनी चाहिये.

नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म ये चारों 'जीवनीय' मानी जाती है. 'जीवनीय' के माने यह है कि जो जीवनको उपकारक (मददगार) हो. सच कहे तो अन्न (पोषक अन्न) जीवनीय है, किंतु जबतक हज्म न हो तबतक वह जीवनीय नहीं है. अन्नमे जो भूतांश रहते है उनका पचन करके वे शरीरमे खींचे जाते है. ऊपर लिखी हुई चार भस्में इस तरह कार्य करतीं है कि शरीरके परमाणुओंको ताकद पहुंचाकर उनसे अन्नांश खींच लेनेका कार्य करातीं है. इस गुणके कारण उनको 'जीवनीय' कहते है. नागभस्म स्नायु, मांस और पेशिओंको ताकद देती है और इसलिए उसको 'जीवनीय' कहना चाहिए. स्नायु, मांस और पेशिओंकी ताकद नष्ट हो तो नागभस्मसे जरूर फायदा होगा.

नागभस्ममे वृष्यत्व (नपुंसकत्वनाशक) गुण है. किंतु जन्मसे नपुंसकत्व हो तो उसमे नागभस्मसे कुछ फायदा नहीं होगा. मधुमेहके विकारमे अशक्तता पायी जाती है और उस अशक्तताके कारण कभी कभी नपुंसकत्व प्राप्त होता है. इस प्रकारके नपुंसकत्वमे नागभस्मसे फायदा होगा. अंडकोश के ग्रंथिओंकी अशक्ततासे नपुंसकत्व प्राप्त

हुआ हो तो नागभस्मके साथ सिलाजीत, सुवर्णभस्म इत्यादि दवाइयां देनी चाहिए. पुष्पधन्वा नामक रसमे नागभस्मके साथ दूसरी दवाइयां रहती है. यह भी नपुंसकत्व नाशक है.

वातवाहिनीओंकी क्षीणता, मानसिक क्षीणता इत्यादि विकारोंमे पांडुरोगका उपद्रव हो तो वह अभ्रकभस्मके सेवनसे शांत होगा. रक्तस्राव या मासिकस्राव अधिक होनेसे या मृद्भक्षण या कृमिरोग (कीडे) के कारण पांडुरोग उत्पन्न हुआ हो तो लोहभस्मसे वह नष्ट होगा. किंतु परमाणु बनानेकी क्रिया या धातुपरिपोषणक्रिया कम हुई हो, सर्व इंद्रियोंमे अशक्तता हो या हृदयकी अशक्तता हो. इनमे पाण्डुरोगका उपद्रव होनेपर नागभस्मसेही फायदा होगा. अभ्रकभस्म या लोहभस्म के साथ मिलाकर नागभस्म दे सकते हैं.

पुराने पक्षाघात (लकवा) के विकारमे, विशेषतः शाखाश्रित (हाथपैरोंमे) सिरा, स्नायु, कण्डरा इनकी अशक्तता हो और हाथपैरोंमे विशेपतः अंगुलियोंमे कुछ पकडनेकी या उठानेकी ताकद न हो तो नागभस्म देनी चाहिये.

मधुमेह, दूसरे प्रकारके मेह या अशक्तता पैदा करनेवाले दूसरे व्याधी, इनमे आखिरकी अवस्थामे चक्कर का आना और मस्तिष्कमे विचारोंकी गडवड होना. रोगी विचार नहीं कर सकता. विचार करने लगेगा तो बीचमे एकदम विचार बंद होते हैं, सुन्नसा मालूम होता है. ज्ञानेन्द्रियोंकी क्षीणतासे या मस्तिष्कको खून पूरे प्रमाणमे न मिलनेसे ये लक्षण होते हैं. केवल विचार करनेमे गडवड होती है इतनाही नहीं किंतु कई रोगिओंमे अनैच्छिक कर्म करनेमें भी गडवड होती है. जैसे पेशाव भरा हुवा हो तब भी पेशाव करनेकी इच्छा नहीं होती है. घंटोंतक वह दुःखसे हैराण रहता है फिर भी पेशाव करनेका ख्याल नहीं रहता. पेशावकी रुकावटसे तकलीफ होती है तब भी वह दीवानेके माफिक पेशाव करनेका ख्याल नहीं रखता. इस प्रकारके विभ्रममे नागभस्मसे इतना फायदा होता है कि एकही खुराखमे रोगीका अपने इंद्रियोंपर ताबा रहता है.

मधुमेहकी आखीरी अवस्थामे संन्यास (Coma) का उपद्रव होता है. इसमेभी कभी कभी नागभस्मसे फायदा होता है. याने दूसरी दवाइओंकी अपेक्षा नागभस्म अधिक उपकारक है.

हृदयकी अशक्ततासे या फेंफडोंकी अशक्ततासे एक प्रकारकी खांसी आती है. इसमे वडी तकलीफ होती है और खांसी करते वक्त

आवाज भी जोरसे नहीं निकलता. कफ भी नहीं आता है. खांसी दिनरात चली रहती है. इसमे नागभस्म देनेसे आराम होगा.

मांसार्बुदके (Cancer) विकारमे नागभस्मके सेवनका प्रयोग देखना चाहिए. विशेषतः वातप्रधान रोग हो शूल अधिक हो तो नागभस्मसे कुछ फायदा होगा.

नागभस्मके गुणधर्म—

दोष—वातदोष, विशेषतः व्यानवायु.

दूष्य—रसधातूसे शुक्र धातू तक.

स्थान—सहस्रार, संज्ञावाहिनी, आज्ञावाहिनी, स्नायु, आमाशय, अंतःस्रावक पिंड.

नागभस्मके सेवनसे कभी कभी कोष्ठशूल पैदा होता है.

८. प्रवालभस्म (मूंगा की भस्म).

प्रमाण ½ से २ रत्ती.

कंदूरीके पके हुवे फलके समान (पके बिंबके समान) रक्त, गोल, लंबे, तेलिया रंगके, जिनमे कीडे न हुए हो, इस तरहके प्रवालके कंडे (टुकडे) भस्मके लिए अच्छे होते है.[1]

प्रवाल की शुद्धि—

१ क्षारवर्गसे प्रवाल की शुद्धि होती है.[2]

२ चमेलीके पत्तोंके रसमे दोलायंत्रसे एक प्रहर उबलानेसे मूंगा शुद्ध होता है.[3]

३ नींबूके रसमे एक प्रहर रखनेसे मूंगा शुद्ध होता है.[4]

नींबूका रस या छांछ छानके लेना चाहिये. नींबूका रस अधिक खट्टा हो तो उसमे पानी मिलाके फिर मूंगा रखना चाहिये. नींबूके रससे या छांछमे मूंगा डालनेसे प्रथम उसमेसे थोडासा हवाके माफिक आवाज निकलता है. कभी कभी यह आवाज जोरसे आने लगता है और चूनेके माफिक मूंगा पानीमे पिघल जाता है. यह न होना चाहिए.

---

१. पक्वबिंबीफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ र. र. स

२ विद्रुमं क्षारवर्गेण (शुध्यते ।)। र र. स.

३ स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे जयंत्या स्वरसेन च । मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् । शार्ङ्गधर

४. वृद्धवैद्याधार.

नीम्बूके रसका प्रमाण कम अधिक होनेसे मूंगा का रंग गुलाबी या फीका होता है.

भस्म वनानेकी रीतः—

१ लकुचफल (वढारफल) के रसमे मनसील, हरिताल और गंधक मिलाके खरल करो और उनमे शुद्ध मूंगा डालके पुट दो. आठ पुटके वाद प्रवालभस्म वन जाएगी.[1]

२ घीगुवारका रस, चौलाईका रस और स्त्रीका दूध, इनमे तपा हुवा मूंगा सात वार (प्रत्येकमे) भिगोनेसे प्रवालभस्म तय्यार होगी.[2]

३ कुल्थीके काढेमे, या तिलीके तेलमे, या छांछमे या गोमूत्रमे खरल करके अग्नी देनेसे प्रवालभस्म वन जाती है.[3]

४ मिट्टीके कटोरेमे घीगुवारका रस डाल दो, उसके ऊपर शुद्ध मूंगा डालकर फिर घीगुवारका रस और गूदा डाल दो. दूसरे कटोरेसे वंद करके मिट्टीसे लिपटे हुए कपडेसे लपेटकर थोडीसी आंच दो. ठंडा होनेपर निकालो. मूंगा सफेद होगा. फिर गुलाव पानीमे खरल करो. इस रीतसे अग्निपुटी प्रवालभस्म वन जाएगी.[4]

५ शुद्ध प्रवालका चूर्ण वनाकर कपडेसे छान लो. फिर गुलाव पानीमे इक्कीस दिन तक खरल करो और रातको चाँदके किरणसे सुखाओ. इससे गुलावी रंगका प्रवालभस्म तय्यार होगी.[5] इसीको चंद्रपुटी प्रवालभस्म कहते है.[6]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

१. क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादि शमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत् ॥ र. र. स.

२. प्रवालं मधुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत् ।
वीर्यकान्तिकरं स्त्रीणां धृते मंगलदायकम् ॥
क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगजित् ॥ आ. प्र.

३. पित्तास्रघ्नं श्वासकासादि रोगान्हन्याद्देवं दुर्निवारं विषंच ।
भूतोन्मादान्नेत्ररोगान्निहन्यात्सद्य कुर्याद्दीपनं पाचनंच ॥ र. प्र. सु.

---

१. लकुचद्रावसपिष्टै शिलागंधकतालकैः । वज्रं विनाऽन्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटै खलु । र. र. स.

२. कुमार्यास्तंडुलीयेन स्तन्येनच निषेचयेत् । प्रत्येकं सप्तवेलंच तप्ततप्तानि कृत्स्नशः । मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषत । क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशय ॥ शा. स.

३. उक्त माक्षिकवन्मुक्ता प्रवालानिच मारयेत् । शा. स.

४ और ५. वृद्धवैद्याधार.

६ इस रीतसे वनाये हुवे प्रवालभस्मके गुणधर्म इस ग्रंथमे लिखे है.

प्रवालभस्म, कपर्दिक भस्म, शंखभस्म ये सब चूनेके कल्प है. प्रवाल की भस्म अग्निसंस्कारसे बनाते है. अग्निसंस्कार न करनेपर कुछ प्रकारसे प्रवालभस्म बनायी जाती है. (जैसे-प्र. ५) यह भस्म जितनी सूक्ष्म और वारितर (पानीमे डालनेपर न डूबती है) हो उतनी कार्यकारी होगी. भस्म वारितर होनेसे उसके परमाणु अलग होते है और शरीरमे शीघ्र फैलते है. यह भस्म बनानेमें कभी कभी गल्तियां होती है और भस्मसे रोगीको कुछभी आराम नहीं मिलता. चूनेका कल्प होनेपर भी वह गुणमे सौम्य और शीतवीर्य (ठंडा) है. अग्निपुटी प्रवालभस्मसे चन्द्रपुटी प्रवालभस्मकी अपेक्षा सौम्यत्व गुण कम है किंतु दीपनादि गुण अधिक होते है. यहां जो गुण बतलाये है वे अनग्निकृत (चन्द्रपुटी) प्रवालभस्मके हैं. आगे अग्निकृत प्रवालभस्मके कुछ गुण लिखेंगे.

प्रवालभस्म-मधुर, साम्ल और दीपन है. मधुरके माने यह नही है के वह स्वादमे मीठा लगेगा. उसके आखीरी परिणाम मधुर रसके समान शामक, बृंहण, प्रसादन इत्यादि होंगे. इसी वजह प्रवालभस्मको माधुर्योत्पादक कह सकते है. इन (शामक, शीतवीर्य और प्रसादन) गुणोंके कारण अनेक विकारोंमे अच्छीतरह लाभ उठा सकते है. अच्छे प्रवालभस्मका रंग फीका गुलाबी होता है.

ज्वरकी प्रथम अवस्थामे (आमावस्थामे) लंघन करना चाहिए. लंघनके बाद ज्वर का पचन करनेके लिए प्रवालभस्मका सेवन करें. " ज्वरादिपाचन कषाय " की अपेक्षा प्रवालभस्म देनेसे लाभ होगा बुखारका दौरा अधिक हो तो प्रवालभस्मसे फायदा होगा. ज्वर मे पित्तप्रधान लक्षण हो-जैसे जलन, प्यास, कै, बडबडना, चक्करका आना, निद्रानाश, सिरमे दर्द इत्यादि-तो उसमे प्रवालभस्मके गुण अच्छी तरह पाये जाएंगे. प्रवालभस्मके साथ गिलोयका सत्व देते है. दूसरे संसर्गी ज्वरोमे या विषमादि ज्वरोंमेभी पित्तके लक्षण अधिक हो, ज्वर का जोर अधिक हो, बुखार १०३°-१०६° तक हो तो प्रवालभस्मका जरूर उपयोग करना चाहिए. अधिक बुखारमे त्रिभुवनकीर्ति के समान तीव्र और पसीना उत्पन्न करनेवाली दवाइयां न देनी चाहिए. देना हो तो सोचमोचके और बिल्कुल कम प्रमाणमे देना या उनके साथ प्रवालभस्म मिलाके देना. पित्तप्रधान सन्निपात ज्वरमे सन्निपातकी दवाइयां तो जरूर है फिर भी पित्त दोष कम करनेके लिए और बुखार भी कम रखनेके लिए प्रवालभस्म देनी चाहिए.

चेचक (माता), छोटी चेचक इत्यादि बीमारिओंमे या जंतुजन्य दूषित ज्वर या आगंतुक ज्वरमे सारे शरीरमे जलन हो या बुखारका जोर अधिक हो तो प्रवालभस्मका जरूर उपयोग करे. सेन्द्रिय विषार शरीरमे फैलनेसे जो तीव्र ज्वर आता है उसमें भीं प्रवालभस्म दें. इससे विषारका तीव्रत्व नष्ट होगा और ज्वरभी कम होगा. सारांश यह है कि पित्तदोषप्रधान ज्वरमें प्रवालभस्म देनी चाहिए.

क्षय (तपेदिक) के तीनो अवस्थाओंमे प्रवालभस्मका उपयोग कर सकते है. क्षयरोगका प्रारंभ इतना धीरेसे होता है कि उसका निदान प्रथम अवस्थामे करना मुष्किल होता है. विशेषतः सर्व शरीरमें जलन और सूखी खांसी प्रथमसेही रहती है. इस अवस्थामे क्षयरोगका अंदेशा रखके प्रथमसेही प्रवालभस्म दे तो आगेका सर्व भयानक दृश्य नष्ट होगा. किंतु इस अवस्थाका ख्याल शायद ही होता है. जबसे ज्वर कायम रहने लगता है, खांसी बढ़ती जाती है और रोगीका वजन घटने लगता है तब क्षयरोगका निदान निश्चित होता है. इस अवस्थामें भी बुखार अधिक हो, प्यास लगती हो, सूखी खांसी और खांसते वख्त फेंफडोंमे रोगके फैलावके लक्षण हो, कासश्वासादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म देनेसे फायदा होगा. प्रवालभस्मके साथ मृगशृंगभस्म और गिलोयका सत्व देना चाहिये. क्षयरोगकी तीसरी अवस्थामें भी यह मिश्रण दे सकते है. ज्वरका अधिक होना, खांसीकी तकलीफ भी अधिक होना, फेंफडोंमे जख्म होनेसे बलगममे खूनका निकलना, नही तो बलगम पीला या हरे रंगका और उसमे बदबू होना, सर्व शरीरपर-विशेषतः-माथेपर-पसीना आना, पसीना सुबह अधिक आना, बेचैनी और प्यास, रोगीका शरीर कृश और मूंह फीका, इन लक्षणोंमेंभी प्रवालभस्म गिलोयके सत्व के साथ देते है. कभी कभी प्रवालभस्मके साथ सुवर्णभस्मभी देनी पडती है. किंतु यह ख्याल सदैव रखना चाहिए कि क्षयरोगकी तीसरी अवस्थामे कोईभी इलाज रामबाण नही कह सकते है.

रक्तपित्त नामके विकारमेंभी प्रवालभस्मका बहुत उपयोग होता है. इस विकारमें प्रथम पित्तका प्रकोप होता है और पित्तदोषका विदाह होनेपर रक्तका विदाह होता है. क्योंकि पित्तका आश्रय रक्त है. (पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदह्यादाशु शोणितम्।) रक्तका विदाह होनेपर रक्तमे पित्तके तीक्ष्णौष्ण्यादि गुण बढते है याने रक्त दुष्ट होता है. रक्तकी नलियां भी दुष्ट होती हैं, पतली होती है और उनमेसे रक्त बाहर निकल आता है. इसी वजह मुँहसे, नाकसे, गुदमार्गसे, योनिमार्गसे

और चमडीपर जो छोटे छोटे छिद्र होते है उनमेसेभी खून निकलने लगता है. वह चाहे दिनरात निकलता हो या कभी कभी निकलता हो. इसके साथ साथ भिन्नभिन्न आदमिओंके भिन्न भिन्न प्रकृति और दोषके अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण पाये जाते है. उनमे लक्षणोंके अनुसार भिन्न-भिन्न चिकित्साभी करनी पडती है. किंतु इन सब लक्षणोंका मूल कारण जो विदग्ध पित्त वह प्रवालभस्मसेही ठीक होगा. पित्तके तीक्ष्णोष्णादि दूसरे गुण भी कम होते है, पित्तका साम्य प्रस्थापित होता है और रक्तका भी प्रसादन होता है. इस विकारमे प्रवालभस्म अकेली दे सकते है या प्रवालभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म और हल्दीका चूर्ण समभाग मिश्र करके दे सकते है. हल्दीका कार्य स्तंभक है इसलिये वह रक्तपित्तके आरंभमे न देनी चाहिये. दूसरे विकारोंमे संकर या उपद्रव रक्तपित्तका हो (ऐसा संकर या उपद्रव आंत्रिक संन्निपातमे हो सकता है) तो प्रवालभस्म अच्छा काम देगी.

रक्तपित्तका एक प्राकृतिक भेद भी रहता है. जन्मसेही किसीकी प्रकृति ऐसी रहती है कि कुछ भी चोट लगे या जख्म हो या गर्मीके दिनोंमे नाकसे खून निकलता हो,तो वह स्राव वहुत देर तक चालू रहता है. मामूली चोटके कारण खून निकले तो साधारण आदमीमे अधिकसे अधिक दो मिनिट तक खून निकलेगा, उसके बाद वह गाढा बन जाएगा और जख्म जुड जाएगी. किंतु इस प्रकृतीके आदमीका रक्त गाढा होताही नही. इसलिये छोटीसी भी चोट लगे तो रक्तस्रावके मारे वह हैराण हो जाता है. यह विकार स्त्रियोमें बहुत कम प्रमाणमे रहता है. क्योंकि इन रोगिओंको हर महिनेमे मासिक स्राव के वख्त इतना खून निकलेगा के करीब करीब प्राणान्तिक अवस्था होगी. हमारा अंदाज है के इस विकारमें प्रवालभस्म देनेसे कुछ लाभ होगा. प्रवाल-भस्मके साथ सुवर्णमाक्षिकभस्म देनेसेही अधिक फायदा होगा.

कभी कभी किसीको नाकमेसे खून निकलनेकी आदत पडती है. कभी कभी केवल गर्मीके दिनोंमे यह खून निकलता है. स्त्रियोंमे कभी कभी मासिक स्रावके साथ नाकमेसे खून निकलता है. कभी कभी गर्भवती स्त्रियोंमे भी नाकमेसे खून निकलने लगता है. सब प्रकारोंमे प्रवालभस्मका सेवन अमृतके समान है. वहुत काल तक प्रवाल लेनेसे यह आदत भी नष्ट हो जाती है.

रक्तपित्तकी तीव्र अवस्थामे प्रवालभस्म अधिक प्रमाणमे और दिनमे अधिक बार देनी चाहिये. किंतु पुराने विकारमे या जन्मसेही वह विकार हो तो कम प्रमाण देना चाहिए. सूक्ष्म प्रमाणमें दे तो वहुत

फायदा होगा. इसका अनुपानभी भिन्नभिन्न लक्षणोंके अनुसार अलग अलग होगा.

कासके-खांसीके-विकारमें भी प्रवालभस्म देते है. इस प्रकारके खांसीमे पित्तदोषकी विकृति रहती है. छातीमे जलन, ज्वर, मुँह सूखना, मुँहमे कडवापन, प्यास (वह इतनी होती है के प्यास के मारे जी हैरान होता है), कै पीले रंगकी होती और उससे गलेमे जलन पैदा होती है, खांसते खांसते कै हो जाती है. मुँहपर और सारे शरीरपर फीकापन जान पडता है, हाथपैरोंमे इतनी जलन होती हैं कि रोगीको कुछ सूझता नहीं, जैसे हाथ पैरोंपद लाल मिर्चे लगायी है. सर्व शरीरकी चमडी सूख जाती है. इस तरहके कास मे मीठे अनारके रस के साथ या अनारके मुरब्बेके साथ या मिश्रीके पाकमे प्रवालभस्म देनी चाहिये.

अधिजिव्ह, उपजिव्ह और गलशुण्डिका इन रोगोंमे गलेमे जलन होती है, सूखी खांसी आती है. खांसीसे बडी तकलीफ होती हैं और खांसते खांसते कै हो जाती हैं. कै करते वख्त मुँह मे जलन होता हैं. इस प्रकारमें भी प्रवालभस्म देनी चाहिये.

छोटे वच्चों की कुकर खांसीमेभी प्रवालभस्म देते है. इसम खांसीका जोर वहुत होता है इतना कि नाकमेंसे, मुहँमेसे और कान-मेसे खून निकलने लगता है. मुँह विलकुल लाल हो जाता है और मुहँपर सूजन आती है. इन लक्षणोंमे प्रवालभस्मसे वहुत लाभ होगा. प्रवाल-भस्मके सेवनसे गला और सप्तपथ (Pharynx) इनकी सूजन कम होती है.

'फेंफडोंमे जख्म हो और उससे खांसी आती हो तो वह प्रवाल-भस्मके सेवनसे कम होगी. इसमे सूखी खांसी, जलन, कफमे खून गिरना ये लक्षण होते है. जख्मभी धीरे धीरे भर आती है. कभी कभी प्रवालभस्म के साथ ' लाक्षा ' (लाख) देनी पडती है तो कभी कभी केवल प्रवालभस्मसे ही कार्य होता हैं.

गार्भिणी स्त्रीके खांसीमे और खांसीके साथ होनेवाली वांती (कै) मे प्रवालभस्म एक अच्छा इलाज है. गर्भ जव वढता जाता है तव उसकी हड्डिया वननेके लिये चूनेके कल्पोंकी जरूरत पडती है. ये माताके अन्नसे ही मिल सकते है. माता इस तरहका आहार न ले तो उसको खुदकी हड्डियोसे वे चूनेके कल्प निकालके गर्भकी हड्डियां वनाना पडता है. फल यह होगा कि माताके अवयगों मे कमताई होगी. विशे-षतः रक्त, पचनेंद्रिय और हड्डियां इन पर यह असर होता है. फीकापन, हाथपैरोंमे दर्द, पैरोंपर सूजन और पीडा, थोडा भी आहार पचन न

होना, पेटका फूलना, कै, इत्यादि लक्षण होते है. इस अवस्थामें प्रवाल-भस्मसे फायदा होता है. कई स्त्रियोंके बच्चे जन्मसेही दुबले पतले होते है. उनकी चमडी सूख जाती है और इसी बीमारीसे मर जाते है. ऐसी स्त्रियोंको गर्भके शुरूसेही प्रवालभस्म दें तो तगडे बच्चे पैदा होंगे. क्योंकि उनकी हड्डियां और दूसरे अवयवोंका बढना अच्छी तरह न होनेसेही इस विकारका प्रारंभ होता है. हड्डीयां, रक्त और मांस बढनेको प्रवालभस्मसे मदद होती है. और गर्भ बढता जाता है. गर्भपाल रस का कार्य इस कार्यसे भिन्न है.

अग्निपुटी प्रवालभस्म या चन्द्रपुटी प्रवालभस्म खट्टे नीम्बूके रस के साथ सेवन करनेसे आहार का पचन होता है. अग्निमांद्य या अग्नि-साद, अरोचक (मुँह मे स्वाद नही रहना) ये विकार दो प्रकारके होते है. किसीमे कफदुष्टि होती है तो किसीमे पित्तदुष्टि होती है. पित्तदुष्टि हो तो प्रवालभस्म, कामदुधा, और प्रवाल पंचामृत देना चाहिए. कफ-दुष्टि हो तो अग्निकुमार, हिंग्वादि चूर्ण इत्यादि औषधोंसे फायदा होगा. मुँहका स्वाद कडवा हो, मुँहमे बदबू हो या गलेमे जलन हो तो इस विकारमे प्रवालभस्म देनी चाहिए. इससे पाचक पित्त योग्य प्रमाणमे बहता है, और पचनक्रिया बढनेसे अग्निमांद्य हट जाता है.

अग्निमांद्यकी चिकित्सा न करे तो उससे रसाजीर्ण का विकार उत्पन्न होता है. इस विकारमें भोजनके समय सिर्फ अन्न देखतेही मुँहमे पानी आता है और भोजनकी इच्छा नष्ट होती है. कभी कभी तो अन्नके खुशबूसेही पानी आने लगता है और रोगी भोजन नही चहाता. कोई कोई तो केवल अन्नका नाम सुन कर दुःखित होते है. रोने लगते है. इतना अन्नका द्वेष (अन्नद्वेष) रहता है. हरवक्त बेचैनी रहती है और पेटमे भारीपन रहता है. इन लक्षणोंमे अग्निपुटी प्रवालसे फायदा होगा.

रसक्षय या अनुलोम क्षय नामके विकारमे अनग्निकृत प्रवाल-भस्मका अधिक उपयोग होता है. इससे रसादि धातुओंमे जो अग्नि (धात्वग्नि) रहते है वे बढ जाते है और सब धातुओंकी उत्पत्ति अच्छी तरह होती है.

प्रवालभस्म—विशेषतः अग्निपुटकी प्रवालभस्म—एक अच्छा 'दीपन' औषध है. इससे पेटमे पाचक रस का कार्य व्यवस्थित हो जाता है. पित्तदुष्टिसे ' अग्निसाद ' (पाचक अग्नीकी अशक्तता) का विकार हो तो उसमे प्रवालभस्मसे काम होगा. पित्तकी दुष्टी कम करनेके

कारण उसका साम्य प्रस्थापित होता है और उसकी पाचक शक्ति भी बढ जाती है. इस प्रकार यह दीपन कार्य होता है.

पित्ताभिष्यंद यह एक नेत्रविकार है. इसमे आँखें सुर्ख हो जाती है, उनमे जलन होती है, दर्द और सूजन भी रहती है और पीडाके मारे दिनरात नींद नही मिलती. इसमे प्रवालभस्मका उपयोग होना है. प्रवालभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म इनका मिश्रण मिश्री और घीके साथ या दूधके साथ पीनेको देना चाहिए.

आंखोंमे जलन, हाथ पैरोंमे जलन, पेशावका जलन (जो पूयप्रमेह या पूयशुक्रके कारण न हो), पेशावका रंग लाल या गहरा, सर्व शरीरमे विशेषतः चमडीमे जलन इत्यादि लक्षण गर्मीके दिनोंमे उत्पन्न हो या गरम पदार्थ खानेसे उत्पन्न हो या रातको नींद न लेने से पैदा हो तो इनमे प्रवालभस्म देनी चाहिए. इस अवस्थामे 'मौक्तिकभस्म' से भी फायदा होता है किन्तु वे वढ जाने पर जलन अधिक हो तो उसका उपयोग करना चाहिए.

पित्तोन्माद या भूतोन्माद मेभी प्रवालभस्म का उपयोग होता है. उन्मादमे प्रथम मन विकृत होकर पश्चात् शरीरको विकृत करता है या प्रथम शरीरमे कुछ व्याधी उत्पन्न होकर उसका असर मनोदेशपर होनेसे मनभी विकृत होता है, और मन मे दोष पैदा होनेसे उन्मादका विकार होता है. दूसरे प्रकारका उन्माद गर, तीव्र मद्य, गांजा, भांग इत्यादि पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न होता है. प्रथम प्रकारमे मानसिक दुष्टीसे जो उन्माद होता है वह मानसिक चिन्ता, दुःख, भय, शोक इत्यादिके कारण उत्पन्न होता है. दूसरे प्रकारके उन्मादमे प्रवालभस्मसे फायदा होगा, क्योंकि तीव्र मद्यार्क या दूसरे तीव्र विषारोंके सेवनसे शरीरमे पित्तदुष्टि होती है. और पित्तदुष्टीके लिये प्रवालभस्म यहही एक अकसीर इलाज है.

पेटमे सेन्द्रिय विषार (गर) जानेसे, उसमे पित्तदुष्टी होती है और उन्माद होता है. इससे रोगी हैराण हो जाता है, बिलकुल पागल बन जाता है. इस प्रकारके उन्मादको कोष्ठस्थ सेन्द्रिय विषार (गर) कारण हो तो आरोग्यवर्धिनी, चन्द्रप्रभा, शिलाजतु इन औषधोंके साथ प्रवालभस्म देनी चाहिए.

भूतोन्मादमें भी पित्तका अनुषंग हो तो प्रवालभस्म देनी चाहिए. जिन स्त्रियोंका स्वभाव तामसी होता है. थोडे कारणसेभी जो क्रुद्ध होती है, उनको प्रवालभस्म देना योग्य है. उन्मादके दौरेके साथ नाक-

मेसे खून गिरना, मुँह लाल होना, नसो का फूलना इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्मसे आराम मिलेगा.

वच्चोंको मृद्वस्थि (Rickets) नामका रोग होता है. इसमेभी प्रवालभस्मसे फायदा होता है. बिलकुल छोटे (तीन चार महिने उम्रके) वच्चेसे लेकर बडे (१०-१२ साल उम्रके) लडकों तक यह दे सकते है. इसमे रोगीका (बच्चेका) शरीर सूख जाता है, हथपैरोंकी हड्डिया मात्र चमडीसे लपेटी रहती है, पेट बडा और फूलाहुवा रहता है, चमडी सूख जाती है. हाथपैरोंकी विशेषतः पैरोंकी हड्डिया नरम हो जानेके कारण टेढी होती है. टट्टी वार वार और थोडी थोडी आती है. थोडासा बुखारभी आता है. इन लक्षणोंमे रोगीको प्रवालभस्म और गिलोयका सत्व मिलाके देना चाहिए. इसीमे खांसी अधिक हो तो मृगशृंगभस्म लाभदायक होगी, प्रवालभस्म यह एक चूनेका सेंद्रिय कल्प होनेसे मृद्वस्थी मे उसका असर होता है क्योंकि मृद्वस्थीके विकारमे चूनेके सेन्द्रिय कल्पोंकी कमताई रहती है. और ये चूनेके कल्प प्रवालभस्म सव इन्द्रियोंको पहुँचाती है, जिससे हड्डियां फिर सख्त और कठिण हो जाती है, मृद्वस्थीमे शुरूसे आखीरी अवस्था तक प्रवालभस्म गुणकारी है.

' पारिगर्भिक विकारमे 'भी प्रवालभस्म देते है. (माताके पेटमे गर्भ हो, और वह अपने प्रथम बच्चेको पिलाती हो तो वह बच्चा दूध हज्म नही कर सकता. इस विकारको पारिगर्भिक कहते है.) इसमे बच्चा बिलकुल सूख जाता है. उसको कै और दस्त होते है. थोडा बुखारभी रहता और वह दिनरात रोता है. इस अवस्थामे प्रवालभस्म देनी चाहिये. (अपचन और अतिसार हो तो सर्वांगसुंदर देना चाहिये.)

वच्चोंके दंतोद्भव विकारमेंभी प्रवालभस्म गुण देगी. बच्चेको दांत निकलनेके दिनोंमे यह तकलीफ होती है. विशेषतः यह बीमारी वहुत दिनोंसे चली आयी हो, बुखार, कै और पीले रंगके खराब दस्त आते हो तो प्रवालभस्म जरूर देनी चाहिए. जिन बच्चोंको प्रत्येक दांत निकलनेके समय तकलीफ होती है उनको दांत निकलनेके पहिलेही प्रवालभस्म शुरू करनी चाहिए. (दंतोद्भव विकारमे वातवृद्धीके लक्षण हो और दस्त हरे रंगके शाकके पानी जैसे हो तो कनकसुंदर देना चाहिए.)

जब बच्चा मा का दूध पीता है तब कभी कभी माताको भी कुछ विकार होते है. सर्व शरीरका फीकापन, अशक्तता, हाथपैरोंके जोडोंमे और दूसरी हड्डियोंके जोडोंमे पीडा इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म

देनी चाहिए. कभी कभी सब बच्चे दुबले पतले पैदा होते है और जन्मके बाद मृद्वस्थि विकारसे मर जाते है. इस हालतमे माताको अगर प्रवालभस्म खिलाये तो आगेके बच्चे जरूर बच जाएंगे.

प्रवालभस्मका प्रमुख गुण यह है कि पित्तदोषकी दुष्टि हो तो उसका साम्य प्रस्थापित करें. इसलिए जिन विकारोंमे पित्तके तीक्ष्णत्व, ऊष्णत्व इत्यादि गुण बढ गये हो उन विकारोंमे प्रवालभस्म अधिक गुणकारक होता है. पित्त बढनेसे सिरमें दर्द हो तो इसमे कै और गलेमे जलन इत्यादि पित्तके लक्षण पाये जाते है. इसमे प्रवाल-भस्म अच्छा कार्य करेगी. पित्तज अम्लपित्तमेंभी बहुत कडवी पीले रंगकी कै होती है, जलन होती है, चक्कर, गुंगी, सिरमे दर्द इत्यादि पित्तके लक्षण होते है. इसमेभी प्रवालभस्म देनी चाहिए. प्रवाल-भस्मके सेवनसे पित्तकी तीव्रता और अम्लता कम होती है, माधुर्य उत्पन्न होता है और इसीसे जलन आदि लक्षण कम होते है. काम-दुघाका भी यह कार्य है किंतु कामदुघाका स्तंभक कार्य होता है.

प्रवालभस्म शुक्रदोषमेंभी गुणकारी है. शुक्रदोषमेंभी शुक्रस्था-न का दोष हो तो इससे फायदा होगा. ग्रंथिशुक्रका विकार हो या पूयशुक्र हो तो इससे कुछ आराम नही मिलेगा. किंतु थोडीसी देर तक धूपमें जानेसे, या अंगारके पास बैठनेसे, या गर्म मसालेदार चीजें खानेसे या रातको जागनेसे स्वप्नदोष होता हो, या कुछ कारण न होनेपरभी शुक्रस्राव होता हो तो प्रवालभस्म जरूर लाभदायक होगी.

जवानीमे बूरी आदतोंसे शुक्रस्थान दुबला हो जाता है. मनभी इतना दुबला होता है कि स्त्रीके विषयमे कुछभी बाते सुने तो तुरन्त शुक्रस्राव होने लगता है. सच कहे तो इस तरहके रोगीको कामेच्छा का सत्यसुख मालूम भी नही हो सकता. क्योंकि स्त्रीसंगकी पूर्ती या प्रारंभ करनेके पहलेही शुक्रस्राव हो जाता है. केवल इंद्रिय लालसा होती है और वह भी इतनी के हम लिख नही सकते है. केवल स्त्री (वह अपनी रिश्तेदार होने परभी) देखनेसे मनका उत्तेजन होकर शुक्रस्राव होता है. केवल कंकणोंका आवाज सुनकर भी यहही बात होती है. कौनसीभी स्त्री थोडीसी सुंदर हो या अच्छा कपडा पेहनकर जा रही हो तो उसको रास्तेमे एक क्षण देखनेसेभी मन उत्तेजित होता है और शुक्रपतन होता है. ऐसी हालतमे विशेषतः मन की अशक्ततामे प्रवालभस्म विशेष उपकारी है. वंगभस्म शुक्रस्थानको ताकद देती है तो प्रवालभस्म उसका उत्तेजन कम करती है. शामक है. इसलिए कभी कभी ये दोनो मिलाके देना पडता है.

सुजाख या आतशक की पुरानी बिमारीसे मूत्रमार्गपर असर हो जाता है. इसकी वजह पेशावमे जलन, पेशावका रंग सुर्ख होना, उसमे और सर्व शरीरमे जलन, हाथपैरोंमे और आँखोंमे जलन, दांतोंके मसूडोमेसे खून निकलना, मसूडोंकी सूजन इत्यादि लक्षण हो तो प्रवालभस्म और सारिवा (गौरीसर) देनेसे आराम होगा.

अतिमैथुनसे या पुराने सुजाख या आतशकसे स्त्रियोंकोभी मूत्र मार्गमे ऊपर लिखे हुए विकार होते है.इसमे भी प्रवालभस्म लाभदायक है.

मूत्रमार्गके माफिक अपत्यमार्गमेंभी सुजाख और आतशकके बीमारीसे विकार होते है. अंदर जलन होता है. फोडे आते है. गर्भाशयमे जलन और फोडे होनेसे उसका कार्य ठीक नही चलता. गर्भ नही रह सकता अगर रहे तोभी कुछ दिनोंके बाद गर्भस्राव या गर्भपात हो जायगा. इन लक्षणोंमे प्रवालभस्म उपकारक है.

स्त्रियोंके प्रदर नामके विकारमे योनीसे स्राव निकलता रहता है. गर्भाशयकी विकृतीसे या योनिमार्गकी विकृतीसे यह विकार उत्पन्न होता है. यह विकृतीभी अनेक प्रकारकी होती है. रक्तप्रदर में अंदरकी रक्तवाहिनियां फूट जाती है तो श्वेतप्रदरमे दूसरे विभागोंसे स्राव निकल आता है. इसलिए प्रदरकी चिकित्सा करनेके पहले यह देखना चाहिए की अंदर कौनसे विभागकी और किस प्रकारकी विकृति हैं. चिकित्सा भी दोनो प्रकारकी होनी चाहिए. पेटमेभी औषध देना चाहिए और उत्तर वस्तीसे (पिचकारीसे) योनिमार्ग और गर्भाशयभी धोकर साफ रखना चाहिए. स्रावके लक्षण और दूसरे लक्षणों काभी अच्छी तरह ख्याल करके पेटमे दवाई देनी चाहिए.

प्रदरका स्राव पानीके माफिक पतला हो, बदबूदार हो, गरम होकर जैसे उवलता हुवा पानी अंदरसे आता हो, इसीसे जलन हो और जहाँ जहाँ चमडीपर यह स्राव लग जाय वहाँ फोडे फुंसिया आती हो, चमडीको स्पर्शभी सहन न हो, उसमे छाले पड गये हो और जलन हो, यह योनिमार्गका जलन कभी कभी इतका होता है कि मैथुन अशक्य हो जाता है. इस अवस्थामे बहुत रोगियोंको प्रवालभस्म और उशीरासव से लाभ हुवा देखनेमें आया है.

रक्तप्रदरमे और अत्यार्तव (मासिक स्राव अधिक होना) मेभी ऊपर लिखे हुए लक्षण हो तो प्रवालभस्म से फायदा होगा.

बवासीरमेभी रक्तार्श और पित्तार्श ऐसे दो प्रकार होते हैं. इन दोनो प्रकारोंमे पित्तके लक्षण अधिक हो तो प्रवालभस्म देनी चाहिए.

प्रवालभस्म, गिलोय का सत्व और नागकेसर इनका योग्य प्रमाणमे मिश्रण करके दूधके साथ या मख्खन और मिश्रीके साथ देनेसे जरूर फायदा होगा.

विषके सेवनके बाद आदमी बच जाय तबभी उस विषके परिणाम उसके शरीरमे कायम रहते है. विशेषतः संखिया, रसकर्पूर इत्यादि तीक्ष्ण और तीव्र विषार तो बडी तकलीफ देते है. विषके लक्षण तो तीव्र नही होते है किंतु शरीरको स्वास्थ्य नही मिलता, पेशाव गरम आता है, उसमे जलन होती है, पेटमे, छातीमे, पीठमे या सर्व शरीरमे जलन होती है. हाथपैरोंमे जलन और नाकमेसे खून गिरनेकी आदत पड जाती है. चक्कर आती है. इस विकारमे प्रवालभस्म गुणकारी है.

अग्निपुटी प्रवालभस्मके गुणधर्म ऊपर कुछ वर्णन कर चुके है. यह भस्म अनग्निकृत प्रवालभस्मकी अपेक्षा कुछ तीक्ष्ण और ऊष्ण है. किंतु इसमे पाचन और दीपन ये गुण अधिक पाये जाते है. आमाशय या पक्वाशयमे शूल, जलन, अपचन और अपचनसे उत्पन्न हुवा अतिसार इन लक्षणोंमे अग्निपुटी प्रवालभस्म देनी चाहिए.

प्रवालभस्मके गुणधर्म.

दोष—पित्तदोष (तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, अम्लत्व-गुणवृद्धि)
दूष्य—अस्थि, मज्जा, शुद्धरक्त और मांस.
स्थान—आमाशय, पचनेन्द्रिय, वातवहमंडल और मनोदेश.

९ मंडूरभस्म (लोहकिट्टी की भस्म.)

मंडूरके माने लोहकिट्ट.[1] लोहाको अग्नीमे तपानेसे उसके ऊपर जो एक लाल या काले रंगका जंग आता है उसको लोहकिट्ट कहते है.[2] यह कई किस्मका होता है. सो (१००) सालसेभी पुराना हो तो वह अच्छा मंडूर है. अस्सी सालका मध्यम, साठ सालका कनिष्ट और उसीसे कम सालका हो तो वह त्याज्य (नाकाम) समझना चाहिए.[3]

---

१. मंडूर लाल या काला होता है

२. ध्मायमानमयो वह्नौ परित्यजति यं मलम् ।
स किट्टसंज्ञां लभते तदनेकविधं मतम् ॥ वृ. यो. त.

३ शताद्ब्दमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयम् ततो हीनं विषोपमम् ॥ रसार्णव

मंडूरका शोधन, और भस्म बनानेकी रीत.

(१) गोमूत्रमे त्रिफलाका काढा बनाओ और लोहकिट्ट तपा-तपाकर वार वार उस काढेमे बुझाओ. उसका अपने आप चूर्ण बन जाएगा. चूर्ण तैयार होनेके बाद खरलमे उसको अच्छी तरह पीसना चाहिए. इसीको मंडूरभस्म कहते है.[1]

(२) बहेडेके लकडीके बरतनमे लोहकिट्ट डालके, बहेडेके लकडीसे (या कोयलेसे) उसको अग्नि देना चाहिए. तपनेसे वह जब सुर्ख हो जाय तब उसपर थोडा थोडा गोमूत्र डालना चाहिए. सात वार ऐसा करनेसे मंडूरभस्म बन जाती है. महीन पीसकर कपडेसे अच्छी तरह छान लेनी चाहिए.[2]

(३) मंडूरको शुद्ध करनेके बाद गौमूत्र और त्रिफलाके काढेसे उसको प्रत्येक सात वार भावना देनी चाहिए. प्रत्येक भावनाके बाद अग्निपुट और अग्निपुटके बाद खरल करना चाहिए. इस तरह बनाई हुई मंडूरभस्म बहुत गुणकारक है.[3]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

तच्चूर्णं मधुना लीढं पांडुं हन्ति सकामलम् । रसार्णव.
किट्टं कषायं शिशिरं पांडुश्वयथुशोथजित् ।
हलीमकं कामलां च हरते कुंभकामलाम् ॥ बृ. यो. त.
ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुंडकिट्टके । र. र. स.
मण्डूरं शिशिरं रुच्यं पाण्डुश्वयथुशोषजित् ।
हलीमकं कामलां च प्लीहानं कुंभकामलाम् ॥ योगरत्नाकर.

मंडूरभस्म बनानेके लिये जितना पुराना लोहकिट्ट मिल सकेगा उतना पुराना लेना चाहिए क्योंकि वहही श्रेष्ठ है. जहां पुराने लोहेके कारखाने हो या तोफके कारखाने हो वहां जमीनके अंदर पुराना लोह-किट्ट मिल सकता है. न मिलें तो नया लेना चाहिए. किंतु वह श्रेष्ठ नही

---

१. गोमूत्रैस्त्रिफलाक्वाथ्या तत्क्वाथे सेचयेच्छनैः ।
लोहकिट्टं सुतप्तं तु यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ।
तच्चूर्णं जायते पेष्य मंडूरोऽयं प्रयोजयेत् ॥ र. र. स.

२. अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जले ।
सेचयेदक्षपात्रान्त सप्तवारं पुन पुन ।
मण्डूरोऽयं समाख्यातश्चूर्णं श्लक्ष्णं नियोजयेत् ॥ र. र. स.

३. वृद्धवैद्याधार.

है मंडूरभस्म बनानेके लिए लोहभस्मकी अपेक्षा कम दिन लगते है. बनी हुई मंडूरभस्मका रंग काला और थोडासा लाल रहता है.

बालमंडूर, भौममंडूर और मधुमंडूर इनमे बहुत थोडा फर्क है. वह फर्क बनानेके रीतमे होनेसे हम यहाँ तीनोका वर्णन एकही जगह देते है. बालमंडूर बनानेमे गोमूत्रके पुट अधिक नही देते है. भौममंडूर मे सुवर्णमाक्षिकका थोडासा मिश्रण रहता है और मधुमंडूर बनानेके समय मधुर वर्गके वनस्पतिओंके पुट दिये जाते है. इतनाही उनमे फर्क है. (इन तीनो मंडूरभस्मोंका वर्णन हम वृद्धवैद्य परंपराके अनुसार देते है. इसको ग्रंथोंमे आजतक हमको कुछ आधार नही मिला है.) इनमे बहुत कम फर्क होनेसे सबहीको हमने ' मंडूरभस्म ' यह संज्ञा दी है.

मंडूरभस्म यह एक लोहेका प्रकार है. यह भस्म शरीरमे लोहभस्म की अपेक्षा जल्द हज्म होती है और शरीरमे फैलती है और भी यह एक बात है कि लोहाकिट्ट किट्टकी अवस्थामे अधिक कालतक रहनेके कारण उसका असर खून पर-विशेषतः रक्त परमाणुओंपर-अच्छा और जल्द हो जाता है. इसमे दुसरी एक बात यह है कि बच्चोंके लिए यह दूसरी दवाइयोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है.

मंडूरभस्मके सेवनसे खून मे रक्तपरमाणु (लाल रंगके परमाणु) बढ जाते है. भिन्न भिन्न अनेक कारणोंसे ये रक्त परमाणु कम होते है. इससे खून का रंग बदल जाता है. चमडीभी पीलीसी नजर आती है. इसीको पांडुरोग कहते है. रक्तपरमाणु कम होनेके कारण खून का प्रवाह जल्द चलने लगता है. हृदय जल्द चलता है और नाडीभी जल्द रहती है. एक मिनटमे १०० बारतक नाडी चलेगी. इसका कारण यह है कि रक्तपरमाणुओंका कार्य प्राणवायूको सर्व शरीरके अवयवोंतक पहुंचानेका है. रक्तपरमाणु तादादमे कम होंगे तो थोड़े परमाणुओंको अधिक काम करना पडेगा. बार बार फेफडोंसे प्राणवायु लेकर अवयवोंकी ओर खींचना पडेगा. इसलिए हृदयकोभी जल्द जल्द काम करना पडता है. पांडुरोगमे यहही बात होती है. लोहभस्म और मंडूरभस्मके सेवनसे रक्तपरमाणु बढते जाते है. आयुर्वेदशास्त्रका यह मत है कि मंडूरभस्मसे रंजक पित्तकाकार्य व्यवस्थित होता है और रक्तपरमाणु बनते है. आजकलके वैद्यकशास्त्रका कहना है कि मज्जाधातूसे (हड्डियोंके अंदरके लाल मगजमेसे) रक्तपरमाणु पैदा होते है और मज्जाधातूका कार्य बढाना यहही एक योग्य चिकित्सा है. कुछभी हो, मंडूरभस्मसे रक्तपरमाणु बढते है यह बात तो सच है. पित्तज पांडुविकारमे इस भस्मसे अधिक फायदा होता है. इसके कषाय गुणकी

वजह नाडीका वेग भी कम होता है और फीकापनभी कम होता है. पांडुरोगकी कुछभी दवाई लो; उसमे लोहका कुछ कल्प विशेषतः मंडूर मिलाया जाता है.

कामला या कामीन के विकारमें पित्तके लक्षण अधिक हो तो मंडूरभस्मका बहुत उपयोग होता है. इस विकारमे हाथपैरोंपर पीलापन नजर आता है. आँख पीले पड जाते है और पेशाब भी पीला पीला निकल आता है. मूत्रेंद्रियकी चमडी काली पडती है और दस्त बिलकुल सुफेद और पानीमे आटा मिलाये जैसे जान पडते है. इस विकारमे मंडूरभस्म देनी चाहिए. मंडूरभस्मके साथ कुमारी आसव, या मूलीका रस और चीनी देनेसे आराम होगा. यह भस्म सुवर्णमाक्षिक भस्मके साथभी दे सकते है.

पांडुरोग वढ जानेसे या पुराने कुंभकामलाके विकारमें सर्वांगशोफ (सर्व शरीरपर सूजन) उत्पन्न होता है. इसका कारणभी रक्तपरमाणु कम होना यहही है. यह सूजन आँखोंके पटलोंपर, मुँहपर, हाथपैरोंपर होती है. रक्तपरमाणु कम होनेके कारण रक्तमे पानीका प्रमाण अधिक रहता है और वह पानी चमडीके अंदर निकल आता है. इसी वजह सूजनपर अंगलीसे दबावें तो गड्डा पड जाता है और वह जल्द नही भर आता. इस प्रकारकी सूजनमे पांडुरोग हो या पांडुरोगसेही वह उत्पन्न हुई हो तो मंडूरभस्म बहुत गुणकारी होगी. इसके सेवनसे रक्तपरमाणु तादादमे वढ जाते है, वे बढ जानेसे हृदयका भी कार्य व्यवस्थित और नियमसे होने लगता है और चमडीके अंदर भरा हुवा पानीभी खींच लिया जाता है. सूजन कम होती है. कामलाके विकारमेंभी सूजन आती है. कामलाका विकार बहुत दिनोंतक रहनेसे शरीरपर पांडुरोगके समान परिणाम होकर यह सूजन पैदा होती है. इसमेभी मंडूरभस्मके साथ पुनर्नवा (गदहपूर्णा), शिलाजीत इत्यादि औषध मिलाकर देना चाहिए.

कामला बहुत दिनतक रहनेसे दूसराभी एक विकार पैदा होता है. शरीरकी चमडी रुक्ष हो जाती है, उसका रंग बदलता है और उसपर छाले पड जाते हैं. इसीको 'कुंभ कामला' कहते हैं. इसमेभी मंडूरभस्मसे कार्य होगा. कुंभकामलाय कृत् (जिगर के) विकारोंके वाद भी हो सकती है. विशेषतः यकृत् का मांसार्बुद विकार होनेपर कुंभकामला उत्पन्न हुई हो तो ताप्यादि लोह, ताम्रभस्म, वंगभस्म इत्यादि दवाइयां देनी चाहिए. मंडूरभस्मसे कुछ फायदा नही होगा. दूसरी दवाइयोंसेभी यह विकार साध्य होना दुर्घट है.

पांडुरोगके भी लाघरक, आलस, पालिक, कुंभस इत्यादि प्रकार होते है. उनमे भी उनके लक्षणोंको देखकर मंडूरभस्म देनी चाहिए.

चमडीका रंग हरा या काला या पीला पड जाता है. ताकद और काम करनेकी इच्छा बिलकुल कम होती है. आँखोंपर नींदसी रहती है. अग्निमांद्य और कै होती है. उसमे बदबू, थोडासा ज्वर, नामर्दाई, सर्व शरीरमें पीडा, जलन, प्यास, मुँहका स्वाद नष्ट होना और चक्कर इत्यादि लक्षण जिस विकारमे पाये जाते है उसको हलीमक कहते हैं. इसमे भी मंडूरभस्म गुणकारी है.

स्त्रियोंको जवानीमे हारिद्रिक नामका विकार होता है. इसमे भी मंडूरभस्मसे लाभ होगा. किंतु मानसिक विकारके कारण यह उत्पन्न हुआ हो तो अभ्रकभस्म देनी चाहिए. दूसरे कारणोंसे उत्पन्न हो तो मंडूरभस्म और लोहभस्मसे काम होगा.

बच्चोंको जब प्लीहावृद्धि (टिल्ली) और यकृतवृद्धि (जिगर) का विकार होता है तब उन विकारोंके लायक दवाइयां देना जरूर है. फिर भी साथ २ ताकद बढानेके लिए और रक्त बनानेके लिए मंडूरभस्म देना अच्छा है. मंडूरभस्म कुमारी आसवके साथ देनेसे अधिक लाभ होगा.

जीर्णज्वर (पुराना ज्वर) मे यकृत् प्लीहावृद्धि हो, या यह वृद्धि न होनेपर भी अशक्तता हो तो मंडूरभस्मके सेवनसे वह नष्ट होगी. लघुमालिनीवसंत और मंडूरभस्म मिश्र करके खिलानेसे अधिक फायदा होगा. फुफ्फुसावरणके शोथमेभी (फेंफडोंके ऊपर एक पडदा रहता है उसकी सूजनके विकारको Pleurisy कहते हैं) विकार पुराना हो और चमडीपर पीलापन हो तो लघुमालिनीवसंत और मंडूरका मिश्रण देनेसे आराम मिलेगा.

बच्चोंके मृद्वस्थि नामके विकारमे भी, प्रवालभस्म, गिलोयका सत्व और मंडूरभस्म मिलाके देनेसे फायदा होता है. बिलकुल छोटे दो महिने के बच्चे को भी यह मिश्रण दे सकते है.

मृद्भक्षणजन्य पांडु, याने मिट्टी खानेसे जो पांडुरोग उत्पन्न होता है, वह बहुतसे बच्चोंमे और जिनको मिट्टी खानेकी आदत हो ऐसे स्त्रियोंमे भी पाया जाता है.[1] इस विकारमे आंतोंके अंदर धीरे धीरे मिट्टी जमा हो जाती है. इसमे मंडूरभस्मसे फायदा होता है किंतु प्रथम एक दस्तावर दवाई देकर वह मिट्टी निकालना जरूरी है और इसके

---

१ स्त्रियोंको भी मिट्टी खानेकी आदत रहती है. अच्छे खानदानके घरके स्त्रियोंको भी यह आदत हमने देखी है.

बाद मंडूरभस्म दे सकते है. पित्तप्रधान और कफप्रधान पांडुरोगमे यह अच्छा कार्य करती है.

लडकियोंको जवानीकी उम्रमे आनेपरभी कभी कभी मासिक स्राव शुरू नही होता. वे दुबली पतली रहती है. मुँहपर फीकापन और गालोंपर सूजन रहती है. रोज थोडा थोडा बुखारभी रहता है किंतु पांडुरोग नही होता. इन लक्षणोंका कारण कुछ एक विकार है ऐसा नही. बचपनसे खानेपीनेकी योग्य व्यवस्था न होनेके कारण या मृद्धस्थिका विकार होनेसे या कभी कभी अतिसार या संग्रहणीका विकार या यकृत का विकार होनेपर, वे विकार बहुत दिनोंतक रहनेसे या वे अच्छे होनेपरभी, पहलेके माफिक ताकद नही आती है. इसका असर बचपनमे जान नही पडता किंतु जब जवानीमे शरीरके अवयव बढनेका वख्त आता है तब वे बढते नही. खूनमे ताकद नही रहती है. अंडकोश, इसी उम्रमे अपना कार्य करने लगते है. उनकी भी बाढ नही होती है. स्त्रियोंके स्तनभी उन्नत नही होते है. मासिक स्राव न होनेका भी यह ही कारण है. मासिक स्राव दूसरे कारणोंसे भी बंद होता है. उनमे मंडूरभस्मसे फायदा नही होगा. प्रथम लिखे हुए लक्षण हो तो त्रिफला, घी और शहदके साथ मंडूरभस्म देनी चाहिए.

थंडीताप या विषमज्वर बहुत दिनोंतक रहनेसे पांडुरोग उत्पन्न होता है. उसमे भी मंडूरभस्मसे लाभ होगा.

दूसरा एक जल्द बढनेवाला तीव्र पांडुरोग आजकल अधिक नजर आता है. इससे प्रथम ज्वर आता है और बहुत दिन तक यहही ज्वर कायम रहता है. कै होती है. कभी कभी पतले जुलाब होते है. और आदमी दिन २ फीका पड जाता है. इसमे मंडूरभस्मसे आराम होगा. इसके साथ २ ज्वरके लिए अमृतारिष्ट, प्रवालभस्म या गिलोयका सत्व देना चाहिए.

वार बार खून गिरनेसे जो फीकापन उत्पन्न होता है उसमे सुवर्णमाक्षिकभस्म और मंडूरभस्म बहुत लाभ पहुँचाते है. यहही बात मासिक स्रावके बाबत है. मासिक धर्ममे अधिक खून गिरनेसे या प्रसूतीके समय बहुत खून गिरनेसे पांडुता आती हो तो मंडूर-भस्मसे वह जरूर कम होगी. विशेषतः पांडुताके साथ २ हाथपैरोंपर सूजन हो तो अधिक लाभ होगा.

पेटमे कीडे होनेसे जो पांडुरोग उत्पन्न होता है उसमे प्रथम अजवाँइन का अर्क या कपूर या दूसरी कोई कृमिघ्न औषधी देकर, बाद त्रिफलाके साथ या अकेली मंडूरभस्म देनी चाहिए.

शरीरमे खूनकी पैदाइश कम होनेके कारण या रक्त परमाणुओंका प्रमाण कम होनेसे मनका स्वास्थ्य बिगड जाता है. विचार नही सूझते. कुछ भी थोडीसी बात मनके विरुद्ध हो तो संताप आता है. रोगी चिडचिडाता है. आँख और सिरमे भारीपन और नीद या तंद्रा भी रहती है. इसमे भी मंडूरभस्मसे उत्तम कार्य होगा.

मंडूरभस्मके गुणधर्म—

दोष—पित्त (रंजक).

दूष्य—रक्त, मांस, मज्जा.

स्थान—यकृत्, प्लीहा, फेंफडा, स्वादुपिंड इत्यादि.

मंडूरभस्मके सेवनसे कभी कभी जी मचलाता है और कै होती है. मंडूरभस्मके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म देनेसे ये लक्षण कम होते है. अच्छे मंडूरसे भी ये लक्षण कभी कभी पाये जाते है.

१०. मौक्तिकभस्म (मोती की भस्म).

प्रमाण $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती.

सुफेद, लघु, स्निग्ध, सूर्यके समान जिसमे चमक है, जिसमे मैला न हो, भारी वजनका, और गोल, मोती सबसे बढिया है.[१]

मोतीका शोधनः—

(१) चमेलीके रसमे दोलायन्त्र रीतीसे पकानेसे मोती शुद्ध होता है.[२]

(२) अम्लवर्गके द्रव्योंसे या चमेलीके रससे मोती शुद्ध होता है.[३]

मोतीकी भस्म बनानेकी रीत—

(१) बढारफलके रसमे मनसिल, हरताल और गंधक मिलाके खरल करके शुद्ध मोतीको पुट देना. ऐसे आठ पुट देनेसे मौक्तिकभस्म बन जाती है.[४]

---

१ ह्लादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवन्निर्मलं महत्।
ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम्॥ र स.

२ स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्या स्वरसेन च।
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत्॥ शा स.

३ शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा॥ र र स.

४. लकुचद्रावसंपिष्टै शिलागन्धकतालकैः।
वज्रं विनाऽन्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु॥ र. र. स.

(२) घीगुवारके रसमे, चौलाईके रसमे और स्त्रीके दूधमे प्रत्येक सात सात वार, गरम किया हुवा मोती बुझानेसे मोतीकी भस्म वन जाती हैं.[१]

(३) कुल्थीके काढेमे, तिलके तेलमे, छांछमे या गोमूत्रमे खरल करके पुट देनेसे मोतीकी भस्म तैयार होती है.[२]

(४) अम्लवर्गके द्रव्योंसे प्रथम मोती शुद्ध करके उसकी अच्छी तरहसे पीसकर (या छोटे छोटे टुकडे वनाकर) गुलाबपानीमे सात दिन खरल करना चाहिए. इससे सुफेद मौक्तिकभस्म बन जाती है.[३]

ग्रंथोक्त गुणधर्म—

कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमांद्यनुत् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ र. र स.
कासं श्वासं वह्निमांद्यं क्षयंच हन्याद्वृष्यं बृंहणं पित्तहारि ।
दाहश्लेष्मोन्मादवातादिरोगान् हन्यादेवं सेवितं सर्वकाले ॥

मौक्तिकभस्म अग्निसंस्कारसे वनाना अच्छा नही. कई लोग अग्निसंस्कारसे मौक्तिकभस्म बनाते है किंतु इसका उपयोग शंखभस्म, कपर्दिकभस्म या शौक्तिकभस्मसे अधिक नही होता. अग्निसंस्कारविरहित केवल गुलाबपानीमे मौक्तिकभस्म वनानेकी रीत सबसे अच्छी हैं. इस रीतसे बनाई हुई मौक्तिक भस्ममें ग्रंथोंमे लिखे हुए सब गुणधर्म पाये जाते हैं.

मौक्तिकभस्मके गुणधर्मः—शीतवीर्य, मूत्रल, मूत्रमार्गके और सर्व शरीरके जलनका नाश करनेवाली और पित्तशामक, इसका रंग बिलकुल सफेद बगलेके परके माफिक होता है.

बहुत कष्ट उठानेसे, चिंतासे, क्रोधसे, बहुत जागनेसे, मानसिक श्रम करनेसे या गर्मीकी वजह सिरमे दर्द शुरू होती है या हमेशा परेशानी रहती है. इन कारणोंसे मन इतना चंचल होता है कि कुछभी

---

१. कुमार्यास्तंडुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ।
प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नश ।
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषत ॥
क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नाऽत्र संशय· ॥ शा. स.

२. उक्तमाक्षिकवन्मुक्ता प्रवालानिच मारयेत् ॥ शा. सं.

३. वृद्धवैद्याधार —नीम्बूके रसमे थोडा पानी डालकर उसकी खटाई कम कर देनी चाहिए. इसमे २४ घंटेतक मोती रखकर, २४ घंटेके वाद स्वच्छ पानीसे धोलना चाहिए. सूख जानेपर खरलमे रखकर अच्छी तरह पीसना. पीसनेके बाद गुलाबपानीसे सातवार भावना देकर चंद्रप्रकाशमे सुखाना.

बात मनके विरुद्ध हो, रोगी एकदम बिगड जाता है. विचार करनेकी ताकद नष्ट होती है. शब्द, स्पर्श आदि इंद्रियार्थभी मन सहन नही कर सकता. थोडीभी आवाज सुननेसे या थोडाभी विचार करनेसे सिरमे चक्कर आती है. सारे शरीरमे और सिरमे जलन उत्पन्न होती है. इन्हीके कारण निद्रानाशका उद्भव या दूसरे कारणोंसे उत्पन्न होनेवाला निद्रानाश इत्यादि विकारोंमे मौक्तिकभस्मके सेवनसे बहुत लाभ होता है.

कोई आकस्मिक दुर्घटनासे दिलको धक्का आ जाता है, मगज बिगड जाता है; शराब, गांजा, धत्तूरा इत्यादि तीक्ष्णवीर्य, ऊष्ण और विकाशी पदार्थोंके सेवनसे सिर बिगड जाता है और उन्मादका विकार (पगलापन) विशेषतः पित्तजन्य उन्माद–पैदा होता है. इन विकारोंमे मौक्तिकभस्मसे बहुत फायदा होता है. मौक्तिकभस्म और माक्षिकभस्म या मौक्तिकभस्म और प्रवालभस्म भी मिलाके दे सकते है. कुह्लडा (पेठा) के पाकमे या ब्राह्मीके पाकमे भी मौक्तिकभस्म देते है.

भूतोन्मादमे रोगी चिरचिराता हो, क्रुद्ध हो या झगडा करता हो तो उसको मौक्तिकभस्मसे आराम मिलेगा.

मौक्तिकभस्म अत्यंत शीतवीर्य होनेसे गर्मीके दिनोंमे इससे बहुत लाभ होता है. सर्व शरीरमे जलन, कभी कभी दिनमे बढती हुई गर्मीकी वजह सर्व शरीरके संज्ञावाहिनिओंका क्षोभ होता है, बाहरकी गर्मीके साथ २ शरीरकी गर्मी भी बढ जाना चाहिए यह न होनेसे नसें कमजोर होती है और कुछ भी ताप सहन न कर सकती है. इस अवस्थामे दूसरी दाहशामक दवाइयोंकी अपेक्षा मौक्तिकभस्मके सेवनसे अधिक लाभ होता है. क्योंकि वातवाहिनिओंपर इसका शामक कार्य अधिक नझर आता है.

गर्मीके दिनोंमे, धूपमे काम करनेसे, चूलेके पास या भट्टीके पास काम करनेसे, ज्यादा मेहेनतका काम करनेसे या जागनेसे, नाक, गुदा, मूत्रमार्ग या दूसरे मार्गोंसे खून गिरने लगता है. साथ साथ हाथ-पैरोंमे जलन, या सर्व शरीरमे जलन और गभराट रहती है. इसमे भी मौक्तिकभस्मसे फायदा होता है.

उपदंश (आतशक) या सुजाखके विकारसे (वह विकार हट जाने पर), मूत्रमार्गका दाह होता है. कभी कभी दूसरे कारणोंसे भी पित्तका प्रकोप होता है और पेशावके वख्त जलन होता है, कभी कभी पेशावमे तीव्र रसायन पदार्थ होनेसे भी जलन होता है. इसमे भी मौक्तिकभस्म लाभदायक है.

बहुत खून गिरनेसे या दूसरे कारणोंसे, शरीरके अंदर जलन हो (अंतर्दाह), तो मौक्तिकभस्मसे वह कम होगी. स्त्रियोंको योनिमार्गसे स्रावका निकल आना और उस स्रावके बाद जलन उत्पन्न होना, इन लक्षणोंके लिए मौक्तिकभस्मसे इतना फायदा नही होगा जितना वंगभस्मसे. श्वासके विकारमें भी अंदर जलन हो तो मौक्तिकभस्म देनी चाहिए.

आँखके विकारोंमे, बार बार आँखों का आना, उनमे सुर्खी अधिक हो, आँखोंमे जलन और जैसा गरम गरम पानी और भाप निकलती हो ऐसे लक्षण हो तो मौक्तिकभस्मके सेवनसे वे जल्द कम हो जाएंगे.

कास (खांसी) के विकारसे, पित्त या कफपित्तकी वृद्धि हो और साथ २ जलन हो तो मौक्तिकभस्म लाभदायक है.

राजयक्ष्मा (तपेदिक) के विकारमें भी जलन, बेचैनी, थोडासा बुखार, प्यास इत्यादि लक्षण हो तो मौक्तिकभस्म देनी चाहिए. राजयक्ष्माकी प्रथम अवस्थामे (शुरूसे) जैसा प्रवालभस्मसे फायदा होता है वैसाही मौक्तिकभस्मसे होता है.

श्वास (दमा) के कई रोगियोंको मौक्तिकभस्मसे आराम मिलता है. विशेषतः श्वासके साथ २ हाथपैरोंमे, पेटमे या सर्व शरीरमें जलन हो, मुँह सूख गया हो, प्यास और कै इत्यादि लक्षण हो, पंखेसे पवन चलानेसे कुछ आराम लगता हो तो दूसरी दवाइयोंकी अपेक्षा मौक्तिकभस्म देनेसे बहुत फायदा होगा, और श्वास कम होगा.

अम्लपित्तके विकारमे पित्त बढनेसे गलेमे जलन होती है. वह जलन इतनी होती है कि मानो वहां लाल मिर्चे लगाई गई हो. जब कै होती है तब भी मुँहमे और गलेमे खटाई और तीव्र जलन होती है. इतनी कि रोगीको कै करने की डर रहती है. इस विकार से मौक्तिक भस्म शीघ्र लाभ पहुँचाती है.

अम्लपित्तके विकारमे कभी कभी अग्निमांद्य (बदहज्मी) होता है. इसमेभी जलन आदि लक्षण हो तो मौक्तिकभस्म जरूर देनी चाहिए.

अतिसार (दस्त) के विकारमे, टट्टीके वक्त जलन, पीले रंगके पानीके माफिक पतले गरम २ दस्त आते हो; साथ २ पेटमे, आंतोमे, ग्रहणीमे और गुदामेभी जलन होती है. ये सब लक्षण पित्तके विकृतीके कारण हो जाते है. इनमे मौक्तिकभस्मका सेवन करें तो पित्तकी विषमता कम होगी और साम्य प्रस्थापित होनेसे दस्तभी अपनेआप कम होंगे.

खूनी ववासीरके विकारमेभी जलन पीडा, सूजन और खून का गिरना इत्यादि लक्षण हो, खून गिरनेके समय गरम गरम खून निकलता है ऐसा ख्याल हो और खून के वाद अत्यंत पीडा और जलन हो, इस पीडाके मारे कभी कभी इतनी तकलीफ होती है कि वह सहन न होनेपर रोगी बेहोष हो जाता है, होशमे आनेपरभी पीडाके कारण फिर वेहोशी आ जाती है. इस प्रकारके लक्षणोंमे मौक्तिकभस्मसे वहुत फायदा होगा.

पेशाबमें खूनका निकलना, मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्रके विकारमे खूनी पेशावका आना, इसके साथ २ मूत्रमार्गका जलन हो तो मौक्तिकभस्मका सेवन करनेसे जलन कम होगी. मौक्तिकभस्मके साथ गंगावतीके पत्तोंका रस देनेसे जल्द कार्य होगा.

मासिक स्राव अधिक होनेसे (अत्यार्तव) या योनिमार्गमे रक्तपित्तकी विकृति होनेसे खुजली, जलन और स्रावकी वहुत तकलीफ होती है. इससे कभी कभी रोगी इतना हैरान होता है कि पीडाके मारे वह विछौनेसे ऊठ नही सकता. इस विकारमे दूध और गुलकंदके साथ मौक्तिकभस्म देनी चाहिए. साथ साथ शतधौत घृतमे रुई भिजाकर वह योनिमार्गमे रखना चाहिए.

योनिमार्गका दाह, वह इतना कष्टप्रद होता है कि मैथुनके समय वह असह्य हो जाता है और कभी कभी मैथुन करनाभी मुष्किल हो जाता है. इस विकारमे मौक्तिकभस्मसे लाभ हुवा देखनेमे आया है. यह परीक्षित है.

अनुलोमक्षय-याने रसक्षय-के विकारमे, रसधातूसे लेकर आगेके धातू क्षीण होते जाते है, और इसी वजह शरीर कमताकद और दुवलापतला वन जाता है. साथ साथ अतिसार (दस्त) भी रहता है. दस्त पानीके माफिक गरम गरम और वार वार आते है. मुँहमे छाले पड जाते है; या अंदरकी चमडी विलकुल निकल आती है. सर्व शरीरमे जलन, टट्टीमे जलन, मुँहमे जलन, पेटमे जलन, इत्यादि लक्षणोंमे मौक्तिकभस्मसे वहुत फायदा होता है.

मौक्तिकभस्मके सेवनसे दाह तो कम होताही है किंतु साथ २ रसधातूसे लेकर सर्व धातू पुष्ट हो जाते है. और धातुओंके पोषणसे सर्व शरीर पुष्ट होता है. इस प्रकारसे मौक्तिकभस्म शक्तिदायक है और शरीरका वर्णभी सुधर जाता है.

स्थूल रसायनकी दृष्टीसे देखें तो मौक्तिकभस्म यहभी एक चूनेका कल्प है. किंतु जीवन रसायनकी दृष्टीसे चूना, मोती, मूंगा, शंख और कौडी ये सव भिन्न भिन्न है और उनका कार्यभी भिन्न होता है.

मौक्तिकभस्मके गुणधर्मः—

दोष—पित्त, विशेषतः पित्तके तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल गुणोंकी वृद्धि.

दूष्य—रस, रक्त, मांस और अस्थि.

स्थान—चमडी, हृदय, क्लोम, यकृत् प्लीहा, अंतःस्रावक और दूसरे ग्रंथी.

११ रौप्यभस्म.

(प्रमाण $\frac{1}{4}$ से १ रत्ती)

चांदी, सहज, कृत्रिम और खनिज ऐसे तीन प्रकारकी होती है. अग्नीमे तपानेसे जिससा रंग कुंदके फूलके समान सुफेद होता है, और जो भारी, स्निग्ध और मुलायम रहती है वह चांदी भस्मके लिए अच्छी है.[1]

चांदीका शोधनः—

(१) तेल, छांछ, गौका मूत्र, आरनाल (सत्तूकी कांजी) और कुल्थीका काढा इनमे चांदीका रस (तपानेसे पतली हुई चांदी) हर एकमे सात २ वार बुझानेसे चांदी शुद्ध होती है.[2]

(२) चांदीके पतले २ टुकडे वनाकर, अग्नीमे रखकर, जब विलकुल लाल हो जाय तव हथियाके पत्तोंके रसमे तीन वार बुझानेसे वे शुद्ध हो जाते है.[3]

(३) सीसा और जवाखार चांदीमे डालकर, अग्नीमे रखनेसे जव वह पिघल जाय तब चांदी शुद्ध होती है.[4]

(४) सोहागा या जवाखार और नीमूका रस या इमलीका रस इनमे चांदीके पत्ते चार प्रहरतक पकानेसे चांदीके दोष नष्ट होते है.[5]

---

१ रौप्यं त्रिधा स्यात्सहजं कृत्रिमं खनिसंभवम् ।
दग्धोत्तीर्णं सुशीतं यन्निर्मलं कुंदसन्निभम् ।
गुरु स्निग्धं कुमारं च तारमुत्तममिष्यते ॥ र. चं.

२ तैले तक्रे गवां मूत्रे ह्यारनाले कुलित्थके ।
क्रमान्निसेचयेत्तप्तं द्रावे द्रावे तु सप्तधा ।
स्वर्णादि लोहपत्राणां शुद्धिरेषा प्रशस्यते ॥ र. र. स.

३ पत्रीकृतं तु रजतं संतप्तं जातवेदसि ।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसैर्वारत्रयं शुचि ॥ र. च.

४ नागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमृच्छति । र. च.

५ रजतं दोषनिर्मुक्तं किंवा क्षाराम्लपाचितम् । र. च.

(५) सीसा और सोहागा मिलाकर उनके साथ चांदीका रस बनाया जाय तो चांदी शुद्ध हो जाती है.[१]

(६) चांदी तपवाकर उसका रस मालकांगनीके तेलमे तीन वार डाल दो. फिर खापरियाका भस्म और चूर्ण लेकर उसकी एक कटोरी बनावो. उस कटोरीमे चांदी और चांदीके समप्रमाणमे सीसा डाल दो. फिर अग्नीमे धरके इतनी देर तक रक्खो कि सव सीसा भाप वनके निकल जाय. केवल चांदी रह जायेगी और शुद्ध होगी.[२]

(७) चमेलीके पत्तोंके रसमे चांदीका रस डाल दो. ठंडा होनेपर फिर तपाकर रस वनाके फिर डाल दो. इस तरह सात वार करनेसे चांदी शुद्ध हो जायेगी.[३]

(८) गंधकाम्ल (सल्फ्यूरिक ॲसिड) मे डालनेसे चांदी शुद्ध हो जाती है. इसमे चांदीका सुफेद चूर्ण वन जाता है. उसे पानीसे धोतर लेना चाहिए. यह रीत सीधी सुथरी और अच्छी है. किंतु जीवनरसायनशास्त्रकी दृष्टीसे वह कम अस्सल है. वनस्पतिओंकी मददसे धातुओंका शोधन मारण सवसे श्रेष्ठ है.[४]

चादीकी भस्म वनानेकी रीतः—

(१) विजौराके रसमे सोनामांखीका चूर्ण मिलाके खरल करना. और उससे चांदीके पत्तोंको लेप देना, और अग्नीमे पुट देना. इस तरह तीस पुट देनेके वाद चांदीकी भस्म हो जाती है.[५]

(२) थूहरके रस (दूध) मे सोनामांखीका चूर्ण मिलाके खरल करना और इससे चांदीके पत्तोंको लेप करना. फिर अग्नीमे पुट देना. इस तरह जहाँतक निरुत्थ हो जाय तहाँतक पुट देनेसे चांदीकी भस्म वन जाती है.[६]

---

१ नागेन टङ्कणेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति ॥ र र स

२ तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे ।
खर्पराद्भस्मचूर्णाभ्यां परित पालिकां चरेत् ।
तत्र रूप्यं विनिक्षिप्य समसीससमन्वितम् ।
जातसीसक्षयं यावद्धमेत्तावत्पुन पुन ।
इत्थं संशोधितं रूप्यं योजनीयं रसादिषु ॥ र. र. स

३ और ४ वद्धवैद्याधार

५ माक्षिकं मातुलुंगाम्लमर्दितं पुटितं शनै ।
त्रिंशद्वारेण तत्तारं भस्मसाज्जायतेतराम् ॥ र र स

६ भाव्यं ताप्यं स्नुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ र. र. स.

(३) जंभीरीके रसमे एक भाग हरताल मिलाके खरल करो. फिर हरतालके वजनसे चौगुणा चांदीके पत्ते लेकर उनको उस हरतालसे लेप करो. सूख जानेपर मूलेमे रखकर तीन गोवरकी आग मे रख दो. इस तरह चौदा पुट देनेसे चांदीकी भस्म बन जाएगी.[1]

(४) सोनामांखी और शुद्ध गंधक आकके रस (दूध) मे खरल करके इनसे चांदीके पत्तोंको लेप करो. फिर कटोरेमे रखकर कपडामिट्टीसे लपेटकर गजपुट देनेसे चांदीकी भस्म तैयार होगी.[2]

(५) शुद्ध चांदीके पतले पतले और छोटे पत्ते बनाओ. उनको दोनो तरफ कबूतरकी विष्टासे लेप करो. लेप सूख जानेपर एक मिट्टीका कटोरा लेकर उसमे प्रथम थोडासा गंधक डाल दो. गंधकके ऊपर वे पत्ते रखकर फिर गंधक और फिर पत्ते इस तरहसे सब पत्ते रख दो. फिर गंधक डालके ऊपरसे दूसरे कटोरेसे ढक दो. और कपडामिट्टी लपेटकर गोवरसे एक गजपुट दो. गजपुटके बाद घीगुवारके रसमे खरल कर फिर पहलेके माफिक कबूतरकी विष्टासे लेप और गजपुट दो. इस तरह सात बार करनेसे स्याही रंगकी रौप्यभस्म बन जाएगी.[3]

रौप्यभस्मके ग्रंथोक्त गुणधर्म—

शुद्धं भस्मीकृतं रूप्यसारमाज्यसमन्वितम् ।
नेत्ररोगानपि सदा क्षयजान् गुदजानपि ।
पित्तजान्कासलसंभूतान् पाण्डुजानुदराणि च ।
दोषजानपि सर्वांश्च नाशयेदरुचिं सदा ॥ र. प्र. सु.

रूप्यं विपाकमधुरं तुवराम्लसारं ।
शीतं सरं परमलेखनकं च रूप्यम् ।
स्निग्धं च वातकफजिज्जठराभिदीप्तिं ।
बल्यं सरं स्थिरवयस्करणं च मेध्यम् ॥ र. र. स.

रौप्यं शीतं कषायाम्लं स्निग्धं वातहरं गुरु ।
रसायनविधानेन सर्वरोगापहारकम् ॥ र. र. स.

रौप्यभस्मका विपाक मधुर, कषाय और अम्ल रसात्मक होता है. रौप्यभस्म ठंडी, सारक, लेखन, स्वाद बढानेवाली और स्निग्ध होती है.

---

१ तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जम्बीरजद्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।
शोषयेदन्धयंत्रे च त्रिशद्वनपलकै पचेत् ।
चतुर्दशपुटैरेव निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ र. र स.

२ माक्षिकं गंधकं चैवमर्कक्षीरेण मर्दयेत् ।
तेन लिप्तं रूप्यपत्रं पुटेन म्रियते ध्रुवम् ॥ र. र.

३ वृद्धवैद्याधार.

रौप्यभस्मके सेवनसे स्नायु और नसोंकी ताकद वढ जाती है. उनका बृंहण होता है और इसी वजह वातके विकारोंका भी शमन होता है. (बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च ।). इस शमन कार्यका प्रभाव कलायखंज, पक्षाघात इत्यादि पुराने वातविकारोंमे भी अच्छी तरह नजर आता है. नसोंमे जब वातका प्रकोप हो जाता है तब, शूल, नसोंका आकुंचन या संकोच, नसोंकी सूजन, अंतरायाम, वहिरायाम, खल्ली, कौब्ज इत्यादि लक्षण पाये जाते है. इस प्रकारके प्रकोपका शमन रौप्यभस्मसे अच्छी तरह होता है. केवल वातप्रकोप हो तो वह रौप्यभस्मसे कम हो जाएगा किंतु इसके साथ साथ आमके लक्षण, अमानुवंध हो तो रौप्यभस्मकी जगह योगराजगुग्गुल देनेसे अधिक लाभ होगा. इस तरहके फर्क आयुर्वेदमे बहुत महत्त्वके समझे जाते है.

जैसा ताम्रभस्मका प्रभाव (विशेष कार्य) यकृत्, प्लीहा इत्यादि इंद्रियोंपर और उनके दोष और धातुओंपर होता है, इसी तरह रौप्य-भस्मका कार्य सूत्रपिंड, मगज (मस्तिष्क) और वातवाहिनिओंपर, और सामान्यतः वातदोपपर शामक होता है.

अति मेहेनतसे, अति वाचनसे, अति जागनेसे, चिंतनसे, शोकसे, और अति भीतिसे वातकी वृद्धि होती है. मगजकी ताकदभी, वात-वृद्धीके कारण, कम होती है. इसलिए रोगीको थकावट, चक्कर मिर्गी और कभी कभी वेहोशीकाभी अंदेशा रहता है. इन लक्षणोंमे रौप्य-भस्मसे वहुत फायदा होता है. ऊपर लिखे हुए कारणोंसे सिरमे दर्द हो या तीव्र शूल हो तोभी रौप्यभस्म देनी चाहिए. जब शूल इस प्रकारका होता है कि एकवार तीव्र शूल और दूसरे वख्त मामूली दर्द हो, तब रौप्यभस्मसे फायदा होगा. नही तो पित्तदोषकी वृद्धि या पित्त-प्रकोपके लक्षण हो तो उसी शूलके लिए मौक्तिकभस्म अधिक उपकारक होगी. मौक्तिकभस्म और रौप्यभस्म इनमे यह एक महत्त्वका फर्क है. वाताधिक्य या वातप्रकोप हो तो रौप्यभस्म और पित्ताधिक्य या पित्तका प्रकोप हो तो मौक्तिकभस्म देनी चाहिए. ऊपर लिखे हुए लक्षण अस्राभिनोदनवृद्धि (हाय ब्लड प्रेशर) के विकारमेंभी पाये जाते है. इसमे रौप्यभस्मकी अपेक्षा शिलाजीतसे अधिक कार्य होगा. शिलाजीतके साथ आरग्वध (अमलतास) के समान कुछ मृदु विरे-चन देना चाहिए.

रौप्यभस्मके सेवनसे वातवाहिनिओंका क्षोभ कम होता है. उनपर उसका शामक कार्य होता है. इसलिए अपस्मार, उन्माद और आक्षे-

पक इन रोगोंकी तीव्र अवस्थामे उससे फायदा होता है. स्त्रियोंके भूतोन्मादके विकारमेंभी कभी कभी वातलक्षण अधिक होते है. इस अवस्थामेंभी रौप्यभस्मका उपयोग होता है.

आँखोंके विकारोंमेंभी वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण हो तो रौप्यभस्म लाभदायक होगी. शोक, क्रोध, श्रम या सूरजका ताप अधिक होनेसे दृष्टि बिगड जाती है. इस विकारमेंभी रौप्यभस्म यह एक परीक्षित इलाज है.

क्षय—विशेषतः शुक्रक्षय-से जो विकार उत्पन्न होते है उनमे वंगभस्म और रौप्यभस्म ये दोनो अच्छे इलाज है. शुक्रक्षयके बाद वातप्रकोप होनेसे कमरमे दर्द, पैरोंमे ऐंटन, शूल, पेशाबकी जलन, शुक्रमार्गकी जलन और शूल इत्यादि लक्षणोंमे रौप्यभस्मका उपयोग करना चाहिए. शैथिल्य और कमजोरीमे वंगभस्मसे अधिक कार्य होगा

जंतुज क्षयविकारमे सुवर्णभस्म या दूसरे सुवर्णकल्प देना योग्य है. किंतु इस विकारमे सर्व शरीरमे जलन, पेशावमे जलन, आँखोंमे जलन इत्यादि लक्षण हो तो रौप्यभस्म देनी चाहिए. जलन कम होनेके बाद फिर सुवर्णभस्म दे सकते है. कभी कभी रौप्यभस्म और सुवर्णभस्मका मिश्रणभी देते है.

पित्तज, वातज या वातपित्तज अर्शरोग (बवासीर) मे भी रौप्यभस्म उपकारक है. खूनी बवासीरमेंभी इससे फायदा होता है. बवासीरके मस्से बहुत बडे हो तो उन्हे प्रथम शस्त्रसे निकालकर रौप्यभस्म देनेसे जरूर फायदा होगा. खूनी बवासीर या दूसरी बवासीरसे कांटा चुभने जैसी वेदना, प्रदाह अधिक हो और साथ साथ चमडीभी बिगड गयी हो तो गंधकरसायन देनेसे फायदा होगा.

पित्तजन्य उदरके विकारमे, ज्वर, वेहोशी, सर्व शरीरका प्रदाह मुँहमे जलन, चक्कर आना, दस्त आना, चमडीका, पेटका रंग हरा या पीला पडना, पेटके ऊपर बढी हुई सिराओंका जाल नजर आना, पसीना और पसीनेके साथ चमडी मे जलन, गलेमे इतनी जलन कि जैसा धूँवा निकलता हो, पेट बिलकुल मुलायम, पेटमे पानी जल्द जम जाना (जलोदर होना) इत्यादि लक्षणोंके साथ सर्व शरीरमे पीडा, विशेषतः नसोंमे और सिराओंमे पीडा, स्पर्श करनेसे भी पीडा हो तो रौप्यभस्म देनी चाहिए.

अम्लपित्तके विकारमे भी रौप्यभस्म एक अच्छा इलाज है. वातज अम्लपित्तमे विशेषतः कोष्ठमे या आमाशयमे नसोंका क्षोभ (उपताप) हुवा हो तो रौप्यभस्म देना योग्य है. इस प्रकारके अम्ल-

एक विशेष लक्षण ऐसा होता है. कि कुछ दिनों तक यह विकार बिलकुल कम होता है, वह कायम नष्ट हुआसा जान पडता है, किंतु कुछ दिनोंके बाद फिर जोरसे शुरू होता हैं. इस प्रकारमे रौप्यभस्मसे बहुत फायदा होता है. इसी तरह जिस अम्लपित्तमे कोष्ठ (आमाशय) का आकार बढ़ गया हो और पेटशूल का लक्षण जादा हो वह रौप्यभस्मसे हट जायेगा. शैथिल्य और नाताकती (जहां जहां विकार हो वहांके इंद्रियोंकी) ये लक्षण हो तो वंगभस्म देनी चाहिए.

सूखी खांसी-वातप्रधान कास-के विकारसेभी रौप्यभस्म देते है. सूखी खांसीमे, गला सूख जानेसे, प्यास जादा लगती है. गलेके पिछले भाग की चमडी सूख जानेसे खांसते समय बडी तकलीफ होती हैं और बलगम नही निकलता. मुँह के अंदर देखें तो गलेमे, तालुग्रंथि और उसके आसपास, और सप्तपथ (फॅरिंक्स) मे अंदरकी चमडी सूखी, लाल और उसके ऊपर फुंसिया नज़र आती हैं. इस अवस्थामेभी रौप्यभस्मसे आराम मिलेगा.

पांडुरोगमे चमडीको जो फीकापन या पीलापन आ जाता है उसका कारण खूनमेसे रक्त परमाणु कम होना यह ही है. किंतु रक्त परमाणु कम होनेके लिए कई मूल कारण होते है. इनमेसे मानसिक चिंता, शोक या चित्तकी कुछ भी तकलीफ या परेशानी का कारण हो तो इस प्रकारके पांडुरोगमे रौप्यभस्मसे फायदा होगा. इस प्रकारमे विशेषतः वातप्रधान या वातपित्तप्रधान लक्षण होते है. इन लक्षणोंके लिए रौप्यभस्म यहही एक परीक्षित इलाज है.

चित्त का रोग, मानसिक चिंता, शोक इत्यादि वातप्रकोपी कारणोंसे अरुचि (जीभका स्वाद नष्ट होना) उत्पन्न होती है. इसमे भी रौप्यभस्मसे फायदा होगा.

जाठराग्नि, याने पाचकपित्त का कार्य अच्छी तरह होनेके लिए वायूकी जरूरत रहती है. वह वायु दुष्ट होनेपर अग्नी का कार्य अच्छी तरह नहीं हो सकता. प्रथम वातप्रकोप होता है और इसके बाद अग्निमांद्य होता है. इस प्रकारके अग्निमांद्य मे रौप्यभस्म देनेसे प्रथम वात का प्रकोप कम होता है और अपने आप अग्निमांद्य भी चला जाता है.

कोथ का विकार (जिसको अंग्रेजीमे गँग्रीन कहते है) बहुत कष्टकारक विकार है. इस विकारमे शरीरके विभाग और उनके परमाणु धीरे धीरे मरने लगते है. उस विभाग मे अत्यंत पीडा होती है, जलन होता है और चमडी काली हो जाती है. कभी कभी ज्वर भी आता है.

कोथ (कुथ्—सडना)का विकार कभी कभी मेह के रोग मे उत्पन्न होता है. इस मे रौप्यभस्मसे बहुत फायदा होता है, क्यों कि इस विकारमे पित्त या वातपित्त का प्रकोप होता है.

आतशक या सुजाख की बीमारीके बाद अण्डकोश और उसके नजदीक के विभागोंमे नसों का और दूसरे नाडिओंका संकोच होता है और पौरुष नष्ट होता है. नपुंसकत्व उत्पन्न होता है. इस प्रकारके नपुंसकत्व मे, रौप्यभस्मसे लाभ हुआ हमने देखा है.रौप्यभस्म से नाडिओंका संकोच कम होता है और अंडकोशके तरफ फिर खून अच्छी तरह फैलाने लगता है.

रौप्यभस्म के इसी गुणके कारण इसको 'बल्य' कह सकते है. और इस तरह उसका उपयोग भी होता है. नाडिओंके संकोच से रक्त आदि धातुओंका फैलाव शरीरमे अच्छी तरह नही हो सकता. इंद्रियोंको और बाह्य विभागोको पोषण नही मिलता और वे थक जाते है, कमताकद हो जाते है. इस नाताकतीमे और थकावट मे रौप्यभस्म देनेसे इंद्रियोंका पोषण अच्छी तरह होने लगता है और इंद्रियोको ताकद मिलती है.

रौप्यभस्मका और एक गुण है. वह 'मेध्य' याने बुद्धीको तेज बनानेवाला है. बुद्धीका कार्य 'साधक' पित्तकी मददसे चालू रहता है. इस पित्तकी विकृति होनेसे बुद्धीका कार्य भी विकृत होता है. रौप्य-भस्मके सेवनसे प्रथम साधक पित्त सुधर जाता है और बादमे बुद्धीका कार्य भी सुधरता है. इस तरह रौप्यभस्म 'मेध्य' है.

सूतिका ज्वरमें भी रौप्यभस्म देते है. ज्वर अधिक न हो, और शूल, सर्वांगमे पीडा, भ्रम, प्रलाप इत्यादि लक्षण अधिक हो तो रौप्यभस्मसे फायदा होगा.

रौप्यभस्म के गुणधर्म—

दोष—वात और वातपित्त

दूष्य—रक्त, मांस, अस्थि.

स्थान—मूत्रपिंड (वृक्क), सहस्रार, वातवाहिनी, नेत्र, स्नायु, उरस्, पचनेंद्रिय, जननेंद्रिय, मनोदेश और बुद्धि.

१२ लोहभस्म

प्रमाण १ से २ रत्ती

मुंडलोह, तीक्ष्णलोह (तिखु) और कान्तलोह, इन तीन प्रकारका लोह पाया जाता है. मुंडलोहकी अपेक्षा तीक्ष्णलोह शतगुण अच्छा

है और कान्तलोह तीक्ष्णलोहसे शतगुणा अच्छा है.[1] (इसलिए भस्म बनाने के लिए कान्तलोह लेना चाहिए.)

अशुद्ध और जिसका मारण नहीं किया है ऐसे लोहके सेवनसे जीवित्वकी हानि होती है और रोग पैदा होते हैं. हृदयमे पीडा, प्यास और जडत्व ये विकार होते है. इसलिए लोहका शोधन और मारण करना जरूरी है.[2]

लोहका शोधनः—

(१) केलाके खम्बेका रस निकालके उसमे, अग्नीमे तपा हुवा लोहा, सात वार डुवानेसे लोहा शुद्ध होता है.[3]

(२) खरगोशके खूनसे लोहेके पत्तेको लेप करके अग्नीमे खूव तपाना. इस प्रकार तीन वार करनेसे मुंड आदि सर्व जातका लोह शुद्ध हो जाता है.[4]

(३) त्रिफला ६४ तोला लेकर उसमे आठगुणा पानी डाल दो. उवलाकर चौथा हिस्सा वाकी रहनेके वाद, २० तोला लोहेके पत्ते लेकर गर्म करो. गर्म पत्तोंपर ऊपर लिखा हुवा त्रिफलाका काढा डाल दो. इस तरह सात वार करनेसे लोहमेंसे खानके दोष नष्ट हो जाते हैं. लोह शुद्ध होता है.[5]

(४) तीनो प्रकारका लोह अलग अलग लेकर उसका चूर्ण छ-गुणा गोमूत्रमे पकानेसे और कांजीसे धोनेसे शुद्ध हो जाता है.[6]

(५) लोहेके पत्तेको नमक का लेप करके उनको अग्नीमे तपाकर त्रिफलाके काढ़ेमे डुवानेसे, उनमे मिले हुवे खान के दोष नष्ट हो जाएंगे[7]

---

१ मुंडं तीक्ष्ण तथा कान्तमिति लोहं त्रिधा स्मृतम् ।
मुण्डाच्छताधिकं तीक्ष्णं तीक्ष्णात्कान्तं शताधिकम् ॥ यो र

२ अशुद्धममृतं लोहमायुर्हानिरुजाकरम् ।
हृत्पीडां च तृषां जाड्य तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ र र

३ तप्तानि सर्वलोहानि कदलीमूलवारिणा ।
सप्तधा त्वभिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम् ॥ र सा स.

४ शशक्षतजसंलिप्तं त्रिवारं परितापितम् ।
मुण्डादि सकलं लोहं सर्वदोषान्विमुञ्चति ॥ र र

५ त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडश पलं ।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम् ।
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवाराणि सेचयेत् ।
एवं प्रलीयते धातुर्गिरिजो लोहसभव ॥ र र.

६. त्रिविधं लोहचूर्णंवा गोमूत्रे षड्गुणे पचेत् ।
प्रक्षालयेदारनाले शोध्यं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ र र.

७. समुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु ।
त्रिफलाक्वथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ र. र स.

(६) इमलीके काढ़ेमे लोहेके पत्ते एक प्रहर तक पकानेसे शुद्ध होते हैं. अथवा गोमूत्र और त्रिफलामे थोडी देर तक पकानेसे शुद्ध होते हैं.[१]

लोहेकी भस्म वनानेकी रीतः—

(१) तीक्ष्ण लोह का चूर्ण लेकर उसमे उसके वजनसे बारहवा हिस्सा (१/१२) शुद्ध हिंगूल (सिंगरफ) मिलाकर घीगुवारके रसमे दो प्रहर तक घोंटना. फिर कटोरेमे रखके कपडामिट्टीसे लपेटकर गजपुट देना. इस तरह सात पुट देनेके बाद लोहकी भस्म वन जाती है.[२]

(२) तेंदूके (या नीमूके) फलमेसे गूदा लेकर उससे लोहेके पत्तेको लेप करो, फिर कांसेके बरतनमे रखकर धूपमे रक्खो. इस तरह एक दिनभर अच्छी तरह धूप देना. बार बार उन पत्तेको तेंदूके फलके या नीमूके फलके गूदेसे लेप करना. और शामको उन पत्तेको निकाल कर त्रिफलाके काढेमे घोंटना. इस तरह लोहभस्म तैयार हो जाती है.[३]

(३) शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग लेकर उनकी कज्जली वनाओ. कज्जलीके वजनके समान लोहचूर्ण उसमे मिलाकर घीगुवारके रसमे दो प्रहर खरल करो. फिर उसका एक गोला वनाके तांबेके बरतनमे रखकर ऊपर अंडीके पत्तोंसे ढाक दो. एक घंटेमे वह अपनेआप गरम हो जाता है. फिर वह बरतन धान्यके अंदर रख देना. और तीन दिनके बाद निकालकर लोहचूर्ण घोंटना और कपडेसे छान लेना. यह भस्म वारितर होती है. (पानीके उपर तैरती है.)[४]

---

१ चिंचाफलदलक्काथादयो दोषमुदस्यति ।
यद्वा फलत्रयोपेतं गोमूत्रे क्वथितं क्षणम् ॥ र. र. स.

२. द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णं चूर्णेन मेलयेत् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुटेत् ॥
पुटेदेवं लोहचूर्णं सप्तधा मरणं व्रजेत् ॥ र. म.

३. तिंदू (निंबू) फलस्य मज्जायां लोहं क्षिप्त्वातपे खरे ।
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन स्फुटत्यलम् ॥
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेषयेत् ।
त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं दिनैकेन मृतं भवेत् ॥ र. म.

४. शुद्धं सूतं द्विधा गंधं कृत्वा खल्वे तु कज्जलीम् ।
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवै ।
यामद्वयात्समुद्धृत्य तद्गोल ताम्रपात्रके ।
आच्छाद्यैरंडपत्रैश्च यामार्धेनोष्णतां व्रजेत् ।
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात् त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ।
संपिष्य गालयेद्वस्त्रे सद्यो वारितरं भवेत् ।
कांतं तीक्ष्णं तथा मुण्डं निरुत्थं जायते मृतम् ॥ र. र.

(४) तीनो प्रकारके लोहेके, इमलीके पत्तेके माफिक छोटे और पतले, पत्ते बनावो. मिट्टीके कटोरेमे रखकर उनके उपर दंतीके पत्तोंका रस डाल दो. और एक प्रहर तक धूपमे रखो. सूख जानेपर फिर दंतीके पत्तोंका रस डाल दो. इस तरह भस्म बन जाने तक बार बार करना चाहिए.[१]

(५) शुद्ध सोनामांखी, शुद्ध मनसिल, हल्दी और पीसी हुई काली मिर्च इनका खट्टे नीमूके रसमे खरल करके उससे लोहेके पत्ते को लेप करना. फिर उनको अग्नीमे तपाकर त्रिफलाके काढेमे सात बार बुझाना, फिर पानीसे अच्छी तरह धोकर उनका चूर्ण करना, फिर वह चूर्ण त्रिफलाके काढेमे घोंटना और चूर्णके वजनका $\frac{1}{16}$ भाग शुद्ध सोनामांखी और शुद्ध मनसील नीमूके रसमे घोंटकर मिट्टीके कटोरेमे प्रथम रखकर उसके ऊपर चूर्ण डालना और फिर सोनामांखी मनसील मिश्रण ऊपर रखना. दूसरे कटोरेसे ढक कर गजपुट देनेसे कांत, तीक्ष्ण और मुंड लोहकी निरुत्थ भस्म बन जाती है.[२]

(६) लोहाके चूर्णके समान शुद्ध गंधक लेकर दोनो घीगुंवार के रसमे घोंटकर उनका एक गोला बनाना वह लोहे के बरतनमे रखकर छायामे रख देना, कुछ दिनोंके बाद लोहकी भस्म बन जायेगी.[३]

(७) लोहाका चूर्ण ४ तोला, सूर्याखार सोरा ४ तोला, शुद्ध गंधक ४ तोला घीगुंवार के रसमे एक दिन घोंटकर एक गोला बनाना. ऊपरसे अंडीके पत्तोंसे लपेटकर गीली मिट्टीसे लपेटना. गजपुट देना.

---

(१) चिंचापत्रनिभं कुर्यात् त्रिविधं लोहपत्रकम् ।
सृत्पात्रस्थं क्षिपेद्धर्मे दन्त्या द्रावै प्रपूरयेत् ।
पात्रं पुन पुनस्तावद्यावज्जरति वै त्वय ।
म्रियते तीव्रघर्मेण चूर्णीकृत्य नियोजयेत् ॥

(२) माक्षिकं च शिला ह्यम्लैर्हरिद्रामरिचानिच ।
पिष्ट्वा मर्द्य लोहपत्रं तप्तं तप्तं निषेचयेत् ॥
सप्तधा त्रिफलाक्काथजलेन क्षालयेत् पुन ।
कुट्टयेल्लोहदंडेन पेषयेत्त्रिफलाजले ॥
षोडशांशेन लोहस्य दातव्य माक्षिकं शिला ।
अम्लेनालोडितं रुद्ध्वा गजांधकपुटे पचेत ॥
निरुत्थं जायते भस्म कान्ततीक्ष्णादि मुण्डकम् ॥ र र

(३) लोहचूर्णसमं गंधं मर्दयेत्कन्यकारसै ।
पिण्डीकृतं लोहपात्रेच्छायायां स्थापयेच्चिरम् ।
म्रियते नात्र संदेहो .. र. प्र. सु.

ठंडा होनेके वाद सिंदूरके समान लाल रंगकी लोहभस्म वन जायेगी. यह वारितर होती है और सर्व औषधियोंमे ले सकते है. [१]

(८) शुद्ध लोहाका चूर्ण तेंदूके कच्चे फलके रसमे एक दिनभर घोंटना. फिर त्रिफला, भंगरा और भटकटैया के रसोंसे तीन भावना देना. प्रत्येक भावनाके वाद अग्निपुट देना, इससे उत्तम लोहभस्म वन जाती है. [२]

(९) तीक्ष्णलोहका चूर्ण और गौके दूधका दही एक वरतनमे घोंटना, जवतक सूख जाय. फिर अग्नीमे गरम करके, त्रिफला के काढ़ेसे तीन भावना देना. इस रीतसे वारितर लोहभस्म जल्द वन जाती है. [३]

(१०) लोहचूर्णमे उसके समान वजनका नौसादर मिलाना, यह मिश्रण गरम पानीमे भिजाकर कपड़े मे बांधकर रख दो. एक प्रहर के वाद वह गठडी हाथपर जोरसे घांसो. इससे अच्छी लोहभस्म वन जायेगी. [४]

(११) लोहका चूर्ण अग्नीमे खूब गरम करके त्रिफला के काढ़ेमे सात वार बुझानेसे शुद्ध हो जाता है. शुद्ध होनेके वाद त्रिफला का काढा, अनारके फूलोंका रस, अनारकी छालका काढा और आमला का रस, ये वार वार उस चूर्णमे डाल देना. और अग्निपुट दे कर कूटना और कपडेसे छान लेना. फिर कुछ भी खट्टा या तुरट रस उसमे

---

(१) लोहचूर्णपलं खल्वे सोरकं च पलं तथा ।
अच्छं गंधपलं चापि सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
कुमार्यद्भिर्दिनं कुर्याद् गोलकं ऋबुपत्रकैः ।
संवेष्ट्य च मृदा लिप्तं पुटेद्गजपुटे भिषक् ॥
स्वाङ्गशीतं समुध्दृत्य सिंदूराभमयोरज ।
मृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकरं परम् ॥ आ प्र.

(२) संशुद्धं लोहचूर्णं तु समानीय भिषग्वर ।
अपक्वतिंदुकफलरसै संमर्दयेद्दिनम् ॥
त्रिफलाभृंगराजस्य कंटकारीरसस्यच ।
पुटानि त्रीणि दत्तानि सत्यं वारितरं भवेत् ॥ आ प्र.

(३) गृहीत्वा तीक्ष्णजं चूर्णं तथैव च गवां दधि ।
एकत्र कारयेद्भाण्डे यावच्छोपत्वमाप्नुयात् ॥
उद्धृत्य गालयेदग्नौ त्रिफलाया पुटत्रयम् ।
देयं वारितरं सद्यो जायते नात्र संशय ॥ यो र.

(४) एकभागं लोहचूर्णं तत्समो नवसागरः ।
किंचित्तप्तोदकं ग्राह्यं सर्व वस्त्रे निबध्यच ।
यामान्ते घर्षयेत्पाणौ सद्यो वारितरं भवेत् ॥ यो. र.

डाल देना. इस तरह लोहाके छोटे छोटे टुकडोंका चूर्ण वन जाता है. इसके वाद हाथियाके पत्ते, धत्तूरेके पत्ते, पुनर्नवा, दूर्वा, घीगुंवार, आमला, जामून और नीमू इनके रसोंसे प्रत्येक सात २ वार भावना देना. इसके वाद फिर-अनारकी छाल, वडके पारंव (डाढ़ी), त्रिफला, जामूनकी छाल इनके काढे वनाके उनसेभी सात २ वार भावना देनेसे अत्युत्तम लोहभस्म वन जाती है.[1]

(१२) लोहचूर्णमे अनारके पत्रोंका रस डालकर धूपमे सुखाना इस तरह सात भावना देनेके वाद दो गजपुट देना. इस रीतसे वढिया लोहभस्म तैयार होती है.[2]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

लोहं जंतुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामय- ।
स्थौल्यार्शोग्रहणीज्वरार्तिकफजित् शोफप्रमेहप्रणुत् ॥
गुल्मप्लीहविषापहं वलकरं कुष्टाग्निमांद्यप्रणुत् ।
सौख्यालम्बि रसायनं मृतिहरं कांतादिकं किट्टवत् ॥ र. र. स.

मृतानि लोहानि रसीभवन्ति विघ्नन्ति युक्तानि महामयानि ।
अभ्यासयोगाद्दृढदेहसिद्धिं कुर्वन्ति रुग्जन्मजराविनाशम् ॥ र. र. स.
मुंडं परं मृदुलकं कफवातशूलसूलाममेहगदकामलपाण्डुहारि ।
गुल्मामवातजठरार्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि ॥ र. र. स.
रूक्षं स्यात्खरलोहकं सुमधुरं पाकेऽथ वीर्यें हिमम् ।
तिक्तोष्णं कफपित्तकुष्ठजठरप्लीहामपाण्ड्वार्तिनुत् ॥
सद्यः शूलयकृद्क्षयजरामेहास्रवातापहम् ।
दीप्तं चातिरसायनं वलकरं दुर्नामदाहापहम् ॥ र. र स.
कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदम् ।
स्निग्धं मेदहरं त्रिदोषशमनं शूलासमूलापहम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनुत् ।
तिक्तोष्णं हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ॥ र. र. स.
कान्तायः कमनीयकान्तिजननं पांड्वामयोन्मूलनम् ।
यक्ष्मव्याधिनिवर्हणं गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ।
नानाकुष्ठनिवर्हणं वलकरं वृष्यं वयःस्तम्भनम् ।
सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नापरम् ॥ र. सिं.

---

१. वृद्धवैद्याधार.
२. दाडिमीपत्रजरसैर्लोहचूर्णं च भावितम् ।
आतपे सप्तधा तेन पुनर्गजपुटद्वयम् ।
इत्थं कृतं च तद्भस्म शुद्धं वारितरं भवेत् ॥ यो र.

निरुत्थ लोहभस्म की यह एक परीक्षा है कि आमलेपर डालनेसे उसका रंग बदलता नहीं. भस्म निरुत्थ न हो तो आमलेपर काला रंग आ जाता है.

अछी तरह बनी हुइ लोहभस्मका रंग लालसर और किंचित कालासा रहता है.

प्रथम लोहभस्मके सर्वसाधारण गुणधर्म लिखेंगे और बाद तीनो प्रकारके लोहभस्मोंके अलग अलग विशेष गुणधर्म लिखेंगे. पांडुरोगमे लोहभस्म यह एक पुराने जमानेसे अजमाया हुवा इलाज है. कौनसाही वैद्यक शास्त्र लो, उसमे पाण्डुरोगके चिकित्साके लिए लोहका उपयोग किया है. पाण्डुरोग का कारण कुछभी हो, उसके सब रोगिओंमे एक बात पायी जाती है. वह यह है कि खूनमेसे रक्त परमाणु कम होते जाते है और कभी कभी श्वेत परमाणु बढ़ते जाते है. नतीजा यह होता है की खूनका और चमडीका रंग पीला सा बन जाता है. इसी वजह इस रोगको पांडुरोग कहते है.कभी कभी यह लक्षण थोडे दिन रहता है और खून फिर लाल रंगका होता है.रक्तपरमाणु नये बन जाते है. किंतु बहुतसे रोगिओंमे यह फीकापन कायम रहता है. रोगीकी चमडीभी पीली पड जाती है, चमडीके ऊपर सूजन आती है और वह सूख जानेसे उस पर छाले भी पड जाते है. रक्तमे जो रंजक पित्त रहता है उसका नाश होनेसे पांडुरोग पैदा होता है (रञ्जकस्य च पितस्य नाशोऽयं परिकीर्तितः ।) इस प्रकारके पाण्डुरोगमे लोहभस्मसे बहुत फायदा होता है. लोहभस्मके सेवनसे रक्त परमाणु बढ जाते हैं. रक्तका पतलापनभी कम होता है. पांडुरोगके अनेक प्रकारोंमे पित्तज पांडु और हलीमक, इन दोनोंमे लोहभस्म अधिक लाभ पहुँचाती है.

कृमिजन्य पांडु विकारमेंभी प्रथम दूसरी कृमिघ्न औषधियां देनी चाहिए और बाद लोहभस्मभी देनी चाहिए. आंतोमे कभी कभी बिल्कुल छोटे २ कीडे होनेके कारण पांडुरोग उत्पन्न होता है. इस तरहके पांडुरोगमे लोहभस्म, और लोहभस्मके साथ वायविडंग और अजवाइनका अर्क देनेसे बहुत फायदा होता है.

वातवाहिनिओंके या स्नायु कंडरा आदिओंके संकोचसे या दूसरे वातविकारोंसे सर्व शरीरमे पीडा होती है. इसमे कांतलोहके भस्मसे आराम हो जाता है. रक्तस्राव अधिक होनेसे नसोंमे, सिरमे या दूसरे इंद्रियोंमे दर्द होती है, जी घबराता है और सिर सुन्नसा हो जाता है. इन लक्षणोंमेभी लोहभस्म गुणकारी है. प्रथम रक्तपित्तका विकार और पश्चात् इन लक्षणोंका उपद्रव हो तो रक्तचंदन आदि

औषधियोके काढेके साथ लोहभस्म देनी चाहिए. या चरकसंहितामे लिखा हुआ लोहासव-भी अधिक कार्य करेगा.

पित्तका विकार, आँखोका आना, हाथपैर और मुँहपर एकदम पसीना आना, प्रथम सुर्खी और इसके बाद घबराट और फीकापन, सर्व शरीरमे जल्द और जोरसे नाडिओंका चलना, जी मचलाना, हृदयका धुकधुक करना, हृदयकी गति जल्द, नाडी भी जल्द और जोरदार, चमडी स्पर्श करनेसे गरम लगती है इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्म देनेसे त्वरित गुण पाया जाता है.

पित्ताशयमे खूनकी कमताईसे पित्तका स्राव कम होनेसे या दूसरे कारणोंसे पित्तका प्रमाण कम होनेसे, पेटका फूलना, बार बार डकारे आना, खट्टी डकारे आना कै और कैके साथ बदबू या खराब और चिकणा पदार्थ गिरना, इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्मका बहुत उपयोग होता है.

अतिसार या ग्रहणीके विकारमे पक्वाशय और ग्रहणीकी अशक्तता होती है. बडेबडे और विना परिश्रम दस्त आते है. दस्तमे खट्टी बदबू होती है. दस्तका रंग सुफेद या पानीमे आटा मिलाया जैसा नजर आता है. इस प्रकारके अतिसारमे आंतोंको ताकत देने के लिए लोहभस्म देनी चाहिए. संग्रहणीके विकारमेभी रोगी अशक्त और दुबलापतला हुआ हो तो ताकद बढानेके लिए लोहभस्म देना योग्य होगा.

खूनी बवासीरकी प्रथम अवस्थामे लोहभस्म देनेमे धोका है. किंतु पित्तज या वातज अर्श (बवासीर) के विकारमे शुरूसेही शक्तिपात हुआ हो तो लोहभस्म देनेसे फायदा होगा. खूनी बवासीरमेंभी आखिरमे-जब खून ज्यादा गिरा हो-हृदयमे पीडा, सूजन, पीलापन, इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्मसे आराम मिलता है. इस अवस्थामे कांतलोहकी भस्म अधिक काम देती है.

लोहभस्म कषायरसात्मक होनेके कारण कफ विकारकोभी हटाती है. इसमेभी पांडुना (पीलापन) का लक्षण होना चाहिए. हृदयमे पीडा और उसके साथ साथ श्वासका विकार हो तो लोह-भस्मसे जरूर फायदा होगा. पित्तप्रधान तमकश्वासमे भी लोहभस्मका असर अजमाया गया है. कभी कभी श्वासके विकारमें छाती भर जाती है, जी घबराता है. नाडी कठिण होती है, और मूँह फीका पड जाता है. इस विकारमेंभी लोहभस्म देनेसे बहुत लाभ होता है.

थंडीबुखार वहूत दिन रहनेसे टिल्ली (प्लीहा) बढ जाती है. इस विकारमे किनाइन वहुत प्रकारसे और वहूत दिनोंतक दिया गया हो, तो किनाइनका शरीरपर खराव असर हो जाता है. घवराट, श्वास, मुँहपर सूजन, फीकापन, बहरापन इत्यादि लक्षणोंमे लोहभस्म वहुत उपकारक है. जिनको लोहभस्म सहन न होगी उनको सुवर्णमाक्षिक-भस्म देनी चाहिए. प्लीहावृद्धी के विकारमे फीकापन अधिक हो तो लोहभस्मसे आराम होगा.

सर्वांगशोफके विकारसे (सर्व शरीरपर सूजन) लोहभस्म यह एक उत्तम दवा है. इस विकारमे सर्व शरीरपर चमडीके अंदर पानी जम जाता है. इसका संचय इतना होता है कि सूजन सा मालूम होता है और चमडीपर उंगलीसे दवावें तो एक गड्ढा पड जाता है और वह दो चार मिनटसे भर आता है. फीकापन अधिक होता है, घवराट होती है. मुँह सूख जाता है. सर्व शरीरकी नाडिया जोरसे चलती है. अशक्तता इतनी होती है कि वोलनेमेभी तकलीफ होती है और श्वास चढता है. पेशाब मामूली होता है किंतु मूत्राशयकी अशक्ततासे रोगी उसको वाहर नही निकाल सकता. इस प्रकारके सर्वांगशोफमे यकृत् और प्लीहा बढ गयी हो तो ताम्र और लोह इनका संयुक्त कल्प देनेसे वहुत लाभ होगा.

पचनक्रियाकी नाताकतीसे या धातुपरिपोषणक्रमके विगाडसे शरीरमे सेन्द्रिय विषार रह जाते है. लोहभस्मके सेवनसे ये विषार नष्ट हो जाते है.

पित्तजन्य और कफजन्य मेहके विकारमेंभी लोहभस्म दे सकते है. मेहरोगमे जो नाताकती होती है वह इससे हट जाती है. मेहके विकारमे वार २ पेशाव न हो किंतु हर वख्तपर बहुत पेशाब आता हो और साथ २ चमडीपर फीकापन वगैरा लक्षण हो तो उस प्रकारके प्रमेहमे लोहभस्मके सेवनसे अवश्य फायदा होगा. किंतु पेशाव बार-बार होता हो, चमडी चिकणी और पसीनेसे लिपटी हुई हो तो जसद-भस्मके सेवनसे आराम मिलेगा.

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृत्वृद्धि इन विकारोंमेभी रक्त परमाणुओंकी कमताईसे फीकापन अधिक हो तो लोहभस्म, मंडूरभस्म या कांतलोहभस्म देनी चाहिए.

भयानक और चिरकारी विकारोंसे बच जानेपर रोगिओंको अशक्तता आ जाती है. ताकद कम होती है, खून पहलेके माफिक ताजा नही रहता और मांसभी बढता नही. भयानक विकारके साथ

झगडनेसे और दोषोंको निकालनेकी कोशिस और मेहनतसे शरीरके सर्व इंद्रिय और धातू दुर्बल हो जाते है. इसका असर शरीरपर होनेसे, शरीरभी दुबलापतला हो जाता है. लोहभस्मके सेवनसे यह दुबलापन जल्द हट जाता है. विशेषतः खूनकी खराबीसे यह दुबलापन उत्पन्न हुवा हो तो लोहभस्मसे आराम होगा. इस तरह लोहभस्म बलवर्धक है.

कुष्ठ (कोड) के विकारकी उपपत्ति आयुर्वेदके शास्त्रमे लिखी है कि तीनो दोष (वात, पित्त, कफ), चमडी, खून, मांस और अम्धातु इन सात द्रव्योंकी खराबीसे कुष्ठ उत्पन्न होता है. इस प्रकारकी उपपत्ति होनेसे दोष और धातु इनमेसे किसकी विकृति और कितनी विकृति हुई है यह देखभाल कर रोगीके लिए औषधीयोजना करना पडता है. इन सब प्रकारोंमे जिसमे पित्तप्रधान दोष हो और रक्त और त्वचा (चमडी) इनकी विकृति हो गयी हो उसको लोहभस्मसे अधिक फायदा होगा. इस अवस्थामे विशेषतः नीचे लिखे हुए लक्षण नजर आते है. चमडीमे प्रदाह और सुर्खी, छोटे छोटे पानीके बूंदके माफिक फोडे आना. उनमेसे चिकरण और पानीके माफिक स्राव निकल आता है. फोडे कभी कभी पकते और फूटते हैं. उनमे बदबू होती है, चिकरणाई ज्यादा रहती है और कभी कभी अंगुलियोंके उपरसे चमडीभी निकल आती है. इस तरहके लक्षण पित्तप्रधान कुष्ठविकारमे होते है. इसमे जो घाव होते है उनका रंग कालासा या सुर्ख होता है. चमडीपर छोटे छोटे फोडे होते है, खुजली और जलनभी ज्यादा होती है. इस विकारमे लोहभस्म और त्रिफलाचूर्ण या दूसरे कुष्ठनाशक औषधी योग देना चाहिए. कुष्ठ विकारमे प्रथम जिस दोषकी दुष्टि अधिक हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए. और साथ २ या इसके बाद कुछ दूसरे दोषका अनुबंध रह गया हो तो उसके शमनके लिए योजना करनी चाहिए. इस नियमके अनुसार प्रथम पित्तदोषकी चिकित्सा करनेसे कुष्ठरोगमे आराम रह सकता है.

लोहभस्म यह एक रसायन है. याने इसके सेवनसे रसआदि प्रसाद धातु बढ जाते है. इसका सेवन भी रसायन विधान से करना चाहिए. शुरू से कम प्रमाण लेकर बादमे धीरे २ प्रमाण बढाना और फिर धीरे २ कम करना इस रीत को रसायन विधि करते है. शिलाजीत, अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म या त्रिफला इनके साथ भी लोहभस्म दे सकते है.

सर्व प्रसाद धातुओंके लिए, उनके काममे आनेवाले द्रव्ययोग्य प्रमाणमे और योग्य समयपर पहुंचाने का प्रमुख कार्य रक्त धातुसेही हो सकता है. इस धातुमेसे रक्तकण और तांतव द्रव्य ये दोनो इस पोषण के लिए काममे आते है. रक्त धातूमे जो पांचभौतिक द्रव्य रहते है उनका भी शरीरके पोषणके लिए उपयोग होता है. इस विचारसे लोहभस्म शरीरके पोषण और मजबूतीके लिए योग्य औषध है. इसमे कुछ शक नहीं. ' लोहभस्मसे देहसिद्धि होती है ' यह कहना भी सच है.

कांतलोहभस्मः—कांतलोहभस्म के गुणधर्म प्रायः मंडूरभस्मके समान होते है. जिन विकारोंमे बच्चोंको मंडूरभस्मसे आराम होता है उन्ही विकारोंमे बडे पुरुषोंको कांतलोहभस्मसे फायदा नजर आता है नीरोगी पुरुषको कुछ विकार न होनेपर भी अशक्तताका ख्याल हो तो उसे कांतलोहभस्म देनी चाहिए. इसी वजह स्वस्थ–याने मन और शरीरसे नीरोग–आदमिओंको दीर्घायुष्य प्राप्त करानेके लिए कांतलोह भस्म यह एक उत्तम रसायन है. अपने आयुष्यको नदी की उपमा दे, तो यह कह सकते है कि जैसे नदीके प्रवाहके लिए पानी की जरूरत है इसी तरह आयुष्य के प्रवाहके लिए योग्य और प्रशस्त धातु इनका महत्त्व अधिक है. ये कांतलोहभस्म के सेवन से प्राप्त होते है. 'कान्त-लोहभस्म दीर्घ जीवित दे सकता है ' यह कहना योग्य है.

वातवाहिनी, सिरा या स्नायु इनके संकोच से उनकी जगहपर शूल (पडिा) उत्पन्न होता है. इसमे भी कांतलोहभस्मका उपयोग होता है, [यह शूल आमवात या वातरक्त से उत्पन्न हुवा हो तो महायोगराज गुग्गुल, आक्षेपक के समान हो तो वातविध्वंस, पैंठन के माफिक हो तो सूतशेखर और पित्तदोषप्रधान हो तो ताप्यादिलोह देनेसे लाभ होगा.]

कांतलोहभस्मसे अंडकोष को ताकद आती है. इसी लिएवह नपुंसकत्व और वीर्य की कमताईके विकारोंमे दी जाती है.

इसके सिवा सर्व प्रसाद धातु पुष्ट और स्वच्छ होनेसे शरीरका तेज बढता है. और शरीर बलवान होनेसे कृत्रिम विषार या सेन्द्रिय विषार अपना असर शरीरपर नही कर सकता, विशेषतः आंतोंका प्रथम भाग (कोष्ठ) सशक्त होनेसे विषका प्रतिकार करता है. इस लिए कांतलोहभस्मको, गर--हर याने ' विषार को नष्ट करनेवाली, ' कहते है.

मुंडलोहभस्मः-यह भस्म कांत या तीक्ष्ण लोह भस्मोंसे मृदु याने सौम्य है. इन दोनो भस्मोंके समान तीक्ष्ण नही है. इस लिए दुबले पतले आदमियोंको और सुकमार रोगिओंमे इसकी योजना करनी चाहिए. इससे उनको तकलीफ नही होगी.

कोष्ठगत शूल, आमजन्य शूल या खूनी बवासीरमे खून ज्यादा गिरनेसे जो शूल उत्पन्न होता है उसमे मुंडलोहभस्म से फायदा होता है.

प्रमेहके विकारमेभी कान्तलोहभस्मसे या दूसरे लोहके प्रकारोंसे तकलीफ होगी तो रोगीको मुंडलोहभस्मसे अधिक आराम रहेगा.

कामला (पीलिया) के विकारमे पित्त अच्छी तरह आशोषित नही होता और वह पित्त खून मे मिल कर खूनके स्वाभाविक रंगको बदल देता है. इस समय पित्ताशय बिगडा हुवा, अशक्त हो जाता है. चमडी, नाखून, पेशाब, ये सब पीले पड जाते है. इस विकारमे अशक्तता अधिक हो तो मुंडलोह भस्म देनी चाहिए.

आमवातके विकारसे बच जानेके बाद भी रोगिओंकी अशक्तता कायम रहती है. इसका कारण यह है कि आमवात जिससे पैदा होता है वह आम कायम रहता है. वह आम कायम रहनेका कारण भी पाचक अग्नि या पाचक पित्त की अशक्तता यह ही है. इस लिए पाचक अग्नीको सशक्त और कार्यक्षम करनेके लिए मुंडलोह देनी चाहिए मुंडलोहके सेवनसे अग्नि सशक्त होगा, आम नष्ट होगा और शरीरको ताकद आ जायेगी.

पाचक पित्तकी अशक्ततासे कोष्ठशूल और अग्निमांद्यके विकार उत्पन्न होते है इनमे भी लोहभस्मका उपयोग होता है.

दूसरे लोहभस्मों की अपेक्षा मुंडलोहभस्ममे यह एक खास बात है कि उनमे संग्राही गुण होनेसे दूसरे लोहभस्मोंके सेवनसे टट्टी सफा नही होती है. कब्जियत रहती है और बाज रोगियोंको तो बडी तकलीफ उठाना पडता है. किंतु मुंडलोहभस्मसे कब्जियत भी नही होती है और पतले दस्त भी नही आते है. इस कार्यको 'कोष्ठ शोधन' कहते है इसके माने यह है कि आंतोकी ताकद और हालचाल बढाके उनमेसे मल अच्छी तरह बाहर निकालनेका कार्य मुंडलोहभस्मसे होता है. इसलिए पांडुरोगी या अशक्त रोगीको कब्जियत की शिकायत हो तो मुंडलोहभस्म देना योग्य है.

दोष—पित्त, वात
दूष्य—रक्त, मांस, सामान्यतः सर्व धातु
स्थान—हृदय, यकृत, पचनेंद्रिय और ग्रहणी

---

१२ वंगभस्म (रांगाका भस्म)

रांगाको वंग कहते है. इसके खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकार होते है. खुरक जात का रांगा चंद्रके समान या चांदीके समान सुफेद और स्वच्छ होता है. उसका आकार उस्त्रेके माफिक होता है और इसके गुणधर्म सबसे श्रेष्ठ होते है.[1]

अशुद्ध और पूरा भस्म न बना हुवा रांगा सेवन करनेसे प्रमेह, गुल्म, हृद्रोग, शूल, बवासीर, खांसी, कै और श्वास इत्यादि विकार पैदा होते है. इसलिए रांगाका शोधन करना चाहिए और अच्छी तरह भस्म बनाना चाहिए.[2]

रांगाका शोधनः—

(१) खुरक जात का रांगा अग्नीमे पिघलाकर, हल्दीका चूर्ण मिलाये हुए निर्गुंडी (सह्मालु) के रसमे, तीन वार डालनेसे शुद्ध हो जाता है.[3]

(२) चूनेके पानीसे आधा प्रहर तक पकानेसे रांगा शुद्ध होता है.[4]

(३) रांगा अग्नीमे पिघलाकार सात २ वार तैल, छांछ और गोमूत्रमे डालनेसे शुद्ध होता है.[5]

वंगभस्म बनानेकी रीतः—

(१) शुद्ध वंग गरम करके उसमे चौथा हिस्सा आँगा का क्षार मिलाओ. कढाईमे एक बडे चमचेसे धीरे धीरे घोंटनेसे वंगभस्म बनना शुरू होता है. इस तरह जबतक सर्व रांगाकी भस्म बन जाय

---

१ खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वंगमुच्यते।
खुरकं श्रेष्ठमुद्दिष्टं मिश्रकं चावरं स्मृतम्।
खुरकं चंद्ररूप्याभं खुराकारं तु कीर्त्यते॥ आ. प्र.

२ अशुद्धमसृतं वङ्गं प्रमेहादिगदप्रदम्।
गुल्महृद्रोगशूलार्शः कासश्वासवमिप्रदम्॥ र. र. स.

३ द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्रं निर्गुण्डिकारसे।
विशुध्यति त्रिवारेण खुरवंगं न संशय॥ र. च.

४ वंगं चूर्णोदके स्विन्नं यामार्धेन विशुध्यति॥ र. च.

५ वृद्धवैद्याधार.

तबतक घोंटना चाहिए. फिर इसको अग्निमे इतना तपाना चाहिए कि वह सुर्ख हो जाय. तपानेके बाद भी उसके ऊपर एक मिट्टीका कटोरा रखके और ज्यादा अग्नि दिया जाय. इस तरहसे उत्तम वंगभस्म बन जाती है.[१]

(२) शुद्ध वंग और शुद्ध हरिताल समप्रमाणमे लेकर अकौआके रसमे खरल करना. फिर पीपलकी सूखी हुई छाल लेकर उसमे यह रखकर एक लघुपुट देना. इस तरह सात पुट देनेके बाद वंगभस्म तैय्यार होती है.[२]

(३) शुद्ध वंग कढाईमे रखके चूलेपर रख दो. अग्नीसे जब वह पिघल जाय तब प्रथम हल्दीका चूर्ण डालकर खूब घोंटना. फिर अजमोदा, जीरा, इमलीकी छाल इनके चूर्णसे अलग अलग वहही क्रिया करो. आखिरमे पीपलके छाल का चूर्ण डालकर घोंटो. इससे वंगभस्म बन जाएगी.[३]

(४) बोरेके कापड का एक टुकडा लेकर उसपर दो तीन इंच गाढा बबूलके पत्तोंका थर बिछाओ. उसके ऊपर रांगेके पतले पत्ते अलग अलग रखकर वह सब गद्लेके माफिक लपेटलो फिर रस्सीसे अच्छी तरह खींचकर बांधलो. फिर निर्वात स्थानमे रखकर उसको जलादो. बारह घंटेमे वह धीरे धीरे जलकर बुझ जाता है. फिर आस्तेसे रखडी अलग करके, बतासे के माफिक फूली हुई वंगभस्म

---

(१) आभीरं शोधयेदादौ द्रावयेद्धंडिकांतरे ।
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्तत ॥
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तदवचालयेत् ।
यावद्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यंच पूर्ववत् ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदगारवर्णकम् ।
नूतनेन शरावेण रोधयेदंतरे भिषक् ॥
पश्चात्तीव्राग्निना पक्व वंगभस्म भवेद् ध्रुवम् ॥ र म

(२) वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन त पुटेत् ।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कै सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ॥ र. म.

(३) वंगं खर्परके कृत्वा चूल्यां संस्थापयेत्सुधीः ।
द्रवीभूते पुनस्तस्मिन् चूर्णान्येतानि दापयेत् ॥
प्रथमे रजनीचूर्णं द्वितीये च यवानिका ।
तृतीये जीरकं चैव ततश्चिश्चात्वगुद्भवम् ॥
अश्वत्थवल्कलोत्थं च चूर्णं तत्र विनिःक्षिपेद ।
एवं विधानतो वंगं म्रियते नात्र संशय ॥ र. .

निकाल लो. फिर घीगुवारके रससे सात भावना देनेसे उत्तम वंगभस्म वन जाती है.[1]

(५) रांगा अग्नीमे पतला करके उसपर नाईके पत्ते डालकर उसका चूर्ण वनाओ. फिर नाईके पत्तोंके रससे तीन भावना देनेसे वंगभस्म तय्यार होती है.[2]

(६) शुद्ध रांगा अग्नीमे पतला करके उसका चौथा हिस्सा इमली और पीपलके छालका चूर्ण लेकर, वह थोडा थोडा डाल दो, और लोहेके चमचेसे घोंटो, जबतक वह चूर्ण खतम हो जाय. इस विधिसे छ घंटोंके अंदर वंगभस्म बन जाती है.[3]

ग्रंथोक्त गुणाधर्मः—

(१) वंगं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च कृमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ र. मं.

(२) वंगं लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफकृमीन् ।
निहन्ति पाण्डुकं श्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥

सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम् ।
देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ आ. प्र.
वङ्गं तीक्ष्णोष्णरूक्षं कफकृमिवमिजिन्मेहमेदोऽनिलघ्नम् ।
कासश्वासक्षयघ्नं प्रशमितहुतभुङ्मान्द्यमाध्मानदारि ॥
बल्यं वृष्यं प्रभाकृन्मनसिजजनकं सर्वमेहप्रणाशि ।
प्रज्ञाकृद्वर्ण्यमुच्चैरलघुरतिरसस्यास्पदं बृंहणं च ॥ आ. प्र.
बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलम् ।
सौंदर्यैकविवर्धनं हितकरं नीरोगताकारकम् ॥
धातुस्थौल्यकरं क्षयिक्षयहरं सर्वप्रमेहापहम् ।
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ॥ आ. प्र.

वंगभस्म का रंग सुफेद होता है या उसमे थोडी पीली झाँक रहती है.

वंगभस्मके गुणाधर्मोंका वर्णन ' वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः । " इस श्लोकमे बराबर पाया जाता है. यह श्लोक

(१) वृद्धवैद्याधार.

(२) वृद्धवैद्याधार.

(३) मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचो रज ।
क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥
ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ आ. प्र.

एकही सब गुणोंका ' अधिकरण सूत्र ' कहा जा सकता है. क्यों कि वंगभस्मके सर्व गुणधर्म इसी एक गुणधर्मके सहारे होते है. शुक्रकी अशक्तता और शुक्रस्थानकी अशक्तता प्रथम होनेसे जो कुछ दूसरे लक्षण पाये जाते है, इन सब लक्षणोंमे वंगभस्मका अच्छी तरह उपयोग होता है. इसके सेवनसे शुक्रस्थानकी शक्ति वढ जाती है और इसमे दुर्बलत्व हो तो वह नष्ट हो जाता है. इस दुर्बलत्वके कई प्रकार होते है. इन सब प्रकारोंमे मूलतः वातवाहिनिओंकी अशक्तता यहही एक कारण है. वातवाहिनिओंको या स्नायुओंको अशक्तता प्राप्त होने का कारण आत्मव्यभिचार (याने परमेश्वर की कृपासे हमे जो अत्युच्च शक्ति मिली है उसको हम अपने हाथसे गुमाते है) अथवा अधिक स्त्रीसंभोग यह ही है. इस कारणकी वजह वातवाहिनी और स्नायू इनको अधिक काम पडता है और वे दुर्बल बन जाते है. इसका नतीजा यह होता है कि मनमे स्त्रीके केवल विचारसे या स्त्रीका दर्शन होनेसे, या विषयभोगके चिंतनसे उनका वीर्यस्खलन होता है. स्वप्नमे स्त्रीसंभोग कर के या बिना संभोगके भी स्वप्नदोष हो जाता है. किंचित् उत्तेजनसे भी धातुस्राव होता है. इस प्रकारके रोगमे वंगभस्मके सेवन से बहुत फायदा होगा.

शुक्रस्खलनकी आदत कभी कभी रोगिओंमे बहुत दिनोंसे बनी रहती है. इस आदतसे रोगके लक्षण दिन दिन बढते जाते है. कई रोगिओंको पागलपन होतासा मालूम होता है तो कई सचमुच पागल बन जाते है. पुरुषाङ्गका उत्तेजित न होना अथवा हो तो शीघ्र शिथिल हो जाना, शरीर सूख जाना, कार्य करनेकी शक्तीका नाश, हृदयका धुक् धुक् होना, जीवनके बाबत हताश, हाथपैरोंका आक्षेप (कांपना), सुंदर स्त्री को केवल देखनेसेभी उनका चित्त इतना हैराण होता है कि जबतक उनका वीर्यस्खलन न हो, तब तक उनको आक्षेप आते है और मूँहसे सुफेद फेन आता है. इस हालतमे भी वंगभस्मसे आराम मिलता है. स्वप्नदोष और पेशाबमे वीर्य जाना भी बंद होता है.

तिक्त, उष्ण, रूक्ष, लघु, सर, तीक्ष्ण, गुरु, आदि वंगभस्मके गुणधर्म होते है. इनमेसे तीक्ष्णत्व, उष्णत्व आदि गुणोंसे वह वातविकारोंको नष्ट करता है. किंतु कभी कभी रूक्षत्व गुणके कारण वातकी वृद्धि भी होती है. गुरु याने भारी होनेसे, कभी कभी (विशेषतः कफ प्रकृतीके रोगिओंमे) भोजनका पाक अच्छी तरह नही होता.

" अखिल मेहघ्न " इस तरहका वंगका गुण शास्त्रमे लिखा है. किंतु प्रमेहके सर्व प्रकारोंमे इससे एकसा फायदा नही हो सकता. विशेषतः वातज प्रमेह विकारमे वंगभस्मका सेवन न करना चाहिये. सांद्रमेह, अच्छमेह, इक्षुमेह, हस्तिमेह इत्यादि विकारोंमे इससे अधिक फायदा होता है. बूरी संगतके कारण प्रकृति विरुद्ध वीर्यपात करनेकी आदत से जिनका शरीर निःसत्व बन गया है ऐसे आदमिओंको प्रमेहका विकार हुवा हो तो उनको वंगभस्मके सेवनसे जरूर लाभ होगा. प्रमेहकी उत्पत्ति शुक्रपात या शुक्रक्षय से हुई हो तो वंगभस्मके सेवनसे शुक्रस्थान की शक्ति बढ़ जाती है और प्रमेह का विकार भी हट जाता है.

बुढापेमे प्रकृतिधर्मसे बार बार पेशाब करनेकी इच्छा होती है और पेशावभी अधिक होता है. इसमेभी वंगभस्मसे फायदा होगा. बुढापेमे शरीर थक जाता है और साथ २ मूत्रपिंड, मूत्रवह स्रोतस और मूत्राशयभी थक जाते है, और बार बार पेशाव करनेकी इच्छा होती है. इसमेभी वंगभस्मसे फायदा होगा. जवानीमे धातुस्राव अधिक होनेसे यह विकार उत्पन्न हुवा हो तो भी वंगभस्मसे लाभ होगा. बुढापेमे वातकी वृद्धि अधिक होती है. इस वातका ख्याल रखकर वंगभस्मके साथ दूसरी वातनाशक दवाइयां देना जरूर है.

बस्तिमुखस्थ पिंड (गवीनी-प्रॉस्टेट) के विकारसे एक प्रकारका मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है. इसमे पेशाव करते समय उस जगहपर जलन होती है और लारके तन्तूके समान तारवाला पेशाव आता है. इसमेभी प्रथम अवस्थामे वंगभस्मसे फायदा होगा. किंतु विकार अधिक बढ गया हो तो वंगभस्मके सेवनसेभी कुछ आराम नही मिलता. इसमे शस्त्रक्रिया करके उस पिंडको निकालना जरूर है.

यह विकार कभी कभी प्रमेहके विकारके बाद भी होता है. वंगभस्म मेहनाशक होनेसे इसमेभी वंगभस्मका सेवन योग्य है. मेहके विकारमे सर्व दोष और मेद, मांस आदि शरीरके अवयव बिगड जाते है. इसमे धातुपरिपोषणक्रमके बिगाडसे शरीरमे मलद्रव्योंका संचय होता है. इन मलद्रव्योंको शरीरमेसे निकालने के लिए मूत्रकी अधिक उत्पत्ति होती है और बार बार पेशाव करनेकी इच्छा होती है. वंगभस्मके सेवन से शरीरके सूक्ष्म विभागोकी सूजन और सड़न कम होती है और मलद्रव्योंका संचय कम होनेसे पेशावभी कम होता है. मधुमेह के विकारमे वंगभस्मसे इतना लाभ नही होता, जितना नाग

भस्म से होता है. किंतु शुक्रपातके कारण मधुमेहका विकार उत्पन्न हुवा हो तो वंगभस्म और नागभस्मका मिश्रण देना चाहिए.

क्षय का विकार अधिक वढ़ गया हो तो वंगभस्मसे कुछ फायदा होगा. अधिक स्त्रीसंगम या वीर्यपातके कारण क्षयरोग हुवा हो तो वंग-भस्म जरूर देनी चाहिए किंतु यह न होनेपर भी छातीमे हलका पन, छाती-के ऊपर दावसा मालूम होता हो, बहुत खांसनेपर भी थोडासा पीला वलाम निकल आता और उसमे बदबू हो, तो वंगभस्मसे बहुत रोगियोंको फायदा हुवा हमने देखा है. इस प्रकारके रोग मे सड़न नष्ट करनेका वंगभस्मका गुण ध्यानमे रखना चाहिए. वंगभस्मके साथ मृग-श्रृंगभस्म और रससिंदूर मिलाकर अथवा छुटक देना चाहिए.

वंगभस्म कृमिनाशक है. कृमी (कीड़े) के कारण उत्पन्न होने-वाला ज्वर (बुखार) या हृदयका विकार या दूसरे रोग इनमे वंगभस्म देनेसे आराम होता है. कृमिजन्य ज्वर के लक्षण विषमज्वर के लक्ष-णोंसे कुछ मिलते है. कभी कभी संतत आदि विषम ज्वर और कृमिजन्य ज्वर इनमे पहचान (निदान) करना मुष्किल होता है. किंतु इसमे साथ साथ कृमीके लक्षण भी होते है. इसमे पेटमे दर्द, जी मचलाना, उलटी (कै), श्वास आदि लक्षण होते हैं. कभी कभी यह ज्वर ४०।४० दिनोंतक चालू रहता है. इसमे जो कृमि (कीडे) होते है वह लम्बे मामूली कीडेके माफिक नही होते, किंतु सूत जैसे छोटे या छोटे छोटे चपटे गांठदार टुकडे होते है. वंगभस्म देनेसे इस प्रकारके कीडे मर जाते है. प्रथम वे मूर्च्छित होते है या उनको योग्य द्रव्य खानेको न मिलनेसे वे मर जाते है. मर जानेके बाद भी वे टट्टीमे गिरते नही. इसलिए वंगभस्मके साथ अमलतासके फलका गूदा या सनायका काढा देना चाहिए. इससे वे कीडे बाहर निकल आते है.

वीर्यपतन करनेकी बूरी आदतसे आखिरको पण्डुरोगकी अवस्था प्राप्त होती है. कुछ भी काम करनेकी अनिच्छा. अग्निमांद्य (वदहज्मी) शरीर जीर्णशीर्ण और दुबला पतला बन जाता है. इस विकारसे सूजन या चमडीके अंदर पानी नही होता है. किंतु यह धातुस्राव की आदत शराव पीनेकी आदत जैसी महाभयानक होती है. इसकी संगत छोडना फिर मुष्किल हो जाता है, याने दिन दिन वढती जाती है. इसके साथ २ ऊपर लिखे हुए लक्षण भी वढते जाते है. इसमे जो फीकापन होता है वह रक्तके परमाणुओंकी कमताईसे नही होता वल्कि शुक्रधातूकी अशक्तताके कारण है. इसके माने यह है कि शुक्रधातूकी उत्पत्तीके लिए रक्त धातूकी शक्ति अधिक खर्च होती है..

इसमे वात वाहिनिओंको भी अधिक परिश्रम होते है. इस लिए वात-वाहिनिओंकी और खून की अशक्तता नजर आती है. चमडीका और सर्व शरीरका फीकापन नजर आता है. इस विकारमे नागभस्म या जसदभस्मसे कुछ भी फायदा नही होगा. केवल वंगभस्मसे यह रोग हट जाएगा. वंग, प्रवाल और माक्षिक मिश्रण भी दे सकते है. अथवा वंग शिलाजीत और लोह यह प्रयोग भी फलदायी होगा. कभी कभी इस विकारसे शुक्रपात इतना नही होता जितना केवल डरके मारे विकार बढता है, इसमे फीकापनभी कम रहता है. इसमे वंग, कांतलोहभस्म और ब्राह्मी देनेसे आराम होगा.

बहुत अधिक स्त्रीसंगम या वीर्यपातके कारण कभी कभी खांसी उत्पन्न होती है, और वह सूखी और बहुत कष्टप्रद होती है. खांसते खांसते चक्कर आती हैं इतनी कमजोरी रहती है. प्रथम सुजाक की बीमारी होनेके कारण भी इस तरहकी खांसी और दमा उत्पन्न होता है. इसमे भी वंगभस्म के सेवनसे बहुत फायदा होता है. सुजाक की बीमारी इससे नष्ट नही होगी किंतु शुक्रस्थानपर सुजाकका जो असर होता है वह वंगभस्मसे कम होगा.

वंगभस्म दीपक और पाचक होनेके कारण अग्निमांद्य (बदहज्मी) को नष्ट करता है. किंतु यह दीपन कार्य शंखभस्म या कपर्दिक भस्म, हींग या अजवाँइन, इमली नीबू या अम्लवेतस के समान गुणोंसे नही होता हैं. वंगभस्मका कार्य साक्षात् पाचक पित्तके गुण बढानेसे होता है. यह गुणवृद्धि भी प्रथम पित्तके पर कार्य होनेसे नहीं होती है. वंगभस्मका कार्य पित्तल (पित्तकारक) कहा जाता है, किंतु यह गुण जल्द नही नजर आता. यहाँतक हम देख चुके है कि वंगभस्म का कार्य प्रथम शुक्रस्थान पर होता है. शुक्रक्षयसे या वीर्यपतन अतिप्रमाणमे होनेसे सर्व शरीर और इंद्रिओंकी ताकद कम होती है. इसी वजह पचनेन्द्रियको भी अशक्तता प्राप्त होती है. इससे बदहज्मी होती है. यह बदहज्मी मामूली बदहज्मीसे बहुत कष्टदायक और भयानक होती है. इसमे अन्नसेवनकी इच्छाभी नहीं रहती है. थाली परसनेपर या केवल खाना पकते समय की खुशबूसे भी उनका सिर उठता है. हमने ऐसे कई रोगी देखे है कि वे अन्नकी खुशबू आनेपर रोने लगते है; इतना उनको अन्नका द्वेष रहता है. अन्नसेवन की अनिच्छा, विशेषतः भारी और अच्छा खुशबूदार अन्न न लेना यह लक्षण इस प्रकारके अग्निमांद्यमे रहता है. इसमे वंगभस्म देनेसे तुरन्त लाभ होगा.

इसी प्रकारके अग्निमांद्यमे कै (वान्ति) का उपद्रव हो या इस अग्निमांद्यके वाद कै का विकार हो तो वंगभस्मसे फायदा होता है. पेटमे मांसावुंद (Cancer) नामका विकार होता है, इसमे भी कै होती है. इसमे वंगभस्मका उपयोग होता है.

वंगभस्मके सेवनसे मांसावुंद का विघ्न कम होता है. मांसावुंदके विकारमे वंगभस्मका प्रयोग देखना चाहिये. आयुर्वेदके ग्रंथोंमेसे दो औषधिया इस विकारपर फायदा कर सकेंगी—एक वंगभस्म और दूसरी ताम्रभस्म. ताम्र का कार्य तीक्ष्ण होनेसे कफप्रधान या कफवात-प्रधान विकारोंमे इसका उपयोग करना योग्य है. दूसरे दोषोंसे उत्पन्न हुए मांसावुंदमे वंगभस्म देनी चाहिए. मांसावुंदमे रक्तवाहिनिओंकी विकृति होती है और वह वंगभस्मके सेवनसे सुधर जाती है. नाग-भस्मभी इस विकारमे कुछ लाभदायक है.

प्रकृतिविरुद्ध वीर्यपात करनेकी आदत वंगभस्मके सिवा दूसरे दवाईसे कभी कम नही होती. इस आदत का नतीजा यह होता है कि दिन दिन यह वढतीही जाती है, जैसी शराव पीनेकी आदत. अग्नीमे घी डालनेसे वह कभी बुझेगा नही, किंतु वढताही जाएगा. इसी तरह यह आदत वढती जाती है. वंगभस्मके सेवनसे यह वढना कम होता है और इस आदतका मूल जो मनकी चंचलता वह भी कम होती जाती है. शुक्रस्थानकी और जननेन्द्रियोंकी ताकद वढ जानेसे, उनकी चंचलता कम होती है.

प्रकृतिविरुद्ध वीर्यपातके वाद या स्त्रीसंगके वाद कभी कभी एकदम शक्तिपात होता है और इस समय वंगभस्म सेवन करे तो फिर उत्साह वना रहता है. इसका अर्थ यह नही की वंगभस्म वीर्योत्तेजक है. किंतु इन्द्रियोंकी नाताकती कम होती है.

इसी गुणके कारण वंगभस्मको 'वृष्य' मानते है. अतिशयित वीर्यपात होनेपर चेतना नष्ट हुई हो और नपुंसकत्व उत्पन्न हुवा हो तो वंगभस्म देना जरूर है. इससे चेतनाभी प्राप्त होगी और कुछ दिनोंतक सतत सेवनसे पुरुषत्वभी प्राप्त होगा.

कभी कभी रोगिओंका मन स्त्रीसंगसे प्रतिकूल होता है. स्त्री-संगकी इच्छाही नही होती है. इसके माने यह नही के उनमे पुरुषत्व कम होता है. पुरुषत्व होनेपरभी उनकी इच्छा कम रहती है. कभी कभी वृषणोंकी या दूसरे जननेन्द्रियोंकी वृद्धि अच्छी तरह न होनेसे यह कमताई देखनेमे आती है. इसमेंभी वंगभस्मसे जरूर लाभ होगा.

वंगभस्मसे शुक्रस्थान और शुक्र धातु इनकी ताकद बढनेसे शुक्र-स्थान सुदृढ वनता है और शुक्रधातूकी पैदाइश सम और योग्य तरह होती है. इससे दूसरे धातुओंकी वृद्धि होती है. शरीरमे सर्व धातु पुष्ट होनेसे सर्व शरीरपर तजेला नजर आता है. शुक्र धातूका कार्य वलवृद्धि और बुद्धिकी भी शक्ति वढानेका है. इसकी वजह सर्व इंद्रियोंकी (और मन की) शक्ति वढती है. धातु और इंद्रियोंकी नीरोगतासे शरीरका वर्णभी सुधरता है और वह मजबूत और सुंदर हो जाता है, और दिमाग तेज होता है और स्मृति वढती है.

मवाद उत्पन्न करनेवाले जंतुओंपर (सूक्ष्म कीडोंपर) वंगभस्मका 'जंतुघ्न' कार्य अच्छी तरह असर करता है. घाव या व्रणमेसे पीला और गाढा मवाद निकल आता हो तो व्रणके ऊपर व्रणरोपक पट्टी लगानेसे और पेटमे वंगभस्म देनेसे जल्द फायदा होगा.

शुक्र धातूके दो कार्य होते है. गर्भकी उत्पत्ति और बुद्धीकी ताकद वढाना. शुक्रधातूकी उत्पत्ति रोजाना होती रहती है. बच्चोंमे यह नही होगा किंतु पूरी उम्रवालों (जवानों) के लिए यह बात सच है. उनमे रोजाना शुक्रधातु बनती रहती है. वह आदमी विवाहित हो तो कभी कभी शुक्रका उपयोग गर्भकी उत्पत्तीके लिए होता है. किंतु बहुतसा बचता है. इस बचे हुए शुक्रका शरीरमे क्या कुछ भी उपयोग नही है? शुक्रका शरीरमे दूसरा कुछ भी उपयोग न हो तो वह शरीरमे संचित हो कर शरीरको नुकसान पहुंचायेगा. किंतु इस दुनियामे बेकाम वस्तु पैदाही नही होती है. जो शुक्र शरीरमे बच जाता है वह बुद्धि, मेधा और स्मृती को बढाता है. शुक्ररक्षणसे शरीरको यहही लाभ है. शुक्रक्षयके साथ २ बुद्धीका दौर्बल्य नझर आता है. वंगभस्मके सेवनसे इसी प्रकार शुक्रस्थान की शक्ति और शुक्रकी पैदाइश बढनेके बाद, ऊपर लिखे हुए कारणसे बुद्धि और प्रज्ञा वढती है.

स्त्रियोंके जननेन्द्रियोंके विकारोंमेभी वंगभस्मका उपयोग होता है. अंडकोश (या फलकोशवाहिनिओं) की अशक्ततासे स्त्रियोंके जननें-द्रियोंको अशक्तता प्राप्त होती है और उनका मासिक धर्मभी नियमसे नही होता. इस विकारसे वंगभस्म लोहभस्म और छोटा कलवार इनका मिश्रण देना चाहिए.

निःसंतान (वांझ) स्त्रियोंकोभी वंगभस्मसे लाभ होता है. यह विकार बहुत कारणोंसे हो सकता है. स्त्रियोंके अंडकोषसे जो स्त्रीबीज बाहर निकलता है वह कम ताकद होनेसे, या खुद अंडकोषका विकार होनेसे, या स्त्रियोंकी मनोवृत्ति विकृत होनेसे, या प्रदर (पलरी) का

विकार अधिक होनेसे और उससे अशक्तता उत्पन्न होनेसे, या प्रमेहका विकार प्रथम होकर जननेंद्रियोंकी अशक्तता होनेसे, या सुजाक, आतशक आदि विकारोंसे अंदर घाव या फोडे होनेसे यह विकार उत्पन्न होता है. इसमेभी वंगभस्म गुणकारी है.

मासिक धर्मके समय योनिशूल या कटिशूल होता है वह अंडकोशोंकी अशक्ततासे या खून साफ न गिरनेसे या खून अंदरके अंदरही रहनेसे उत्पन्न होता है. इन विकारोंमे वंगभस्मसे फायदा होगा. विशेषतः रोगी स्त्री चिरचिरे स्वभावकी, 'रोती सूरत'वाली, शरीरसे और मनसे दुबली हो तो वंगभस्मसे अवश्य लाभ होगा.

चमडीके पुराने विकारोंपरभी वंगभस्म एक अच्छा इलाज है. हरतालमारित (हरताल डालकर बनाया हुआ वंगभस्म, कृति नं. २) वंगभस्मका उपयोग आतशकके विकारमे जो चमडीके रोग होते है उनमे अधिक होता है.

चमडीका एक पुराना विकार वीसर्प नामका (इसब) है. इसमे सतत खुजली रहती है. चमडीका रंग काला, चमडी कडी होती है, छोटी छोटी फुंसिया होती है. उनको खुजलानेसे उनमेसे पीलासा पानी या गाढा मवाद निकल आता है. इसमे भी वंगभस्मके सेवनसे फायदा होता है. जितना पुराना विकार हो, उतनाही वंगभस्मका कार्य स्पष्ट नजर आवेगा.

१४ शंखभस्म.

प्रमाण १ से ३ रत्ती.

शंखके दो प्रकार होते है. एक दक्षिणावर्त और दूसरा वामावर्त. इनमे दक्षिणावर्त शंख शुभ समझा जाता है. अशुद्ध शंख मे कुछ भी गुण नही है. वह शुद्ध करनेपर गुणकारक होता है.[1]

शंख की शुद्धि (शोधन):—

नीमूका रस आदि अम्ल द्रवोंमे (पतले पदार्थोंमे) या कांजीमे दो घंटे तक दोलायंत्रमे पकानेसे शंख शुद्ध होता है.[2]

शंख का भस्म बनानेकी रीतः—

---

१ द्विधा स दक्षिणावर्तो वामवर्तो शुभेतर ।
अशुद्धो गुणदो नैव शुद्धश्च स गुणप्रदः ॥ र. चं. ॥

२. अम्लै सकांजिकैश्चैव दोलास्विन्न स शुध्यति ॥ र च.

शंख के टुकडे अग्नीमे डालकर खूब फूंकना चाहिए, थोडेही देरमे वे फूल जाते है और अच्छी तरहकी भस्म बन जाती है. मिट्टी के लोटेमे लघुपुट देने से भी शंख की भस्म बन जाती है.[1]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

शंखक्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरेकनाशनः।
नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तारुण्यपिटिकाप्रणुत्॥
दक्षिणावर्तशंखस्तु त्रिदोषघ्नः शुचिर्निधिः।
ग्रहालक्ष्मीक्षयक्ष्वेडक्षामतिक्तक्षयाक्ष्मी॥ यो. र.

अच्छी तरह बनी हुई शंखभस्म का रंग बिलकुल सुफेद होता है.

शंखभस्म यह ही शंखक्षार है. क्षारोंमे जो गुणधर्म रहते है वे इसमे भी है. शंखभस्म और कपर्दिकाभस्म इनमे बहुतसे समान गुणधर्म होते है. क्यों कि ये दोनो चूनेके पदार्थ है. किंतु शंखभस्म मे कुछ विशेष गुण भी है. ये विशेष गुण यहां लिखते है. शंखभस्म ग्राही याने स्तंभक गुणकारक है. इसी वजह अतिसार (दस्त) के विकार मे—विशेषतः पक्वातिसार मे—यह एक अच्छा इलाज है. शंखभस्म, सुहागेका लावा, अफीम और जायफल इनका योग्य प्रमाणमे मिश्रण बनाकर पक्वातिसारमे देनेसे बहुत फायदा होता है. यह परीक्षित नुसखा है. इसको शंखोदर कहते है. ग्रहणी के विकारमेभी शंखभस्म का विशेष उपयोग होता है. बार बार और बहुत पतले दस्त आते हो तो इस से अधिक लाभ होगा.

ग्रहणी के साथ २ पेटशूल हो और शूलके बराबर पतले दस्त आते हो तो शंखभस्म जरूर देनी चाहिए.

पित्तजन्य कोष्ठशूल (पेट दर्द), पित्तजन्य अतिसार और कफपित्तजन्य कोष्ठशूल इनमे योग्य अनुपानमे शंखभस्म देनेसे तुरन्त लाभ होगा. पेटका फूलना, इसमे दर्द होना, आंतोका कार्य जैसा बंद हुआ

---

१ वह्नौ प्रोत्फुल्लयेत्क्त्वा सम्यग्लघुपुटै पचेत्।
कुन्दवज्जायते भस्म सर्वयोगेषु योजयेत्॥ र चं.

वृद्धवैद्याधारः—नीमू के रस मे शंख के टुकडे एक दिन (चौवीस घंटे) तक भिगोना चाहिए. फिर पानीसे धोकर घाम मे सुखाना और मिट्टीके कटोरेमे रखकर उपर मिट्टी कपडा लपेटकर गजपुट देना. ठंडा होनेपर खरल करना और घीगुंवारका रस फिर डालकर फिर सुखाना. फिर एक गजपुट दे कर खरल करना. इस रीत से सुफेद और महीन शंखभस्म तैयार होती है.

हो इस तरह अंदर अन्न जैसा एकही जगह ठहरा हुवा मालुम होना, खट्टी या मीठी डकारे आना,इत्यादि विकारोंमे शंखभस्मका सेवन करनेसे जलद वायु निकल आता है और पेट हलका होता है. अन्नका भी पचन होता है और पेटका फूलना भी कम होता है.

अन्नका पचन अच्छी तरह न होनेसे आमाशयमे या पक्वाशय मे पीडा शुरू होती है. इसमे घी के साथ या खट्टे निंबूके रसके साथ शंखभस्म देनेसे फायदा होता है.

रसाजीर्णका पुराना विकार हो तो रोगीको शंखभस्म देनी चाहिए किंतु उष्ण प्रकृती के रोगी को यह न देनी चाहिए.

यकृत् और प्लीहा (तिल्ली) का कार्य बिगड जानेसे जो विकार उत्पन्न होते है उनसे शंखभस्मका उपयोग होता है. यकृत् (जिगर) बढ गया हो,या तिल्ली बढ गयी हो तो शंखभस्मकी क्षार क्रियाका असर होकर वे कम होते है. किंतु इन रोगोंसे कब्जियत भी हो तो साथ २ कोई दस्तावर दवाई देना चाहिए,नही तो दूसरा कोई क्षार देना योग्य होगा. पेटमे गुल्म या अष्ठीला का विकार हुआ हो तो शंखभस्मका उपयोग होता है. शंखभस्मकी तीक्ष्णता दूसरे क्षारोंकी अपेक्षा कम होती है.

कालज अतिसार, विषूचिका या जंतुज विषूचिका (कॉलरा-हैजा) इन विकारोंमे रोग का प्रथमका दौरा कम होने पर शंखभस्म की योजना अच्छी तरह काम देती है. हैजा का विकार कम होने पर उल्टी (कै) और दस्त कम आते है और पैरोंकी ऐंठन भी कम होती है. किंतु पतले दस्त और कमजोरी कायम रहती है. इस लिये सुवर्ण-माक्षिक भस्म और शंखभस्म का मिश्रण देना चाहिए.

आँखोंमे जो फूल पडते है उनमे शंखभस्मका अंजन करनेसे वे धीरे २ कम होते है. शंखभस्म का रोपणकार्य यहाँ नजर आता है.

(जवान आदमीके या स्त्री के मूंह पर जो फोडे आते है (मुख-दूषिका या तारुण्यपीटिका) इन मे भी शंखभस्म के सेवन से फायदा होता है.)

दोष-पित्त.

दूष्य-रस, रक्त और अस्थि.

स्थान-यकृत्, प्लीहा, उंडुक, ग्रहणी, पक्वाशय, कोष्ठग्रंथी, पचनेन्द्रिय, नेत्र और मुख.

१५ शौक्तिक भस्म (मोती के सीप की भस्म)

प्रमाण १ से ३ रत्ती.

सीप दो प्रकारकी होती है. एक मोती की और दूसरी मामूली.[1]
सीप का शोधन और भस्म करनेकी रीतः—

दोनो प्रकारकी सीप का शोधन शंख के शोधन के माफिक और भस्म (मारण) कौंडी के मारण के रीती से करना चाहिए.[2]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

मुक्ताशुक्तिः कटुः स्निग्धा श्वासहृद्रोगहारिणी।
शूलप्रशमनी रुच्या मधुरा दीपनी परा॥ र. चं.
जलशुक्तिः कटुः स्निग्धा दीपनी गुल्मशूलनुत्।
विषदोषहरा रुच्या पाचनी बलदायिनी॥ र. चं.

शौक्तिक भस्म का रंग सुफेद होता है.

शौक्तिक भस्मकी तीक्ष्णता शंखभस्मकी तीक्ष्णता की अपेक्षा कम है. स्थूल रसायनशास्त्रके दृष्टीसे देखें तो शंखभस्म, कपर्दिक भस्म और शौक्तिक भस्म एकही मानी जाती है. तीनों चूनेके प्राणिज कल्प होते है. किंतु गुणधर्म शास्त्र के दृष्टीसे या जीवन रसायन शास्त्र के दृष्टीसे तीनो मे थोडा २ फर्क नजर आता है. शंख और कौडी के भस्मोंमे कुछ समान गुणधर्म है. सीप और मोती के भस्मोंमे भी कुछ समान गुणधर्म है. इसी कारण शौक्तिक भस्म मौक्तिकभस्म बनानेकी रीतसे (शीतभावना-पुटविधीसे) बनाई जाय तो उसके (शौक्तिक भस्मके) गुणधर्म प्रायः मौक्तिकभस्मके समान होंगे. किंतु इस प्रकारसे शौक्तिकभस्म नही बनाते है. गजपुट विधीसे शौक्तिकभस्म बनाई जाती है. इस लिए वह थोडीसी तीक्ष्ण होती है. तब भी शंखभस्म या कपर्दिकभस्मके समान इसकी तीक्ष्णता नही होती है. इसी कारण छोटे बच्चोंको, कोमल और दुबली पतली स्त्रियोंको या आदमीको, शौक्तिकभस्म देना उचित है.

शौक्तिकभस्मसे भी आमाशयमे स्वादुता उत्पन्न होती है. अम्लपित्त, या पित्तजन्य शूल (दर्द), परिणामशूल या अन्नद्रवाख्य शूलके विकारोंमे पित्तकी तीक्ष्णता शौक्तिकभस्मके सेवनसे कम होती है.

---

१. शुक्तिका विविधा प्रोक्ता मौक्तिकी जलजा तथा॥ र. चं.

२. शोधनं शंखवत् तस्या मृतिः प्रोक्ता कपर्दिवत्॥ र. चं.

अम्लपित्तमे शौक्तिक और सुवर्णमाक्षिक भस्मोंका मिश्रण अच्छा कार्य करता है. विदग्धाजीर्णमे खट्टी डकारे आती हो और गलेमे जलन की तकलीफ हो तो शंखभस्मकी जगह शौक्तिकभस्म देनेसे अधिक लाभ होगा. रसाजीर्णका विकार पुराना हुआ हो या तीव्र हुआ हो तो कोमल प्रकृतीके रोगीको शौक्तिकभस्मही देनी योग्य है.

पित्तातिसारमे दस्त अधिक आते हो, हरवख्त दस्तका जोर अधिक रहता हो या दस्तका रंग पीला और नीला या लाल नीला हो, और साथ २ प्यास, वार वार चक्कर आना, मिर्गी, सर्व शरीरमे जलन, और गुदाके बाहरकी चमडीपर छाले और फुंसिया हो तो शौक्तिक-भस्म अनारके पाकमे या आंवलेके पाकमे या मख्खन थोडा गरम करके पतला होनेपर उसके साथ देनेसे सर्व लक्षण जल्द कम हो जाएंगे.

पित्तजन्य उल्टी (कै) मे शौक्तिकभस्मका उपयोग होता है. विशेषतः उल्टी बहुत गर्म आती हो, उल्टी का रंग पीला या हरा, उल्टीके समय मुँहमे तीव्र कडवापन और जलन, यह जलन इतनी कि जैसे गलेमेसे भाप निकलती हो, गलेमे और पेटमे दाह, चक्कर आना, आदि लक्षणोंपर शौक्तिकभस्म अच्छा असर दिखलाती है.

पित्तजन्य गुल्मके विकारमेभी शौक्तिकभस्मका कार्य होता है. इस विकारमे ज्वर, प्यास, मुँह और आँखोकी सूजन और रक्तवर्ण, भोजन का पाक होनेके समय तीव्र शूल (पेट दर्द) और गुल्मको (तीव्र फोडेके माफिक) हाथभी न लगा सकते हो तो शौक्तिकभस्म देनी चाहिए. इस गुल्ममे अष्ठीला या विद्रधीके समान मांसकी वृद्धि नही होती है.

रक्तगुल्ममेभी शौक्तिकसे फायदा होता है. किंतु इसमे केवल पित्तकी वृद्धि अधिक होनी चाहिए. पित्तज शीर्षशूल (सिरदर्द) मेभी शौक्तिक दे सकते है. मूत्रकृच्छ्र, दांतोमेसे या दूसरे ठिकानोंमेसे खून निकलना इन आदतोंमे शंख या कपर्दिक देनेकी जरूरत रहती है. किंतु ये दोनो तीव्र होनेपर शौक्तिक भस्मकी योजना इनमे अच्छी होगी.

शौक्तिक भस्मके सेवनसे कोष्ठगत वात का शमन होता है. कोष्ठ-गत वातके साथ श्वास का विकार हो तोभी शौक्तिकसे फायदा होगा. पेटका ऊपरका भाग फूलना, इसी कारण छातीमे दर्द, जैसा हृदयमे तीव्र शूल हो, पेटमे और छातीमे जलन, हाथपैरोंकी शुनबहरी (शून्यता),

भीतरसे हाथपैरोमे ठंडापनसा मालूम हो किंतु वाहरसे इसका ख्याल न हो; इत्यादि सब लक्षण डकारे निकलनेके बाद कम होना या विलकुल नष्ट होना, इस अवस्थामे शंखकपर्दिककी अपेक्षा शौक्तिकसेही अधिक लाभ होगा.

अरुचीमे, विशेषतः पित्तप्रधान अरुचीमे, शौक्तिकका उपयोग होता है. इस विकारमे मुँहका स्वाद विगड जाता है, मुँहसे दुर्गंधका आना, मुँहमे खारा, खट्टा या तीखा स्वाद रहना, मुँहमेसे जैसी गर्म २ भाप निकलती हो ऐसे लक्षण होते है.

दोष—पित्त और किंचित् कफ.

दूष्य—रस, रक्त, मांस और अस्थि.

स्थान—आमाशय, यकृत् प्लीहा और ग्रहणी.

१६ शृंगभस्म (हिरण या सांवर की सींग की भस्म)

हिरणके सींगके अंदरके हिस्सेकी या सांवरके सींगकी यह भस्म वनाई जाती है. यह भस्म वनानेकी रीतः—

सींगके छोटे २ टुकडे वनाना. (सांवर का सींग पत्थरके समान कडा रहता है. हिरणका सींग जरा मुलायम होता है.) उनको कटोरेमे रखकर अग्नीमे खूब जलाना. अच्छी तरह अग्नी लगे तो पहले पुटमे सब टुकडे सुफेद हो जाते है. नही तो कई काले रहते है. फिर सब टुकडोंका (काले और सुफेद दोनो) चूर्ण बनाना. इस चूर्णको घीगुंवार के रस से ७।८ भावना देना. साथ २ प्रत्येक भावनाके वाद गजपुटभी देना. आखिरमे आकके दूधसे (अर्कक्षीर) एक भावना और एक गजपुट देनेसे सुफेद शृंगभस्म वन जाती है. कोई वैद्य आक के दूध की भावना नही देते है केवल घीगुंवारके भावनाओंसे भस्म बनाते है. पहली रीतसे बनाई हुवी भस्म जरासी तीक्ष्ण होती है और दूसरी सौम्य बनती है. हम दूसरी रीतसे भस्म बनाते है. इस ग्रंथमे सब गुणधर्म केवल घीगुंवार रस की भावनाओंसे बने हुए शृंगभस्मके है. इसका रंगभी सुफेद होता है.

शृंगभस्मके प्रमुख गुणः—स्वरनाशक, शक्तिवर्धक, कफके स्रावको कम करना, फेंफडोंमे कफदोषकी वृद्धि हो तो उसको कम करके साम्य अवस्था उत्पन्न करना और फेंफडों की ताकद वढाना, हृदयकी ताकद वढाना क्षयरोग (तपेदिक) की प्रथम अवस्थामे क्षयरोगके जो खास कीडे होते है उनको कम करना या उनका प्रसर बंद करना. यह आखिरका

गुरा शृंगभस्मका विशेष गुरा है. फेफडोंमे या शरीरके दूसरे अवयवोंमे जो छोटे २ जीवाणू होते है उनकी ताकद बढनेसे वे क्षयरोगके कीडोंको घेर लेते है. इसके माने यह है के शृंगभस्मसे वे नष्ट नही होते है. उनको नष्ट करनेवाला और उनके विषारको सौम्य करनेवाला एक ही इलाज है और वह सुवर्णभस्म है. किंतु क्षयरोगकी प्रथम अवस्था हो या केवल क्षयरोगका शक हो, तो शृंगभस्म और प्रवालभस्मका मिश्ररा शुरूसेही देना चाहिए. प्रमारा धीरे धीरे वढ़ाना चाहिए. १ रत्तीसे लेकर ६ रत्तीतक यह प्रमारा वढ़ा सकते है.

श्वासकी नलिया बिगड़ जानेसे उनमेसे स्राव (वलगम) अधिक निकलता है. यह स्राव शृंगभस्मके सेवनसे कम होता है. अडूसा का कार्य इससे विरुद्ध है. वह स्राव को वढ़ाता है. मुलहटीका कार्य इन दोनोसे भिन्न है. मुलहटीसे श्वासवाहिनी नलिओंकी सूजन कम होती है, और जलन कम होती है. मुलहटीसे मीठासा, मुलायम और लस्सेदार स्राव निकल आता है और जलन कम होती है. इन तीनोसे वहेडा का कार्य भिन्न है. इसमे स्तंभक गुरा होनेसे गलेकी सूजन और लाली पर इसका अधिक कार्य होता है. इस तरह खांसी के विकारमे भिन्न २ काररगोंके और दोषदूष्यके अनुसार भिन्नभिन्न औषधियोंका उपयोग होता है.

वातजन्य सूखी खांसीमे शृंगभस्म देना उचित नही है. इससे सूखापन और वढ जाता है और खांसीभी वढती है. कुकर खांसी मे इससे फायदा होता है फेफडोंकी सूजन, या श्वासनलियोंकी सूजन या कफके संचय से जो खांसी उत्पन्न होती है उसमें शृंगभस्म का उपयोग होता है. बच्चोंके लिये हिररा के सींगकी भस्म अधिक लाभदायी है.

फुफ्फुस संनिपात (न्यूमोनिया) के ज्वर के वाद छातीमे कफ का संचय अधिक होता है. यह वहुत दिनोंतक तकलीफ देता है. वलाम विलकुल खराब और वदबूदार निकलता है. क्यों कि कफ छातीके अंदर भरा हुआ रहनेपर वह दिनदिन बिगड जाता है. यह छातीमे भरा हुवा कफ जल्द निकालना चाहिए और फिर ऐसा बूरा कफ न जम जाय, शरीर को वह तकलीफ न दे और उसकी वदबूभी कम हो इसलिए प्रयत्न करना चाहिए. इसके लिए सब से अच्छा नुस्का यह है कि शृंगभस्म और रससिंदूर, अडूसा, मुलहटी, वहेडा और मिसरी के काढेमे योग्य प्रमारामे दिया जाय. इस एकही नुस्के से ऊपर लिखे हुवे सव कार्य सुफल होते है.

कभी कभी यह स्राव कम होनेपरभी और उसकी बदबू कम होने परभी फेफडोंका थोडा हिस्सा ख़राब रह जाता है और परहेज न रखनेसे उस हिस्सेमे फिर दोषसंचय और दोषदुष्टि होती है. इसी वजह बुखारभी आने लगता है. बुखार की इतनी बडी तकलीफ नही होती है. किंतु रोगी दिन दिन अशक्त होता है. इस विकारमे ज्वरघ्न औषधीसे कुछ फायदा नही होगा. शृंगभस्मका कार्य अधिक होगा. शृंगभस्मके साथ (थोडे प्रमाणमे) रससिंदूर देनेसे फेफडोंका दोष नष्ट होता है और ज्वरभी कम होता है.

शृंगभस्मके सेवनसे हृदयकीभी ताकद बढती है. हृद्शूल (छातीका दर्द) पुराना होनेपरभी हृदय बहुत न बिगडा हो, हृदयके स्नायु कमजोर होनेसे और शरीरकी साधारण अशक्ततासे यह विकार उत्पन्न हुआ हो तो शृंगभस्म अवश्य देनी चाहिए. बहुत दिनोंके उपवासके कारण, बहुत दूर चलनेके कारण या दिमागी काम अधिक करनेसे हृदयकी अशक्तता उत्पन्न हुई हो तो शृंगभस्मसे जरूर फायदा होगा. इस अशक्ततामे जरा परिश्रम करनेसेही हृदयका धुकधु ककरना, जी घबराना, कानोंमे आवाज और सर्व शरीरकी नस और हृदय फडकता हुआ मालूम होना ये लक्षण होते है. ये सब लक्षण शृंगभस्मके सेवनसे कम होते है. हृदयकी अशक्ततासे खांसी, खूनकी अशक्तता और इसी वजह मुँहपर और सर्व शरीरपर सूजन (कफजन्य) या वहाँकी चमडी केवल पानीसे भरी हुईसी नजर आती है, इसमेभी शृंगभस्म लाभदायक है.

हमने राजयक्ष्माके विकारमे (उसमे खास कीडे हो या न हो) शृंगभस्मका उपयोग बहुत तरहसे और बहुत रोगियोंमे अजमाया है. इससे क्षयरोगका ज्वर और खांसी जल्द कम होती है. किंतु हमारा अनुभव यह है कि जंतुजन्य (जिसमे कीडे होते है) क्षय विकारमे केवल प्रथम अवस्थामेही इससे फायदा होता है. इस अवस्थामे शृंगभस्म शुरू करनेसेही रोग कम होने लगता है. क्षयके विकारसे रोगीको बडी तकलीफ न हुई हो और वह बहुत दुबला न हुआ हो तो शृंगभस्मसे बहुतसा फायदा होगा. प्रथम अवस्थाके रोगी शृंगभस्मके सेवनसे करीब करीब सबही अच्छे हो जाते है. इस लिए हम कहते है की क्षयरोगमे यह एक आशादायक औषध है. क्षयरोगमे अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म और शृंगभस्मका मिश्रणभी अधिक फायदेमंद होता है. पुराने बुखारमेभी इससे फायदा होता है.

बच्चोंके मृदृस्थि (Rickets) नामके विकारमे शृंगभस्म और प्रवालभस्मका मिश्रण अच्छी तरह कार्यकारी है.

पूयवृक्क और वृक्कव्रण इन दोनो मूत्रपिंडके विकारोंमे शृंगभस्मका उपयोग होता है.

दोष—कफ.

दूष्य—रस, रक्त, अस्थि और मज्जा.
स्थान—श्वसनेन्द्रिय, हृदय और वृक्क.

१७. सुवर्णमाक्षिकभस्म (सोनामांखी की भस्म).

प्रमाण १ से २ रत्ती.

सोनामांखी दो प्रकारकी होती है. एक कान्यकुब्ज देशमे मिलती है, और दूसरी तापी नदीके किनारेपर मिलती है.[1]

सोनामांखीका पत्थर फोडनेसे अंदर सोनेके माफिक चमकदार रंग दिखता है. बाहरसे वह थोडासा काला रहता है.[2]

कसोटीपर घिसनेपर वह सोनेके माफिक कस देती है. वह सोनामांखी भस्म बनानेके लायक है.[3]

अशुद्ध या अर्धमारित माक्षिकके गुणधर्मः—

" अशुद्ध माक्षिकके सेवनसे अग्निमांद्य, बलहानि, विष्टंभ, नेत्र-रोग कुष्ठ और गंडमाला ये विकार उत्पन्न होते है." [4]

इस लिए माक्षिक का शोधन करना चाहिए.

माक्षिक का शोधनः—

१. अंडीका तेल (रेडीका तेल) और बिजोराका रस इनमे पांच घंटेतक पकानेसे सोनामांखी शुद्ध होती है. किंवा केलेके खंबेके रसमे

---

१ कान्यकुब्जाख्यनिषधे जायते स्वर्णमाक्षिकम् ।
तपतीतीरतोऽपि स्यादित्येवं तद्द्वियोनिकम् ॥ र. र. स.

२ भङ्गे सुवर्णसंकाशो मनाक् कृष्णच्छविर्बहि ॥ र सा स

३ कषे कनकवद्घृष्टं तद्वरं हेममाक्षिकम् ॥ आ प्र.

४ मदानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टभितां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ।
मालां विधत्तेऽपि च गंडपूर्वां शुद्धादिहीनं खलु माक्षिक तु ॥ आ. प्र.

दो प्रहर पकानेसे वह शुद्ध होती है. अथवा अग्नीमे तपाकर त्रिफलाके काढ़ेमे बुझानेसे सोनामांखी शुद्ध होती है.[१]

२. तीन भाग सोनामांखी और एक भाग सेंधानमक अकट्ठा पीसकर लौहेके कढाईमे लोहेके डंडेसे घोंटना और इतना अग्नि देना कि कढाई तपाकर सुर्ख हो जाएगी. साथ २ बिजोराके रस से या जंभीरीके रससे बार बार छिडकना. इससे सोनामांखी शुद्ध होती है.[२]

सोनामांखीकी भस्म बनानेकी रीतः—

१. शुद्ध माक्षिक खपरेमे रखकर खूब गरम करना और अंडीका तेल, गौका घी और बिजोराका रस ये तीनो अलग (एक के पीछे दूसरा) उसपर डाल देना. इससे तांबेके रंगकी लाल सुवर्णमाक्षिकभस्म बन जाती है.[३]

२. शुद्ध माक्षिक खपरेमे रखकर उसमे, अजामूत्र (बकरीका मूत्र) या अंडीका तेल या कुलथिका काढा या छांछ मिलाकर चूलेपर रखकर घोंटना. सुवर्णमाक्षिकभस्म तैयार होगी.[४]

३. चार भाग शुद्ध माक्षिक और एक भाग शुद्ध गंधक लेकर लाल अंडीके तेलमे खल करना, रोटलीके माफिक उसके चपटे गोले बनाकर, कटोरेमे नीचे और ऊपर धान (शालि) रखकर बीचमे वे रख देना. दूसरे कटोरेसे बंद करना और मिट्टीकपड़ेसे लपेटकर गजपुट देना. गजपुट ठंडा होनेके बाद उसे निकाल कर खोलना. इस रीतसे सिंदूरके रंगकी माक्षिकभस्म तैयार होती है.[५]

---

१. एरंडतैललुगांबुसिद्ध शुध्यति माक्षिकम् ।
सिद्धं वा कदलीकंद तोयेन घटिकाद्वयम् ।
तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ र र स

२. माक्षिकस्य त्रयोभागा भागैकं सैंधवस्य च ।
मातुलुंगद्रवैर्वाऽथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ।
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् ।
भवेत्ततस्तु संशुद्धं स्वर्णमाक्षिकमत्र तु ॥ आ प्र

३. एरडस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुगरसेन वा ।
खर्परस्थ दृढ पक्व जायते धातुसन्निभम् ॥ र र स

४. अजामूत्रेऽथवा तैले कषाये वा कुलत्थजे ।
तक्रे वा घर्षितं पक्वं म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ र च

५ माक्षिकस्य चतुर्थांश दत्वा गध विमर्दयेत ।
उरुबूकस्य तैलेन तत कार्याऽस्य चक्रिका ॥
शरावसपुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
धान्यस्य तुपमूर्ध्वाधो दत्वा शीत समुद्धरेत् ।
सिन्दूराभ भवेद्भस्म माक्षिकस्य न सशय ॥ र म.

४. शुद्ध माक्षिक का चूर्ण कपडेसे छान कर मिट्टीके बरतनमे रख कर अग्नीमे खूब तपाना, और वार वार चमचेसे पलटना. थोडेही देर मे चूर्ण की चमक नष्ट होगी. फिर नीचे उतार कर ठंडा होने पर नीमूके रेसस सात पुट देना. इससे वढ़िया माक्षिकभस्म वन जाती है.[1]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

माक्षीकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः ॥
दुर्मेललोहद्वयमेलनश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः ॥ र. र. स.

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ।
चक्षुष्यं बस्तिहृत्कंठपांडुमेहविषोदरम् ॥
अर्शः शोफं विषं कंडूं त्रिदोपमपि नाशयेत् ।
अनुपानं वराव्योषं वेल्लं साज्यं हि माक्षिके ॥ आ, प्र.

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं वल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ र. मं.

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शः कृमिकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं शीतं योगवाहि रसायनम् ।
माक्षिको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुणदः सुसेवितः ।
मेहकुष्ठकृमिशोफपांडुताऽपस्मृतीर्हरति सोऽश्मरीं जयेत् ॥
मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टंभतामन्यगदांश्च दुष्टान् ।
करोति मालां व्रणपूर्विकांच माक्षीकधातुर्गुरुरप्यपक्वः ॥ चो. र.
सुवर्णमाक्षिक भस्मका रंग कालासा लाल रहता है.

सुवर्णमाक्षिक यह एक लोहका कल्प है. स्वादु, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शामक, शक्तिवर्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तंभक, और रक्तप्रसादक इतने गुण माक्षिक के है. रक्तप्रसादन होनेसे खून की खरावी नष्ट होती है और सर्व रक्तधातू सुधरता है. इसमे लोहके दूसरे कल्पोंके ऊष्ण तीव्र आदि गुण नही होते है. इस लिए यह लोहका कल्प सौम्य है और कोमल प्रकृतीके अशक्त रोगियोंके लिए माक्षिकभस्मही योग्य औषध है.

केवल पित्तके विकार या कफपित्तसंसर्गजन्य विकार इनमे माक्षिक भस्मसे अच्छा कार्य होता है. इसी लिए पित्तजन्य शीर्षशूल (शिरदर्द), पित्तज अम्लपित्त, पित्तज परिणामशूल, पित्तज गुल्म आदि विकारोमे लक्षणोंके अनुसार भिन्न २ अनुपानोंके साथ मासिकभस्म देनी चाहिए.

१. वृद्धवैद्याधार.

पित्तजन्य शीर्षशूल मे सूतशेखरकी मात्रा भी दे सकते है, किंतु सूतशेखरकी योजना के लिए मुख्य लक्षण भ्रमण (चक्कर आना) यह होना चाहिए फिर भी सूतशेखरका यह विशेष है कि वातपित्तसंसर्गजन्य विकारोंमे उससे अधिक लाभ होता है. किंतु कफपित्तसंसर्गजन्य विकारोंमे माक्षिक से अधिक फायदा होता है. जैसेः—शीर्षशूल के साथ २ जी मचलाना, मुँहमे गंदा स्वाद, अन्नद्वेष, भोजन के समय भोजन की कुछ भी अच्छा न होना, कै और कै होनेपर जरासा आराम होना, आदि लक्षण हो तो माक्षिकभस्मही देना उचित है. पुराने सिरदर्दके विकारमें भी माक्षिक के सेवनसे बहुतसे रोगी अच्छे हुए है.

चक्कर आना, दिनरात चक्कर बनी रहती है, विचार करते २ विचारका स्मरण नष्ट होकर चक्कर आना, घाम मे घूमनेसे, उष्णवीर्य पदार्थोंके सेवन से या रात्रिजागरण से चक्कर का विकार बढ जाना, मनके विरुद्ध बाते सुननेसे या अधिक ज़ादा विचार करनेसे चक्कर आना, रात्रिजागरणकी जिसको आदत पडी हो; ऐसे रोगियोंका चक्करका विकार ये सब लक्षण और विकार सुवर्णमाक्षिक भस्मके सेवनसे नष्ट होते है. अनार या दूसरे फलोंका रस या पाकके साथ माक्षिकभस्म देनी चाहिए.

आँखोंकी सूजन, सुर्खी और जलन इत्यादि लक्षण अधिक होनेपरभी आंखोकी दर्द और चूभना कम रहता है. जलन तो इतनी होती है कि दिनरात आँखोके ऊपर ठंडा पानी या दूसरी ठंडी चीजें रखनेकी इच्छा इस अवस्थामे केवल पित्तही विकृत होता है. वात या कफ की वृद्धि प्रायः नहीं होती है. इस तरहके पित्ताभिष्यंद या रक्ताभिष्यंद मे माक्षिकका सेवन और लेप, दोनो तरह, योजना करना चाहिए. इसके रक्तप्रसादन कार्यसे सुर्खी और सूजन जल्द कम होती है. पुराने नेत्ररोगोंमे (मोतियाबिंदु–लिंग नाश, या फूली छोड कर दूसरे विकारोंमे) माक्षिकभस्मके सेवनसे फायदा होता है. लेकिन यह भस्म बहुत दिनोंतक और सौम्य अनुमानके साथ सेवन करना चाहिए. माक्षिकका उपयोग केवल पित्तजन्य नेत्रविकारोंमे होता है इस लिए सावधानीसे यह देखना चाहिए कि केवल पित्तका ही विकार हो.

आगंतुक (क्रोध आदि) कारणोंसे या अति जागरणसे पित्त बढता है. हृदयका धडकना शुरू होता है. छातीमे दम भरता है, थोडेही परिश्रमसे जी घबराता है. इन लक्षणोंमे माक्षिकभस्मसे आराम होगा.

पित्तदोषकी वृद्धिसे दूसरे धातू या स्थानोंकी दुष्टि होती है. रक्त, रक्तकी नलिया और हृदय, इनकी दुष्टि होती है. इस दुष्टीसे हर प्रकारके भिन्न २ विकार उत्पन्न होते है. ये विकारभी पुराने होनेपर हाथपैरोंपर और मुँहपर सूजन आती है. इनमेभी माक्षिकभस्मका उपयोग होता है. माक्षिकके हृद्य, स्तंभक और रक्तप्रसादक गुण यहाँ कार्य करते है. पर्णावीजका कार्यभी इसी तरहका होता है. किंतु इसका स्वाद अच्छा न होनेसे इसके सेवनसे जी मचलाता है और वमन (कै) होती है. माक्षिक मे यह दोष न होनेसे वह शरीरमे रह सकता है और उसका पचन होनेपर हृद्यकार्य भी नजर आता है.

रक्तमे विदग्ध पित्त मिश्रित होनेसे पित्तके तीक्ष्णत्व, ऊष्णत्व, द्रवत्व आदि गुण बढ़ते है. उनके बढ़नेसे रक्तनलिओंकी अंतस्त्वचा पतली होती है. इस तरह रक्तपित्तके विकारमे रक्त नलियोंका पतलापन नजर आता हैं. वे फूटती है और जगह २ रक्तका स्राव भी अधिक होता है. इसीको आयुर्वेदमे रक्तपित्त कहते है. इसमे रक्तका बाहर निकलना अधोगामी या ऊर्ध्वगामी हो सकता है. रक्तपित्तमे माक्षिक का उपयोग होता है. माक्षिकके साथ प्रवाल, हल्दी, सुवर्ण गैरिक (सुवर्ण गेरू) मिश्रित कर के सेवन करें तो अधिक शीघ्र फायदा होगा. केवल माक्षिकसेभी बहुत रोगी अच्छे होते है. इस विकारमे केवल दुग्धाहारका परहेज रखनेसे विशेषतः अजाक्षीर के सेवनसे अधिक लाभ होगा. माक्षिकका उपयोग ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त मे अधिक होगा.

पाकस्थली (Stomach) का आकार बढ जानेसे, पाकस्थलीकी अंतस्त्वचा विकृत होनेसे, या पाकस्थलीके अंदर जखम (व्रण) होनेसे अम्लपित्त उत्पन्न होता है. आयुर्वेदमे ये सर्व विकार ' अम्लपित्त ' मे अंतर्भूत है. कर्कटग्रंथि (मांसार्बुद) और व्रण ये दोनो पाकस्थली के विकार छोडकर दूसरे सब अम्लपित्तके विकारोंमे माक्षिक का अच्छा कार्य होता है. जिस अम्लपित्तमे पाकस्थलीका आकार बढ गया हो वहां स्तंभक, शामक और स्वादु गुणोंसे पित्तका नियमन होता है और रोग आराम होता है. पाकस्थली की अंतस्त्वचा बिगड जाने से अलमपित्त उत्पन्न हुआ हो तो माक्षिक का लवणत्व गुण वहां काम मे आता है. पाकस्थली मे पित्तोत्पादक या पाचक रसोत्पादक ग्रंथिओंकी विकृतीसे अम्लपित्त उत्पन्न हुआ हो तो माक्षिक मे लोह रहनेसे और उसका बल्य कार्य होनेसे पाकस्थलीका आकुंचन होता है और उसकी ताकद चढती है. अम्लपित्त अधिक बढनेसे या पित्तकी तीक्ष्णता

अधिक होनेसे पेटदर्द (शूल) होता हो या वमन (कै) के बाद दर्द कमहो, या सिरदर्द कम होती हो तो सुवर्णमाक्षिकही देना युक्त है. किंतु कै होने पर भी सिरदर्दमे कुछ फर्क न हो या दर्द वढती हो तो इन लक्षणोंमे वातपित्तका संसर्ग जानकर माक्षिक की जगह सूतशेखर देनाही योग्य होगा.

अम्लपित्त मे औषधी-चिकित्सा के साथ २ अंतः परिमार्जन (पाकस्थली को धोना) उचित है. यह पुराने पद्धतीसे (धौति) या नये पद्धतीसे (स्टमक पंप) करनेमे कुछ हर्ज नही है.

अम्लपित्तका और भी अधिक प्रकोप होनेसे पाकस्थलीमे व्रण होता है और उसमे रक्तनलिका फूट जाती है. वमन मे खून निकलता हैं. इसमे भी माक्षिक से कुछ फायदा होगा.

माक्षिकमे लोह होनेसे वह ताकद बढानेवाला है. यह लोहभी सौम्य प्रकारका होनेसे, नाकमेसे खून गिरना, रक्तस्रावके बाद कमजोरीके कारण चक्कर आना इत्यादि लक्षणोंमे उससे अधिक फायदा होता है. यहाँ माक्षिकभस्म गौरीसर (सारिवा), लालचंदन और पद्माखा पद्मकाष्ठ) इनके काढेके साथ देनी चाहिए.

शरीरकी कमजोरीसे, अधिक विचार करनेसे अथवा भय या शोकसे, एकाएक आघात होनेसे चक्कर भ्रम इत्यादि लक्षणोंका होना. कभी कभी यह भ्रम इतना बढता है कि रोगी पूरा पागल बन गया सा नजर आता है. इस विकारमे सुवर्णमाक्षिकसे शीघ्र आराम होता है. कुम्हडा (पेठा) के रसमे यह देनी चाहिए.

इसी विकारमे उन्माद (पागलपन) का जोर अधिक न हो तो माक्षिकभस्म, जटामांसी, खस और लालचंदनके काढेमे देनेसे वह कम होगा.

अधिक शराब पीनेसे (मदात्यय) कभी कभी एक किस्मकी भ्रान्ति होती है. इसमे वमन, वमनके साथ खूनका गिरना, मुँहपर और सर्व शरीरपर फीकापन इत्यादि लक्षण होते है. इसमेभी माक्षिकभस्म देनी चाहिए. वह कुटकी, विषखपरी (पुनर्नवा) और गिलोयके काढेमे देनेसे अधिक लाभ होगा.

रक्तार्श या पित्तार्श (खूनी बवासीर) के विकारमे खून अधिक गिरनेसे सर्व शरीरकी नसें धडकती हैं, शरीरमे खून कम होनेसे फीकापन रहता है, कभी कभी सूजनभी होती है. ये सर्व लक्षण खूनकी कमताईसे होते है. इसमेभी माक्षिकसे फायदा होगा. इससे खूनका पतला-

पन कम होता है. शरीरका फीकापन और दूसरेभी लक्षण कम होते है. इस समय यह नागकेसर, तेजपात और इलायचीके साथ देनी चाहिए.

विषूचिका (हैजा) के विकारमे वमनकी तकलीफ कम करनेके लिए माक्षिकका उपयोग होता है. किंतु दूसरे हैजाकी औषधोंके साथ यह देनी चाहिए. माक्षिकभस्म और सूतशेखरका मिश्रण दे सकते है. यह मिश्रण अदरखके रसमे वार २ चटाना चाहिए.

हैजा से वचनेके बाद जो कमजोरी रहती है उसमे; या हैजाके कुछ लक्षण वाकी रह गये हो, विशेषतः चक्कर आना, वार २ कै या दस्तका आना इन लक्षणोंमे सुवर्णमाक्षिक और शंखभस्म आमलेके मुरब्बेके साथ देनी चाहिए.

सुवर्णमाक्षिक स्वादुरसोत्पादक, तिक्त और वल्य है. यह वल्य होनेके कारण यह रस, रक्त आदि धातुओंकि शक्ति वढाता है और वह योग्य प्रमाणमे वनते जाते है. इसी लिए वह 'रसायन' कहा जाता है.

वस्ती (पेशावकी थैली) की अशक्तता से उस थैली मे पेशाव संचित न होकर अपने आप वूंद २ वाहर निकल आता है. इसमे मूत्र-धारक स्नायूकी अशक्तता रहती है इस विकारमे शिलाजीत और माक्षिकका मिश्रण देते है. यह विदारीकंद, असगंध, और मजीठके साथ देनेसे अधिक लाभ होता है.

वातज या वातपित्तज हृद्रोग (छातीका दर्द) मे हृदयका धुकधुक करना, जी घवराना, श्वास जोरसे चलना, पसीना आना, सर्व शरीरके अंदर जलन और सर्व शरीरका कंप, ये लक्षण होते है, इनमे माक्षिक-भस्म देनी चाहिए. इससे हृदयकी ताकद वढती है. पुराने हृद्रोगमेभी इससे फायदा होता है. किंतु हृदयके अंदरकी झिल्ली (पडदा) के विकारमे माक्षिकसे कुछभी आराम नही होगा.

गलेमे ग्रंथी (टॉंसिल) वढ जानेसे, या मुँहमे लालापिंड या गले-की सूजनमे वहां रक्तसंचय होता है और पीडा, सूजन, सुर्खी और जलन आदि लक्षण उत्पन्न होते है. यहांभी माक्षिकभस्म लाभदायक है. किंतु इस विकारके साथ २ अधिक वुखार हो तो माक्षिक न देनी चाहिए. क्यों कि तीव्र ज्वर की प्रथम अवस्थामे माक्षिकका सेवन नुकसान पहुँचाता है. वुखार न हो तो माक्षिकभस्म शहदके साथ देते है.

मलेरिया का बुखार बहुत दिनोंतक रहनेपर, इसके लिए कुनाइन लेनेसेभी वह, कभी कभी बिलकुल कम नही होता और प्लीहा (तिल्ली) बढने लगती है, प्लीहावृद्धीके बाद जलोदर होता है और इसमे सर्व शरीरपर सूजन, घबराट और वांति (कै) होती है. इस विकारमे सुवर्णमाक्षिकसे बहुत लाभ होता है. सुवर्णमाक्षिक के सेवनसे कुनाइन के दोष कम होते है. कुनाइन बहुत दिनोंतक देनेसे शरीरको नुकसान पहुंचाती है; कभी कभी रोगीको थोडीसी भी कुनाइन देनेपर बहुत तकलीफ होती है. इसमेभी माक्षिकके सेवनसे सब लक्षण कम होते है. यह कार्य माक्षिक का प्रभाव कह सकते है.

हृदयके विकारमे सर्व शरीरपर सूजन आती है, मलेरियामें भी आखिरमे सूजन आती है और दूसरे विकारोंमे भी रक्तक्षय होनेके बाद सूजन आती है. इन सब विकारोंमे जी घबराना, चक्कर आना, सिरदर्द आदि लक्षण होते है. ये सब लक्षण माक्षिकभस्मके सेवनसे कम होते है.

विरुद्ध आहारके सेवनसे या विषमिश्रित चीजे खानेसे, वे पित्तोत्पादक, तीव्र और जलन उत्पन्न करनेवाली होनेके कारण, पित्तप्रकोप होता है. उसमेभी माक्षिकभस्मसे लाभ होगा. किंतु प्रथम विषनाशक इलाज करके, बादमे माक्षिक देनी चाहिए.

सर्व शरीरपर छोटी छोटी फुंसिया का आना, खुजली, सर्व शरीर, नाखून, होट, आदि फीके पड जाना, खून गिरनेके बाद या अतिसार (दस्त) के विकारके बाद सर्व शरीरपर छोटी २ फुंसिया का आना, चमडी रूखी और कडी होकर खूब खुजलाना इत्यादि लक्षणोंमे माक्षिक का उपयोग होता है. इसी विकारमें ताप्यादि लोह भी दे सकते है. गौरीसर (सारिवा) के काढेमे यह देते है.

मूत्रातिसार, याने खास मधुमेहके पूर्वलक्षण न होनेपरभी पेशाब अधिक होना, पेशाब का रंग पीलासा, चमडीका रंग भी पीलासा, नाखूनोंकी लाली कम होना, रातको पेशाब अधिक होना और बार बार पेशाबके लिए ऊठनेकी जरूरत हो तो सुवर्णमाक्षिक का सेवन करना चाहिए. जामूनके रसमे या जामूनके पाकमे यह देना चाहिए.

शुक्रक्षय या रजःक्षयके विकारमे वंगभस्मके साथ माक्षिकभस्म देनेसे अधिक लाभ होता है. प्रदरके विकारमे भी माक्षिकभस्म उपकारक है. वहाँ अबला संजीवन कल्पके साथ यह दे सकते है.

कभी कभी चमडीका रंग बदल जाता है काला सा होता है, उस पर छोटी २ फुंसिया आती है, हाथपैरोंकी अंगुलिया फूल जाती है

किंतु खुजली बिलकुल नही होती है. खुजली की जगह वहां का स्पर्श-ज्ञान भी कम होता है. सर्व शरीरपर सुर्ख या बेरंग के गोल चकत्ते (मंडल) उत्पन्न होते है. इस विकार मे शुरुवात से गंधक रसायन और माक्षिक देनेसे लाभ होगा. अथवा केवल माक्षिक तुलसीके पत्तोंके रस मे दे सकते है.

पित्तजन्य कामला (पीलिया) मे भी माक्षिक का उत्तम कार्य होता है.

पीलिया के सर्व प्रकारोंमे इसका कार्य हम देख चुके है. प्रवाल-भस्म, शौक्तिक और माक्षिक इनका योग्य प्रमाणमें मिश्रण बना कर वह मूलीके रसके साथ देना चाहिए

दोष—पित्त (पाचक और रंजक)

दूष्य—रस, रक्त, मज्जा, शुक्र.

स्थान—सिर, नेत्र, हृदय, आमाशय, यकृत्, आंत्र, पचनेन्द्रिय, बस्ति, अंतःस्रावक पिंड, त्वचा, अंडकोष और मनोदेश.

सुवर्ण भस्म.

प्रमाण ⅛ से १ रत्ती.

प्राकृत, सहज, अग्निज, खनिज और पाराकी वेध क्रियासे पैदा होनेवाला. इन पांच प्रकारोंका सुवर्ण रहता है.[1]

अशुद्ध सुवर्ण के सेवन से सुख, वीर्य और बल का नाश होता है. अनेक विकार उत्पन्न होते है. शुद्ध होने पर भी उसकी भस्म अच्छी न बनी हो तो भी ऊपर लिखे हुए विकार होते है. इस लिए सुवर्णकी शुद्धि और मारण सावधानपूर्वक होना चाहिए.[2]

सुवर्णका शोधनः—

१. तेल, छांछ, गौमूत्र, कुलथीका काढा या कांजीमे कौनसा भी धातू, तपा कर सात बार बुझानेसे, शुद्ध होता है. याने सोनेसे लेकर लोहेतक सब धातुओंकी इसी रीत से शुद्धि होती है.[3]

---

१. प्राकृतं सहजं वन्हिसभूतं खनिसंभवम् ।
रसेन्द्रवेधसंजातं स्वर्णं पंचविधं मतम् । र र च

२. सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति नानारोगान्करोति च ।
अशुद्धं न मृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं तु मारयेत् ॥ र. च.

३. तैले तक्रे गवां मूत्रे क्वाथे कौलत्थकांजिके ।
तप्तं तप्तं निषिंचेत्तु तत्तद्रावे तु सप्तधा ।
स्वर्णादि लोहपर्यंतं शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ र चं.

२. मिट्टी, कजली, सुवर्णगेरू, नौसादर आदि पांच तरहकी मिट्टी लेकर खट्टे नीमूके रसमे या कांजीमे खरल करके उससे सोनेके पत्तोंको लेप करना, और एक लघु पुट देना. इससे सोनेकी शुद्धि होती है.[1]

३. मिट्टी, जंगली गोयठोंकी राख, और सेंधा नमक इनका विजोराके रसमे पांच दिन खरल करना. सोनेके पत्तोंको इससे लेप करके उसको पुटपाककी रीतसे लपेट कर लघुपुट देना. इससे सोना शुद्ध होता है.[2]

४. सोना असली रंगका न हो तो, उसके पत्ते बनाकर, चूना (पत्थरका सूखा चूना) और सेंधा नमक मिला कर उनका कांजीमे खरल कराना और उससे पत्तोंको लेप करना. उन पत्तोंको मिट्टीके कटोरेमे रखकर ऊपरसे दूसरे कटोरेसे ढकना और मिट्टीकपडा लपेट कर सूखे जंगली गोयठोंकी छोटीसी ढिगारमे या भट्टीमे रख कर एक पुट (लघुपुट) देना. इस प्रकारसे छ पुट देनेसे सोना शुद्ध होता है.[3]

५. असली नंबरका सोना हो तो उसको शुद्ध करनेकी जरूरत नही.[4]

सुवर्णभस्म बनानेकी रीतः—

१. सर्व धातुओंके पत्ते बनाके उनके वजनके बराबर पारा और गंधक की कज्जली लेना. पत्तोंके नीचे, ऊपर और बीचमे कज्जली रखकर वालुका यंत्रमे बारह प्रहर तक मंद, मध्यम और प्रखर (तीक्ष्ण) अग्नीसे पुट देना. इस विधीसे सर्व धातुओंकी भस्म बन सकती है.[5]

---

१. वल्मीकमृत्तिकाधूमगैरिकं इष्टिका पटु ।
इत्याद्या मृत्तिकाः पंच जम्बीरैरारनालकैः ॥
पिष्ट्वा लेप्यं स्वर्णपत्रं श्रेष्ठं पुटेन शुध्यति ॥ र. चं.

२. मृत्तिकामातुलुंगाम्लैर्भावितं पञ्चवासरम् ।
सभस्मलवणं हेम शोधयेत्पुटपाकवित् ॥ र. मं.

३. हीनवर्णस्य हेम्नश्च पत्राण्येव तु कारयेत् ।
खटिका पटुचूर्णांच्च कांजिकेन प्रमर्दयेत् ॥
पत्राणि लेपयेत्तेन कल्केनाथ प्रयत्नत ।
आरण्योपलकैः कार्या कोष्टिका नातिविस्तृता ॥
मध्ये तत्संपुटं स्थत्वा वान्हिं प्रज्वालयेत्ततः ।
एवं पुटत्रय दत्वा शुद्धं हेम समुद्धरेत् ॥ र. प्र. सु.

४ न तु शुद्धस्य हेम्नश्च शोधनं कारयेद्भिषक् ।

५ पत्राणि सर्व धातूनां तत्तुल्या कज्जली तथा ।
दत्वा दलान्तरे तच्च वालुकायंत्रगं पचेत् ।
पृथक् पृथक् सूर्यनाडीवह्निभिर्दीपिकादिभि· ।
भस्मीभवन्ति सर्वेऽपि स्वर्गाद्या सप्तधातव· ॥ नि. र.

२. सीसाके संयोगसे सुवर्णकी भस्म होती है, सुवर्णमाक्षिकके संयोगसे चांदीकी, गंधकके संयोगसे तांबेकी, मनासिलके संयोगसे सीसेकी, हरितालके संयोगसे रांगाकी और, स्त्रीका दूध और सिंगरफके संयोगसे तीनो प्रकारके लोह की भस्म बन जाती है.[1]

३. शुद्ध पारा और शुद्ध सुवर्ण समप्रमाणमे लेकर नीमूके रसमे उनका खरल करना, इसका एक गोला बनाकर गोलेके वजनके बराबर शुद्ध गंधक लेकर वह गोलेके नीचे और ऊपर रखकर छोटे कटोरेमे रखना. दूसरे कटोरेसे ढकना. फिर तीस गोयठोंके अग्निसे लघुपुट देना. इस प्रकारके चौदह पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म बन जाती है. प्रत्येक पुटके समय नीमूके रसकी एक भावना देना चाहिए और गंधक भी फिर दूसरा लेना चाहिए.[2]

४. सुवर्णमाक्षिक और सीसाकी भस्म इनका आंकके पत्तोंके रसमे खरल करना. इससे सोनेके पत्तोंको लेप देना और दो कटोरेके भीतर रखकर गजपुट देना. एकही पुट देनेसे सुवर्णभस्म बन जाता है.[3]

५. सोनेका चूर्ण और शुद्ध पारा समप्रमाणमे लेकर उनका खरल करना, यह मिश्रण लोहेके कढाईमे या चमचेमे रखकर चूलेपर रख देना और खूब तपाना. तपानेसे सब पारा उड जाता है. फिर बचे हुए सोनेके बराबर सुवर्णमाक्षिकका चूर्ण (सोनेके नीचे और ऊपर) डालकर फिर गजपुट देना. इस रीतसे सोनेकी भस्म बन जाती है.[4]

६. शुद्ध सोनेका चूर्ण और उससे आधा शुद्ध पारा लेकर उनका खरल करके एक गोला बनाना. एक कटोरेमे नीचे सीसेकी भस्म रखकर उपर वह गोला रखना और फिर ऊपर सीसेकी भस्म रखकर दूसरे कटोरेसे ढक देना. एक गजपुट देनेसे सोनेकी भस्म तैयार होती है.[5]

---

१ नागै सुवर्णं रजतं च ताप्यैर्गंधेन ताम्रं शिलया च नागम् ।
तालेन वगं त्रिविधं च लोहं नारीपयो हन्ति च हिङ्गुलेन ॥ र. र

२ शुद्धसूतसमं हेम खल्वं कुर्याच्च गोलकम् ।
अधोर्ध्वे गंधकं दत्त्वा सर्वं तुल्यं निरुध्य च ॥
त्रिंशद्वनोपलैर्देयं पुटान्येव चतुर्दश ।
निरुत्थं जायते भस्म गंधो देयः पुन पुन ॥
जंबीरद्रवदानं तु सर्वत्रैवं विनिश्चय. ॥ र च

३ माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसे पुनः ।
हेमपत्रं च तेनैव म्रियते क्षणमात्रत ॥ र म.

४ समसूतेन वै पिष्टीकृत्वाऽऽधमापयेद्रसम् ।
स्वर्णं तत्समताप्येन पुटितं भस्म जायते ॥ र. म.

५ स्वर्णार्धं पारदं दत्त्वा कुर्याद्यत्नेन पिण्डिकाम् ।
दत्त्वोर्ध्वाधो नागचूर्णं पुटनान्म्रियते ध्रुवम् ॥ र र

७. शुद्ध सोनेके भूर्जपत्रके समान पतले पत्ते बनाके उनके वजनके बराबर हींग और सिंगरफ लेकर वे दोनो तीन धारके थूहर (सेहुंड) के रसमे पीसकर उनसे उन पत्तोंको लेप देना. दो कटोरेके बीचमे रखकर एक कुक्कुटपुट देना. इस तरह दसपुट देनेके बाद गेरू जैसे लाल रंग की सुवर्णभस्म बन जाती है.[1]

८. सोनेके पतले २ पत्ते बनाना. सोनेसे चौगुना गंधक और गंधकसे चौगुना कबूतरकी विष्ठा लेकर उनसे सोनेके पत्तेको लेप दो. जंगली गोयठोंके अग्नीसे एक कुक्कुट पुट देना. ठंडा होनेपर फिर घीगुंवारके रससे एक भावना देना. फिर उतनाही गंधक और कबूतरकी विष्ठा लेकर उससे मिलाना और कुक्कुटपुट देना. इस तरह सात पुट देनेसे सुवर्ण भस्म बन जाती है.[2]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

मृतं हाटकं दिव्यकांतिं तनोति क्षतं श्वासकासं क्षयं पित्तवातौ ।
प्रमेहग्रहण्यातिसारांश्च कुष्ठं ज्वरं हन्ति षाण्ढयं च कंदर्पदं च ॥

सर्वौषधिप्रयोगेन व्याधयोहि गता न ये ।
कर्मभिः पञ्चभिश्चापि सुवर्णं तेषु योजयेत् ॥
शिलाजतुप्रयोगाच्च ताप्यसूतकयोस्तथा ।
अन्यै रसायनैश्चापि प्रयोगे हेममुत्तमम् । र. चं.

स्वर्णं स्निग्धकषायतिक्तमधुरं दोषत्रयध्वंसनम् ।
शीतं स्वादु रसायनं च रुचिकृच्चक्षुष्यमायुष्यदम् ॥
प्रज्ञावीर्यबलस्मृतिस्वरकरं कान्तिं विधत्ते तनोः ।
संधत्ते दुरितक्षयं श्रियमिदं धत्ते नृणां धारणात् ॥ आ. प्र.

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ।
स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादुपिच्छिलम् ॥
पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् ।
हृद्यमायुष्करं कांतिं वाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥
विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोकजित् ।
अपक्वमेव संशुद्धं पक्वं तत्तु रसायनम् ॥ आ. प्र.

---

१. हेम्न सूक्ष्मदलानि भूर्जसदृशान्यादाय संलेप्य वै. ।
वज्रीदुग्धकहिंगुहिंगुलसमैरेकत्र पिष्टीकृतै ।
सत्यं संपुटके निधाय दशभिश्चैव पुटैः कुक्कटैः ।
पाच्य हेम च रक्तगैरिकसमम् सजायते निश्चितम् ॥ र. च.

२. वृद्ध वैद्याधार.

न सज्जते हेमपांगे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ॥ अष्टांगहृदयम् ॥

आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसि पुण्यम् ॥
भूतावेशप्रशांतिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि। गाङ्गेयम्। र. र. स.

स्निग्धं मेध्यं विषगरहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यम्।
यक्ष्मोन्मादप्रशयनपरं देहरोगप्रमाथि।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं।
रुच्यं दीपि प्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ र. र. म.

सुवर्ण का उपयोग वहुत पुराने कालसे आयुर्वेदशास्त्रमे प्रसिद्ध है. चरक आदि ऋषिप्रणीत ग्रंथोंमे विषको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग लिखा गया है. आज तीन चार हजार वर्षसे आयुर्वेदमे सुवर्णका उपयोग जारी रहा है. सुवर्ण यह सर्व धातुओंमे वजन का भारी, निर्मल (स्वच्छ) और प्रसन्न धातु है. सुवर्णभस्म का रंग काला या लाल रहता है.

सुवर्णभस्म—स्निग्ध, मधुर, कषाय, किंचित् तिक्त, शीतवीर्य और रसायन है. प्रज्ञा, वीर्य, वल, स्मृति और कान्ति वढानेवाली है. वृष्य और गुरु है. पाकके पश्चात् मीठी और चिकणाई उत्पन्न करनेवाला है. वृंहण, हृद्य, और आवाज धीमा और शुद्ध करनेवाली है.

सुवर्णसे हृदयकी ताकद वढती है. इसका कार्य यह नही है की थोडे देरके लिए हृदयकी ताकद वढाना. यह ताकद केवल उत्तेजन नही है. तो हृदयके स्नायु जोरदार वन जाते है. इसी कारण भिन्न भिन्न रसायनोंमे और मात्राओंमें सुवर्णका अंतर्भाव है. दूसरी भी हृदयको शक्ति देनेवाली औषधियाँ है. जैसे-कुचलाः-हृदय के वातवाहिनिओंको कुछ देर तक उत्तेजित करता है; कपूर आदिः-रक्तवाहिनिओंका विकास करता है; पर्णबीज, कौहा आदिः-रक्तवाहिनिओंको संकोचित करता है. इन हृदयोत्तेजक औषधियोंके समान सुवर्णभस्मका कार्य नही है. सुवर्णका कार्य रक्तमे कुछ विष हो तो उसको नष्ट करनेका है. सुवर्णसे रक्तप्रसादन होता है और खास हृदयकी रक्तवाहिनिओंकी और वातवाहिनिओंकी ताकद वढती है. इसी कारण सुवर्णभस्म 'हृद्य' मानी गई है. यह कार्य सुवर्णभस्मका विशेष कार्य है. अद्रखके रसके साथ यह देनी चाहिए.

विष, गर (अन्न मे उत्पन्न होनेवाला विष) या सेन्द्रिय विष और उस सेन्द्रिय विष या गरको उत्पन्न करनेवाले कीडोंका शरीरपर भयानक कार्य होता है. इसको नष्ट करना यह सुवर्णभस्मका एक अमौ-

लिक गुण है. स्थावर (वनस्पति या खनिज) या जंगम (सर्प आदि) विषार के प्रथम तीव्र अवस्थामे उस अवस्थाके खास इलाज करना चाहिए किंतु इन सब उपयोंसे वह विषार पूर्णतया नष्ट नही होता है. इनमेसे कई विषारोंका परिणाम शरीरमे, तीव्र अवस्था के बाद, बहुत दिनोंतक या आखी उम्र तक थोडा थोडा बना रहता है. इस अवस्थामे (तीव्र अवस्था कम होनेके बाद) सुवर्णभस्मका शीघ्र उपयोग करनेसे उन विषारोंका असर पूर्णतया नष्ट होगा. शरीर निर्विष बन जाएगा. सुवर्णभस्म कम खुराकमे बार बार देनी चाहिए.

गर या कृत्रिम विषकी प्रथम चिकित्सा विषको निकालनेवाली और उसका तीव्रत्व नष्ट करनेवाली होनी चाहिए. विषकी तीव्रता नष्ट होनेपर और हृदयकी गडबडभी कुछ शांत होनेपर सुवर्णभस्म शुरू करनी चाहिए. इससे वह बिलकुल निकल जाएगा. कीडे और उनसे पैदा हुए विषार इस (सुवर्ण) से नष्ट होते है. याने सुवर्णका कार्य जंतुघ्न और प्रतिविषोत्पादक होता है. यहाँ भी थोडे प्रमाणमे और बार बार यह देनी चाहिए.

इसी गुण के कारण सुवर्णका क्षय रोग मे कार्य होता है. आयुर्वेद मे क्षयरोग चिकित्सामे सुवर्णभस्मका अंतर्भाव किया है. केवल सुवर्ण या सुवर्णमिश्रित या सुवर्णसाक्षित्वनिर्मित भिन्न २ प्रयोग आयुर्वेद मे लिखे है. (जैसेः-अष्ट धातु रसायन, पूर्णचंद्रोदय आदि). इन सर्व प्रयोगोंका उपयोग दोष दूष्य आदि अवस्थाओंका पूर्ण विचार करके किस तरह करना चाहिए यह पूर्णचंद्रोदय आदि दवाइयोंके गुणधर्ममे हम आगे (दूसरे विभागोंमे) लिखेंगे. यहाँ केवल सुवर्णके सामान्य गुण और सुवर्णभस्मके विशेष गुण लिखना है. राजयक्ष्मा या क्षय (तपेदिक) की कुछ भी अवस्था हो वहाँ सुवर्णभस्म देनी चाहिए. किंतु जहां रोगकी तीसरी अवस्था हो, भला मोटा उरःक्षत बन गया हो, रोगी बिलकुल मांसविहीन याने केवल अस्थिचर्मसा रह गया हो, ताकद बिलकुल कम हुई हो, विशेषतः ये सब लक्षण एकही रोगीके शरीरमे मिले तो वहाँ सुवर्णभस्म क्या कर सकती है? साक्षात् धन्वंतरी आवे तो वह भी कुछ नही कर सकेगा. किंतु यह अवस्था छोडकर दूसरे अवस्थाओंमे सुवर्णभस्मसे अच्छा फायदा होता है. रोगीको ज्वर बिलकुल न होना चाहिए या कम रहना चाहिए. बुखार अधिक हो तो सुवर्णभस्मका सेवन बंद करें. सुवर्णभस्म के सेवनसे शुरूसेही ज्वर बढने लगता है. कभी कभी वह बहुत तेज होता है. इसका कारण यह है कि सुवर्णभस्मसे क्षयरोगके कीडे मर जाते है. वे थोडे २ मर-

जाय या शरीरसे निकल जाय या शरीरके अंदरही निर्विष हो तो ज्वर नही बढता किंतु ये किडे जल्द और अधिक प्रमाण मे मर जाय तो मरे हुए कीडोंके शरीरोंसे विष पैदा होता है और वह अधिक प्रमाणमे होनेसे और सर्व शरीरमे वह विष फैल जानेसे यह बुखार चढता है और उसी प्रमाणमे चढता है. इससे यह विदित होता है कि इस ज्वरका कारण साक्षात् सुवर्णभस्म नही है. मरे हुए कीडे और उनका विष यहही ज्वर का कारण है. इस लिए सुमर्णभस्म देते समय रोगकी अवस्था, रोगीकी प्रकृति आदि सब अवस्थाओंका विचार करके सुवर्णभस्म का प्रमाण निश्चित करना चाहिए. नही तो ज्वर बढ जाएगा. ज्वर हो तो भी सुवर्णभस्म बिलकुल कम प्रमाणमे दे सकते है. कभी कभी एक रत्तीका $\frac{1}{100}$ भाग भी देना पडता है.

सुवर्णका ज्वर बढानेका यह दोष निकालके क्षयरोगमे उससे अधिक लाभ पा सकते है.इसी हेतूसे आयुर्वेदमे सुवर्णकी भस्म बनाई है और प्रयत्न किया है कि वह सूक्ष्म प्रमाणमे और अच्छीतरह शरीरमे फैल जाय. सुवर्णभस्ममे खास सुवर्ण का प्रमाण कम रहता है. तब भी वह रोगीको सहन नही होता और ज्वर बढता है.यह देखकर सुवर्णका प्रमाण और भी कम करना चाहिए. इस तरह कम प्रमाण मे सुवर्णभस्म देनेसे क्षयरोग की प्रथम और द्वितीय अवस्थामे इससे फायदा होता है. क्षय के माने जंतुजन्य क्षय है. निर्जंतुक क्षय विकारमें भी सुवर्णभस्मका उपयोग होता है.

बार बार सूखी खांसीका आना, सर्व शरीरमे जलन, शामके समय रोजाना थोडासा ज्वर और थोडे ज्वरसेभी भयानक अशक्तताका उत्पन्न होना, मन का निरुत्साह, कुछ भी आनंद, हर्ष का समय हो तो मन प्रसन्न न रहना, 'रोती सूरत,' कुछ भी बात तबियत के अनुसार न होना, इतनाही नही, जीवनकी इच्छा भी न रहना इत्यादि लक्षणोंमे सुवर्णभस्म देनी चाहिए. इस अवस्था मे सुवर्णभस्म और मृगश्रृंगभस्म देनेसे आगामी क्षय का भय नही रहता. यह मिश्रण दूध और मिसरीके साथ देनी चाहिए.

सर्व शरीरमे हरवख्त थोडासा ज्वर कायम रहना,हाथ पैरोंमे जलन, आवाजका बैठना, पसलियोंमे और खंदेमे संकोच और पीडा, अतिसार, बार बार इतनी सूखी खांसी कि खांसते २ छातीमे और पेटमे दर्द, दम चढना, गलेमे दर्द, गलेमेसे या कफमेसे खून का आना इत्यादि लक्षणोंमे सुवर्णभस्म देनी चाहिए. सुवर्णभस्म के साथ प्रवालभस्म और मृगशृंग भस्म मिलाकर वह अनारपाकके साथ देनी चाहिए.

इससे आगेकी अवस्थामे रोगीकी ताकद और वजन बहुत कम होते है. इस अवस्थामे सुवर्णभस्मसे कुछ फायदा नही होता.

उरःक्षतके विकारमे सुवर्णभस्मका बहुत उपयोग होता है. खून अधिक गिरता हो तो प्रथम रक्तपित्तकी चिकित्सा करना और साथ २ सुवर्णभस्म कम प्रमाणमे देना. रक्त धातूमे मधुरत्व, स्निग्धत्व, प्रसाद आदि गुण रहते है और वे गुण सुवर्णभस्मके सेवनसे वढ जाते है. इसलिए सुवर्णसे रक्तकी यह कमताई नष्ट होती है. रक्तका प्रसादन होता है.

निर्जन्तुक क्षय विकारमेभी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमे शरीरके अवयव और परमाणु घटते जाते है. यहाँ भी सुवर्णभस्मसे लाभ होता है, अनुलोमक्षय और प्रतिलोम क्षय ये दोनो धातुक्षयके विकार सुवर्णभस्मके सेवनसे शीघ्र आराम होते है. जीवनीय गुणकी औषधियोंके अनुपानमे यह देनी चाहिए.

पित्तज और कफज उन्माद (पगलापन) मे सुवर्णभस्मसे फायदा होता है. असहिष्णुता याने कुछ थोडासाभी आवाज, बच्चोंका रोना आदि सहन न होना, उजेला, गर्मी, गरम पदार्थोंका स्पर्शभी सहन न होना, इस आवाज या स्पर्शसे रोगीकी तबियत एकदम बिगड जाना, हाथपैरोंका इधर उधर झिडकना, मुँह, गाल, आँख और हाथपैरोंके अंगुलियोंकी सूजन, रोगीका नंगापनमे इधरउधर घूमना, नंगा रहनेकी इच्छा, वातचीतमेभी अनीतीकी बातें करना, खुद आवाज सहन न होनेपर भी दूसरे को अपने भाषण से सताना, दूसरे को काटना, दौडना, चिल्लाना, सर्व शरीरकी उष्णता बढ़ जाना, विशेषतः सिर गरम होना, सर्व शरीर मे जलन, पंखा चलानेकी सतत इच्छा, 'ठंडा पानी, ठंडा खाना मंगाओ' इस तरह चिल्लाना, सब वस्तु पीली पीली सी नज़र आती हो, और इन लक्षणोंके साथ विचार करनेकी शक्ति या स्मृति नष्ट हुई हो, बार बार विचार करते करते एकदम विचार का बंद होना, चित्त-चंचलता या आलस्य, बात चीत मे और चलने फिरनेमे आलस्य और बेफिकरी, मुँहका स्वाद नष्ट होना, विषयभोग की बातें निरन्तर सोचा करतां हो और इस विचार को छोड़ना नही चहाता, इस स्त्रीविषयक विचार को कोई बंद करना चाहे तो उसपर क्रुद्ध होना, यह ही विचार करनेके लिए निर्जन स्थान मे रहनेकी इच्छा, जीवन का नाश करनेकी इच्छा, इत्यादि लक्षण उन्माद (पगलापन) मे हो तो सुवर्णभस्म देनी चाहिए, धमासा (हिंगुण) के काढे के साथ सुवर्णभस्म देने से अधिक लाभ होगा.

खांसी या श्वास के पुराने विकार मे सुवर्णभस्मसे बहुत फायदा होता है. विशेषतः पित्तप्रधान या वातपित्तप्रधान दमा खांसी मे इसकी योजना सुफल होती है. द्राक्षारिष्ट या द्राक्षासव के अनुपान मे देना.

क्षय के विषसे-दोषदुष्टी से-आंतोमे और ग्रहणीमे विकार उत्पन्न होते है. कफ या आंव के दस्त आते है. कभी कभी खून भी गिरता है, सब आंतोमे एकसा विकार हुआ हो तो खूब दस्त आते है और ताकद शीघ्र नष्ट होती है. इस अवस्थामे सुवर्णभस्म का उपयोग होगा. अनुपान—अनारपाक.

सुवर्णभस्म के सेवन से रक्तप्रसादन होता है. चमड़ीका रंग भी खुल जाता है. त्वग्गत पित्त दोष का शामन होता है. क्षुद्रकुष्ट के समान चर्मरोग नष्ट होते है. सुवर्णभस्म के सतत सेवन से महाकुष्ट या महारोग (Leprosy) के कीड़े मर जाते हैं ऐसा सुना है. चमडी का विकृत रंग भी अच्छा हो जाता है. इस तरह कुष्टविकारमे भी सुवर्ण भस्म का उपयोग है.

पित्तजन्य प्रमेह मे भी सुवर्णभस्म से आराम होता है.

मुद्दती विकारोंमे, आंत्रिक संनिपात जैसे ज्वरोंमे, दो प्रकारकी दवाइयां देना पडता है. एक, सर्व शरीरमे उस विकारका जो विष फैल गया हो या कीड़े खून मे घूमते हो उनको नष्ट करने की योजना, और दूसरा, इतनी लंबी मुदत तक हृदय और दूसरे इंद्रिय थक न जाय यह तजवीज करना. सुवर्णभस्म के सेवनसे दोनो कार्य सुफल होते है. इस लिए दीर्घकाल के ज्वरोंमे सुवर्णभस्म का उपयोग करना चाहिए.

सुवर्णभस्म का और भी एक उपयोग है. वह वृष्य याने नपुंसकता-नाशक हैं. अंडकोष के ग्रंथी इससे सुधर जाते है. वे अपना कार्य बराबर करने लगते है और नपुंसकता नष्ट होती है.

आँखों के पुराने विकारोंमे भी सुवर्णसे बहुत लाभ होता है. आंखोंकी सुर्खी, आँखोके पलकोंके अंदर सूजन, आँखोंमे और हाथ-पैरोंमे जलन, आदि पित्त के लक्षणोंमे सुवर्णभस्म का सेवन करना चाहिए.

दोष—पित्त, वात.

दूष्य—रस, रक्त, मांस, शुक्र.

स्थान—हृदय, वातवाहिनी, रक्तवाहिनी, आँख, श्वसनेंद्रिय, आंत्र, ग्रहणी, अंडकोष और मनोदेश.

१९ हरतालभस्म

प्रमाण $\frac{1}{2}$ से १$\frac{1}{2}$ रत्ती.

पत्री हरताल और पिंड हरताल इन दोनो प्रकार की हरताल मिलती है. उनमे पत्री श्रेष्ठ और पिंड हरताल कनिष्ठ है.[१]

सिद्ध मत से हरताल चार प्रकारकी है.:—

(१) बुगदाद, (२) गोदन्ती, (३) तवकी और (४) पिंडताल. इनमे पिंडताल सबसे कम दर्जेकी और उससे पहले पहले अधिक अधिक श्रेष्ठ है. याने बुगदाद सबसे श्रेष्ठ है.[२]

अशुद्ध हरताल के सेवनसे आयुष्य का नाश होता है. कफ, वात और प्रमेह के विकार होते है, बुखार, फोडे फुंसिया और अंगसंकोच उत्पन्न होता है.[३]

इस लिए हरताल का शोधन करना चाहिए.

हरताल का शोधनः—

१. हरताल के छोटे छोटे टुकडे बनाकर कपडेमे बांधना, और चूना मिश्रित कांजीमे दोलायंत्र के विधीसे एक प्रहर तक पकाना. इसके वाद कुम्हडा (पेठा) के रसमे, तिलके तेल मे और त्रिफलाके काढ़े मे इसी तरह एक एक प्रहर दोलायंत्रमे पकाना. इससे हरताल शुद्ध होती है.[४]

२. कुह्मडे के रसमे, तिलके क्षार के पानीमे या चूनेके पानीमे एक प्रहर तक दोलायंत्रके विधीसे पकानेसे हरताल शुद्ध होती है.[५]

---

१. हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिंडसज्ञकम् ।
तयोराद्यं गुणै श्रेष्ठं ततोहीनगुणं परम् ॥ र. प्र. सु.

२. सिद्धाद्यैस्तु हरितालश्चतुर्विध· प्रोक्तः बुगदादी, गोदन्ती, तबर्का, पिण्डतालश्च एते पिण्डाख्यात् क्रमेण श्रेष्ठतरा ज्ञेयाः । आ. प्र.

३. अशुद्धतालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ र. र.
हरतिच हरितालं चारुतां देहजातां ।
मृजति च बहुतापानङ्गसंकोचपीडां ।
वितराति कफवातौ कुष्ठरोग विदध्या-
दिदमशितमशुद्ध मारितं वाऽप्यसम्यक् ॥ आ. प्र.

४. तालकं पोटलीं बद्ध्वा सचूर्णे काञ्जिके क्षिपेत् ।
दोलायन्त्रेण यामैकं तत कुष्माण्डजे रसे ।
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजले ।
एवं यन्त्रे चतुर्याम पाच्यं शुध्यति तालकम् ॥ का र. र.

५. स्विन्न कुष्मांडतोये वा तिलक्षारजलेऽपिवा ।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायंत्रेण शुध्यति ॥ र. र. स.

३ हरताल के चूर्ण मे उसका १/१० भाग सुहागा डालकर उसको जंभीरी के रस से धोना. फिर कांजीसे धोना, चौपट्टे कपडेमे बांधकर चूना मिश्रत कांजीमे दोलायंत्र के विधीसे एक दिनतक पकाना, या कुह्मडेके रस मे या सेमर (शाल्मली) के रसमे चार प्रहरतक पकाना इस रीतसे हरताल शुद्ध होती है.[1]

शुद्ध हरताल के गुण :—

१ शुद्ध हरताल के सेवन से कुष्ट कम होता है, मृत्यु और जरा दूर रहती है. शरीरकी कांति, वीर्य और आयुष्य बढ़ता है.[2]

२ शुद्ध हरताल से कफ, रक्तदोष, विष, भूतबाधा और स्त्रियोंका मासिक स्राव नष्ट होता है. यह स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निदीपक और कुष्ठनाशक है.[3]

तालभस्म बनानेकी रीत :—

१ चार तोला हरताल घीगुवार के रसमे डालकर दो कटोरेके बीचमे रखकर चूलेपर धर दो और बारह प्रहर तक अग्नि चलाओ. फिर उतार कर अपनेआप ठंडा होने पर वह भस्म निकाल लो.[4]

२. पलाश के जड़ का शहदके समान गाढ़ा काढा बनाओ. और उस काढे मे तीन दिन तक हरताल का खरल करो. फिर भैंस के मूत्रमे तीन बार खरल करो. फिर दस गोयठोंके अग्निसे लघुपुट देना. इस तरह बारह पुट देनेसे हरताल की भस्म बन जाएगी.[5]

---

१. तालकं कणश कृत्वा दशांशेन च टंकणम् ।
जम्बीरोत्थ द्रवे क्षाल्य कांजिके क्षालयेत्तत ॥
वस्त्रे चतुर्गुणे बद्ध्वा दोलायंत्रे दिनं पचेत् ।
सचूर्णेनारनालेन दिनं कूष्माण्डजे रसे ।
स्वेद्य वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ र. र स.

२. शोधित हरितालं तु कान्तिवीर्यविवर्धनम् ।
कुष्टादिपापरोगघ्नं जरामृत्युहरं परम् ॥ आ. प्र.

३. श्लेष्मरक्तविषवातभूतनुद् केवलं च खलु पुष्पहृत्स्त्रिय ।
स्निग्धमुष्णकटुकं च दीपनं कुष्ठहारि हरितालमुच्यते ॥ र. मं.

४. पलमेकं शुद्धतालं कुमारीरसमर्दितम् ।
शरावसपुटे क्षिप्त्वा यामद्वादशक पचेत् ॥
स्वांगशीत समादाय तालकं च मृत भवेत् ॥ र मं.

५. मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलज ।
त्रिवारं तालक भाव्यं पिष्टा मूत्रेऽथ माहिषे ॥
उपलैर्दशभिर्देय पुटं रुद्ध्वाऽथ पेषयेत् ।
एवं द्वादशधा पाच्य शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ र. र. स.

३. शुद्ध हरताल एक भाग और दो भाग गृहधूम (कजली) लेकर मिट्टीके कटोरेमे नीचे और ऊपर गृहधूम रखकर बीचमे हरताल रख देना. फिर वह कटोरा राखसे पूरा भर दो और दूसरे कटोरेसे ढांककर मुखलेप करके चूलेपर रख दो. चार प्रहर अग्नि देनेसे हरताल की बिलकुल सुफेद भस्म बन जाएगी.[1]

४. शुद्ध हरताल को घीगुवार का रस, कुह्मडेका रस और दही से अलग अलग तीन २ भावना देकर उसका एक गोला बनाओ. और मिट्टीके घडे में नीचे छ अंगलीतक नमक और क्षार डाल दो और ऊपर यह गोला रख के फिर ऊपर क्षार डाल दो. और लोहेके बरतन से ढांक दो. फिर चूलेपर चढाकर बत्तीस प्रहरतक अग्नी चलाओ. इससे चूना जैसी सुफेद हरतालभस्म बन जाएगी.[2]

५. पत्री हरिताल को शुद्ध करके पुनर्नवा (सफेद बसू) के रसमे एक दिन खरल करो. फिर सुखाकर एक गोला बनाओ. फिर कटोरेमें नीचे पुनर्नवाका क्षार डालकर ऊपर यह गोला रखदो और फिर ऊपर यह ही क्षार रखकर क्रमवर्धित अग्नीसे पांच दिन तपाओ. इस रीतसे हरतालकी भस्म बन जाएगी.[3]

---

१. एको विभागोऽशुचितालकस्य भागद्वयं सुंदरधूमसारम् ।
मध्ये विसृच्य शुभतालकचूर्णमेतत् तदुपरि भूरिसुधूमसार ।
प्रपूरयेद् भूतिकयाऽथ भाण्डे शरावकेणैव ततो निरुन्ध्यात् ।
विसृच्य चूल्यांच हिरण्यरेता दहेत्तु वै यामचतुष्टय च ।
एतैः प्रकारैर्मृतिमेति तालं निर्धूममेवं किल शुक्लवर्णम् ॥ र. सु.

२. शुद्धतालं विचूर्ण्याथ कन्याकुष्मांडजद्रवै ।
दध्ना त्रिभावितं शुष्कं गोलं कृत्वा निधापयेत् ॥
हण्डिकायां पटुक्षारं पूरयेच्च षडङ्गुलम् ।
क्षारेणाच्छाद्य च पुनर्लोह पात्रे निधापयेत् ॥
पुन क्षारेण चाकण्ठं पूरयित्वा क्रमाग्निना ।
द्वात्रिंशत्प्रहरं पाच्यं भस्म स्याच्चूर्णसन्निभम् । नि. र.

३. पत्राख्यं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु ।
खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥
संशोष्य गोलकं कृत्वा चक्राकारमथापि वा ।
तत· पुनर्नवाक्षारै स्थाल्यामर्धं प्रपूरयेत् ।
तत्र तग्दोलकं कृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ।
स्थालीं चुल्यां समारोप्य क्रमादग्निं विवर्धयेत् ॥
दिनान्यन्तरशून्यानि पंच वह्नि प्रदीपयेत् ।
एवं तन्म्रियते तालम् । अ. प्र.

हरताल भस्मकी परीक्षाः—

तालभस्म अग्नीपर डालनेसे धूंवा न निकलना चाहिये. धूंवा न निकले तो वह बढिया भस्म समझी जाती है. इसीको निर्धूमभस्म कहते है.[१]

ग्रंथोक्त गुणधर्मः—

. ..मात्रा तस्यैकरक्तिका।
अनुपानान्यनेकानि यथारोगं प्रयोजयेत्॥

किंचिद्यथा--

गुडूच्यादिकषायेण गदानेतान्व्यपोहति।
सोपद्रवं वातरक्तं कुष्ठान्यष्टादशानपि॥
फिरङ्गदेशजं जन्तोर्हन्ति रोगं सुदुस्तरम्।
विसर्पमण्डलं कण्डूं पामां विस्फोटकं तथा॥
वातरक्तकृतान्रोगानन्यानपि विनाशयेत्।
एतद्भेषजसेवी तु लवणाम्लौ विवर्जयेत्॥
तथा कटुरसं वह्निमातपं दूरतस्त्यजेत्।
लवणं यः परित्यक्तुं न शक्नोति कथंचन॥
सतु सैन्धवमश्नीयान्मधुरोपरसो हि सः॥ आ. प्र.
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं च न संशयः॥ र म.
सासितं तण्डुलोन्मानं वातरक्तज्वरप्रणुत्॥ नि. र.
अशीतिवातान्कफपित्तरोगान्कुष्ठं च मेहं च गुदामयांश्च॥
निहन्ति गुंजार्धमितं च तालं पञ्चवल्लखण्डेन समं च युक्तम्॥ र. चं.

हरताल भस्म का रंग सुफेद रहता है.

हरतालभस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु रसात्मक, अग्निदीपक और कुष्ठनाशक है. यह उत्तम रसायन होनेके कारण रसायनविधीसे इसका सेवन करे तो बुढापा और अकालमृत्युका नाश होता है. शरीरका तेज (वर्ण) भी सुधर जाता है.

वातरक्त के विकारोंमे हरिताल भस्मका विशेष उपयोग होता है. इनमेभी वातप्रधान वातरक्तके विकार हो या कफप्रधान वातरक्त के हो तो हरतालभस्मसे अधिकही लाभ होगा. वातरक्तके विकारका प्रारंभ पैर के या हाथके अंगूठेके जोडमे होता है. शुरू मे अंगूठेकी

---

१. तालं मृतं तदा ज्ञेयं वह्निस्थं धूमवर्जितम्।
सधूमं न मृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः॥ आ प्र

सूजन, दर्द और पीडा होती है. फिर वह रोग सर्व शरीरमे फैलता है. वातरक्त और कुष्ठ ये दोनो भिन्न २ विकार है. इनके कारणोंमे बहुत फर्क है. वातरक्तके दोषदूष्य कुष्ठके दोष-दुष्योंसे भिन्न है.

सर्व शरीरमे पीडा, जगह जगह सूजन; वह पीडा इतनी होती है कि जैसे अंदरकी हड्डियां फूटती हो; सूजनसे फूली हुई चमडीका रंग फीका और चमडी फटती हुई जैसी पीडा; कभी कभी चमडीका रंग काला या फीका काला, हाथपैरोंके धमनिओंका (नाडिओंका) संकोच, इस संकोचके कारण उनके जोडोंमे टेढापन और इसी वजह रोगी चलने फिरने सकता नही और एकही जगह बैठता रहता है. सर्व शरीरमे, जोडोंमे, उंगुलियोंमे और नाडिओंमे बार बार पीडा की तकलीफ, सर्व शरीरका जकडना, सर्व शरीरमें कंप और कभी कभी सूजनपर झुनवहरी (शून्यता) या मिनमिनापन, स्पर्शका ख्याल न होना, ठंडा पानी, ठंडी हवा या ठंडी चीजों का द्वेष, इन चीजोंका दर्शन भी न चाहना, मानो के रोगी उनसे डरता हो, क्योंकि ठंडी चीजोंसे उसके सब लक्षण बढ जाते है. इन लक्षणोंके वातरक्तको वातप्रधान वातरक्त कहते है. इस विकारमे हरितालभस्म घी के साथ देनेसे सब लक्षण हट जाएगे.

शरीरके जिस विभागमे सूजन हो वहाँका भारीपन या सर्व शरीरका भारीपन, सर्व शरीरका ठंडापन, चमडीपर सूजीसे नोकनेसेभी उसका स्पर्श या पीडा का ज्ञान न होना; हाथपैरोंपर अग्नीसे जलाने परभी पीडा या गर्मीका ख्याल न होना, हाथपैरोंपर और अंगुलियोंपर एक तरहकी चमकीली सूजन, बाहरसे चमडीका ठंडापन, खुजलीका अधिक होना, किंतु पीडा कम होना और वहभी कभी रहती है और कभी नष्ट होती है, इन लक्षणोंसे युक्त वातरक्त को कफप्रधान वातरक्त कहते है. इसमे भी हरताल भस्म का उपयोग होता है. किंतु यह कटुकरंजा (करंजवा) के पत्तोंके रस के साथ और घी या मिश्री मिलाके देनी चाहिए.

पित्तप्रधान वातरक्तके विकारमे हरतालभस्म से कुछ भी फायदा नही होगा, इतनाही नही पित्तप्रधान विकारमे इसका सेवन किया जाँय तो तकलीफ अधिक होगी, पित्त बढ जाएगा और रक्तपित्त का उपद्रव होगा.

वातरक्त के उपद्रवोंमे भी हरतालभस्म का उपयोग होता है. निद्रानाश, मुहका स्वाद नष्ट होना, श्वास (दमा), मांसकोथ

(गँग्रीन) (वह पित्तप्रधान हो तो ताप्यादि देना चाहिए), सिरके नसोंका जकडना, अपस्मार (मृगी), बेहोशी, पीडाका अधिक होना, प्यास, बुखार, विचार करने की शक्ति नष्ट होना, सर्व शरीरका कंप, हिक्का (हिचकी), पंगुत्व, त्वग्रोग, सूजन का पाक और फूटना, चक्कर का आना, थकावट, अंगुलियोंका टेढापन, फोड़े या हड्डियोंपर सूजन, सिरदर्द, नाडिओंका संकोच आदि उपद्रव बहुत कष्टप्रद होते है. इनमे हरतालभस्मसे कुछ लाभ होगा. किंतु अपस्मार और बेहोशी का उपद्रव सबसे अधिक कष्टदायक और प्रायः असाध्य है.

वातरक्त का विकार बहुत काल तक कायम रहता है और रोगिओंको बडी तकलीफ उठानी पडती है. कभी कभी यह अपने आप (या औषधोंसे) कम होतासा नजर आता है, और फिर थोड़ेसे अपथ्य से अधिक बढ़ता है. सब लक्षण एकसाथ बढ जाते है. कभी कभी वातरक्त के दूसरे लक्षण कम होते है और चमड़ीके विकार बढ़ते है. जैसे-वीसर्प, सर्व शरीरपर चकत्तेका आना, फोड़े फुंसिया, हर तरह के त्वग्रोग, और चमड़ीका रंग बदलना (काला होना) इत्यादि लक्षण होते है. इन सर्व लक्षणोंमे हरताल भस्म देनी चाहिए. रोग जितना पुराना हो उतनाही कम प्रमाण इस भस्म का देना चाहिए. फिर भी कुछ दिन के सेवन के बाद वह बंद रखना चाहिए और फिर शुरू करना चाहिए. इससे औषधीका सात्म्य नही होगा. रक्तदोषांतक कल्प हरिताल भस्म से मिश्रित कर के देना.

वातरक्त और कुष्ठ इन दोनोके संप्राप्ति, निदान और लक्षणोंमे भिन्नता है. किंतु हरताल भस्म का उपयोग कुष्ट विकार में भी होता है. आयुर्वेदशास्त्र मे कुष्ट यह एक त्वग्रोग (चमड़ीका रोग) माना जाता है. किंतु पामा, कच्छू, उग्रा, सिध्म, जैसे चमड़ी के विकारों में हरताल भस्म का कुछ कार्य नही होगा, वहां गंधकरसायन ही देना चाहिए. क्यों कि ये सब क्षुद्रकुष्ठ माने जाते है. ये सामान्य त्वग्रोग है. इनमेभी कभी कभी गंधकरसायनसे कुछ फायदा नही होता और रोग बहुत काल तक तकलीफ देता है. इनमें हरताल भस्म मजीठ के काढ़े के साथ देनेसे कुछ लाभ होगा.

इन सामान्य त्वग्रोगोंसे भिन्न महाकुष्ट होते है. उनमे दोषदूष्यों का विचार कर के हरताल भस्मका उपयोग करना चाहिए. क्यों कि हरताल भस्म यह एक उत्तम कुष्टघ्न रसायन है. किन्तु पित्त दोष की दुष्टी हो या रक्त धातु दूपित हुआ हो तो हरतालभस्मसे कुछ लाभ

नही होगा. वात दोषकी या कफ दोषकी दुष्टि हो, अथवा त्वक्, मांस और अंबु दूषित हुए हो तो कुष्ठ विकारमे हरतालभस्म के समान दूसरा कौनसा भी द्रव्य कार्य नही करेगा. योग्य प्रमाणमे और रोगकी योग्य अवस्था मे हरतालभस्म की योजना हो तो रोग जरूर हट जाएगा.

वातदोषकी दुष्टीसे उत्पन्न हुए कुष्ठरोगमे-चमडी खरस्पर्श (स्पर्शसे कडी मालूम होती है), चमडीका रंग कालासा या लालसर, चमडी का सूख जाना और फूटना, पीडा इत्यादि लक्षण होते है. इसमे हरतालभस्मका उपयोग होता है. कापाल, उदुंबर, मण्डल, दद्रु, काकण, पुंडरीक और ऋष्यजिव्ह ये सात महाकुष्ठ है. इनमेसे औदुंबर कुष्ठमे-चमडीमे जलन, सुर्खी, खुजली और पीडा अत्यंत होती है, चमडीके बालोंका रंग भुरा होता है और दूषित जगहपर गूलर के पके हुए फलके समान गांठे आती है. औदुंबर कुष्ठमे हरतालभस्म न देनी चाहिए. दूसरे छ महाकुष्ठोंमे इसका अवश्य उपयोग करें. यह देनेके लायक दोषदूष्योंका विचार हम ऊपर कर चुके है.

कुष्ठका रंग सुफेद या लाल, वहाँ की चमडी मोटी, उसी जगह-पर पसीना का अधिक आना, रंग चमकीला और चमडीपर चकत्ते ऊठते हो तो वह कुष्ठ कृच्छ्रसाध्य समजना चाहिए. इसमे हरताल-भस्मसे कुछ लाभ होगा.

कुष्ठके चारों ओर का किनारा ऊंचा, कठिन और लाल रंगका; और मध्यभागमे पीडा अधिक हो, और चकत्ते जरा लंबेसे हो तो उस कुष्ठको ऋष्यजिव्ह कहते है. कुष्ठका रंग सुफेदसा, किनारोंपर सुर्खी और कमलके पत्तोंकी तरह फैला हुवा, ऊंचा और थोडासा गुलाबी रंग का कुष्ठ पुंडरीक कुष्ठ कहा जाता है. बिलकुल लाल गुंजके समान लाल रंगका और उसमे सबसे अधिक पीडा होती हो तो उसे काकण कुष्ठ कहते है. इन सर्व प्रकारके कुष्ठ विकारोंमे हरतालभस्म देनी चाहिए. उससे विकारकी तकलीफ कम होगी.

फिरंगरोग या फिरंगोपदंश (आतशक) की दो अवस्थाएँ होती है. एक तीव्र या नयी और दूसरी पुरानी. इन दोनो अवस्थाओंमे हरतालभस्म का उपयोग होता है. इस रोगकी प्रथम अवस्थामे मसूर जसा घाव हो तो पारद (पारा) का अच्छा उपयोग होता है. प्रथम अवस्थामे पारदका उपयोग न किया जाय हो तो दूसरी अवस्था शुरू होती है. यह अवस्था शुरू हुई हो या न हो, यह विकार नष्ट होनेके लिए इस समय हरतालभस्म देना चाहिए. दूसरी अवस्थाके बाद भी

और दूसरे उपद्रव होनेपरभी हरतालभस्मसे जरूर लाभ होगा. आतशक का विष शरीरमे नया हो और दोषदूष्योंमे उसका अधिक प्रवेश (फैलाव) न हुआ हो तो पारा और पारेसे बने हुए दूसरे रसायन देने चाहिए. किंतु यह विष पुराना हुआ हो और दूष्योंमे फैला हुआ हो, त्वग् मांस आदि दूषित हुए हो तो हरतालभस्म देनी चाहिए. तीव्र विकारमे पारद और पुरानेमे हरताल या दूसरे मल्लकल्प देना यह ही आतशकके भिन्न अवस्थाओंकी योजना है.

आतशककी भिन्न अवस्थाओंमे भी दोष और दूष्यका विचार करना चाहिए. इसमे भी पित्तदोष हो या रक्तधातु दूषित हुआ हो तो हरतालभस्मका अनुपान बदलना जरूर होगा. याने पित्तनाशक या रक्तप्रसादक अनुपानके साथ यह देनी चाहिए.

आतशकके उपद्रव भी बहुत होते है. उपद्रव का अर्थ यह है कि मुख्य विकारके बाद उत्पन्न होनेवाला दूसरा स्पष्ट रोग. आतशकके बाद ऐसे स्पष्ट रोग बहुतसे निकल आते है. इनमेसे गलत्कुष्ठ और गुदशूक इन दोनो विकारोंमे हरतालभस्मका विशेष उपयोग होता है. दूसरे उपद्रवोंमे भी हरतालभस्मका कुछ ना कुछ उपयोग होता है. आतशकमे जो कुष्ठविकार उत्पन्न होता है उसमे इसका खास उपयोग है. आतशकका कुष्ठ दूसरे कुष्ठोंसे जरा भिन्न है. दूसरे कुष्ठोंमे निज दोष या दूष्य नही होता. (याने कुष्ठका विकार प्रथमही अच्छे शरीरमे उत्पन्न होता है.) इनमे अवस्था भेद या कुष्ठ जाति और लक्षणोंमे भिन्नता नही होती है. याने एक प्रकारके कुष्ठमे एकही प्रकारके लक्षण पाये जाते है, और उनही लक्षणोंके वृद्धीसे गलत्कुष्ठ उत्पन्न होता है. प्रथम कान, नाक और गाल पर लालसे चकत्ते उत्पन्न होते है. इसके बाद सर्व शरीरपर चकत्ते आते है. हाथपैरोंकी अंगुलियों पर सूजन और उस जगहपर स्पर्शका ज्ञान नष्ट होता है. उसपर चाहे चोट लगे या जल जाय तब भी रोगीको कुछ भी जान नही पडता इतना वह भाग सुन्न हो जाता है. इस अवस्थाके बाद वे चकत्ते फूटने लगते है. उनमेसे पानी सा स्राव निकल आता है. सर्व शरीरपर सूजन आती है और मुँह का आकार इतना बदलके खराब हो जाता है कि उसको देखकर घृणा आती है. इस अवस्थामे हरतालभस्मका उपयोग होता है. जहाँतक इस अवस्था का समय हो वहाँतक इन दवाइओंसे कुछ फायदा होता है किंतु इस स्रावके बाद जब अंगुलियाँ गिरने लगतीं है और दूसरे अवयवोंके टूकडे पडने लगते है तब इन दवाइओंसे कुछ

भी लाभ नही होगा. यह बात दूसरे आनुवंशिक कुष्ठोंकी अवस्थाओंमे भी सत्य है.

निज कुष्ट या आतशक का कुष्ट, वातके विकारका हो तो उनमे वातवाहिनिओंका क्षोभ होता है और जगह २ पर स्पर्शासहनत्व (याने स्पर्श सहन न होना) होता है. थोडा भी स्पर्श होनेसे अत्यंत पीडा होती है. वातवाहिनिओंकी जगहपर भयानक वेदना होती है. रोगी पीडा के मारे चिल्लाता है. वातवाहिनिओंका संकोच होता है और स्नायु और मांस का भी संकोच (जकडना) होता है. वह भाग भी सूख जाता है. इस प्रकारमे हरताल भस्म का उपयोग होता है.

आतशक का उपद्रव मेह और ववासीरमे भी हो सकता है. इनमेभी कुछ रोगी हरताल भस्मके सेवन से अच्छे हुए देखनेमे आये है.

बार बार आनेवाले बुखारोंमे-जिन्हे परिवर्तित ज्वर करते है-हरताल-भस्मका उपयोग होता है. मामूली शीतपूर्वक ज्वर (मलेरिया बुखार) मे भी कोई हरतालभस्म देते है. किंतु केवल परिवर्तित ज्वरमेही इससे फायदा होता है. दूसरे ज्वरोंमे इतना नही होता.

दोष—वात, कफ.

दूष्य—रस, रक्त, मांस.

स्थान—त्वक्, शाखा, यकृत्.